

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186285

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP-23-4-4-69-5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H374.2
S255 Accession No. P.G.
H3904

Author शास्त्री, धर्मन्द्रब्रह्मचारी .

Title सामाजिक शिक्षा और समाज

This book should be returned on or before the date
last marked below. सैवा . 1955 .

सामाजिक शिक्षा

और

समाज-सेवा



समाज-शिक्षा और समाज-सेवा के
सिद्धान्तपक्ष तथा व्यवहारपक्ष का व्यापक प्रतिपादन



डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री

एम० ए० (दर्शन, संस्कृत तथा हिन्दी)

पी-एच० डी० (पटना), ए० आई० ई० (लन्दन)

समाजशिक्षोपनिर्देशक, बिहार-राज्य;

भूतपूर्व अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, पटना कालिज

(पटना विश्वविद्यालय); तथा भूतपूर्व-मंत्री,

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्



मगध-राजधानी-प्रकाशन

पटना

प्रकाशक
मगध-राजधानी प्रकाशन
खजाञ्ची रोड
पटना-४

प्रथम संस्करण, मार्च १९५५
द्वितीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण, अप्रैल १९५५
मूल्य ६।।।) रुपये

मुद्रक
श्री राजेश्वर मा
श्री अजन्ता प्रेस लि०, पटना-४



प्रथम संस्करण

की

प्रस्तावना

व्यक्ति और समाज एक ही सत्ता के दो पक्ष हैं, एक ही तत्त्व की दो अभिव्यक्तियाँ। अतएव प्रत्येक राष्ट्र में जहाँ व्यक्तियों को अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों का सक्रिय ज्ञान होना चाहिए, वहाँ उनमें सामाजिक चेतना भी जागरूक रहनी चाहिए। समाज निरा व्यक्तियों का समुच्चय नहीं, अपितु स्वयं एक स्वतंत्र एवं गतिशील सत्ता है। अतः पथप्रदर्शक अथवा कार्यकर्ता को समाज के मनो-विज्ञान और उसकी गतिविधि का ज्ञान होना आवश्यक है। समाज-सेवा की भावना और लगन के अतिरिक्त उसको यह भी जानकारी होनी चाहिए कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में किस ढंग से समाजहित के निमित्त रचनात्मक कार्य का संगठन किया जाय। तात्पर्य यह कि समाजशिक्षा और समाजसेवा के सिद्धान्तपक्ष तथा व्यवहारपक्ष, दोनों का स्पष्ट चित्र उसकी आँखों के सामने रहना चाहिए।

इधर, हाल में, ज्यों-ज्यों समाजशिक्षा के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग हो रहे हैं और विकासयोजनाक्षेत्रों, शिक्षणसंस्थाओं तथा सार्वजनिक संगठनों द्वारा समाजसेवा-संबंधी सघन एवं सुव्यवस्थित कार्यक्रम प्रस्तुत किया जा रहा है, त्यों-त्यों यह भी अनुभव किया जा रहा है कि कार्यकर्ताओं के लिए प्रशिक्षण की अनिवार्य आवश्यकता है। समाजशिक्षा केवल “विज्ञान” ही नहीं, “कला” भी है; और कला, बिना प्रयोग तथा प्रशिक्षण के, अर्जित नहीं की जा सकती।

प्रस्तुत ग्रंथ वर्षों के व्यावहारिक अनुभव के आधार पर लिखा गया है और समाजशिक्षा तथा समाजसेवा-संबंधी कोई भी ऐसी

समस्या अथवा जानकारी नहीं है—चाहे वह उच्च स्तर पर कार्य करनेवाले पथ-प्रदर्शक अथवा योजनाविधायक के लिए हो, या जनजीवन के साथ घुल-मिलकर सीमित क्षेत्र में चलनेवाले कार्यकर्ता के लिए हो—जिस पर प्रकाश डालने की चेष्टा न की गई हो ।

परिशिष्टों के देखने से यह भी स्पष्ट हो जायगा कि चुने हुए उपयोगी विषयों पर वार्तालाप-विन्दु, समाज-शिक्षा संबंधी विवरण-पत्र और तालिकाएँ, आवश्यक साहित्य तथा अध्ययन-सामग्री का निर्देश—ऐसी सभी बातों का समावेश कर दिया गया है जिनकी अनिवार्य आवश्यकता है, किन्तु फिर भी, जिनका अबतक के प्रकाशित इने-गिने ग्रंथों में नितान्त अभाव है ।

हमारा विश्वास है कि राष्ट्र की उन्नति तथा प्रगति के लिए जहाँ भौतिक साधनों (material resources) को बढ़ाना है, वहाँ साथ ही साथ उन मानव-शक्तियों (human potentialities) को भी विकसित करना है, जिनके बिना, सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं के बराबर है । मानव ही इस विश्व का सभी योजनाओं और उसकी प्रगतियों का केन्द्रविन्दु है, और मानव के उन्नयन तथा परिष्करण के लिए समाजशिक्षा अथवा सामाजिक चेतना एकमात्र साधन है । हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति में, जब हम परतंत्रता के काले आवरण से निकलकर स्वतंत्रता, सवलता, स्वस्थता और सदाचार के आलोक-पथ पर अग्रसर हो रहे हैं, संभवतः प्रस्तुत ग्रंथ एक संबल एवं स्तम्भ-दीप का काम दे !

—धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री

द्वितीय संस्करण

की

प्रस्तावना

हम साहित्यिक जगत्, शैक्षणिक जगत्, जनता तथा अधिकारि-वर्ग—सबके समानरूप से अनुगृहीत हैं कि उन्होंने हमारी रचना “सामाजिक शिक्षा और समाज-सेवा” का असाधारण स्वागत किया। प्रकाशित होने के एक महीने के अन्दर-अन्दर प्रथम संस्करण की प्रतियो का ‘खप’ जाना—प्रकाशक और प्रणेता दोनों के लिए अभिनन्दन का विषय है।

इस असाधारण स्वागत का शायद एक कारण यह भी हो कि जिस अनुपात से सामाजिक शिक्षा और समाज-सेवा का महत्त्व बढ़ता जाता है और इसे पंचवर्षीय योजना में गौरवपूर्ण स्थान मिलता जाता है, उस अनुपात में इस विषय पर साहित्य की सृष्टि नहीं हो रही है; और यदि कुछ होती भी है तो राष्ट्रभाषा हिन्दी में अपेक्षाकृत बहुत ही कम। इस प्रकार के निर्देश-ग्रंथ का तो हिन्दी में सर्वथा अभाव था जो “सामाजिक शिक्षा” के सिद्धान्तपक्ष तथा व्यवहारपक्ष का सरल किन्तु प्रामाणिक तथा वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन करे। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि प्रस्तुत ग्रंथ इस दृष्टि से एक बहुत बड़े अभाव की प्रथम-प्रथम पूर्ति करता है।

इस दूसरे संस्करण को राष्ट्र, समाज और राष्ट्र भारती की भेंट करते हुए हम आशा करते हैं कि यह उपयुक्त समादर

एवं स्नेह का भाजन होगा । इस संस्करण में हमने समाजशास्त्र, भारतीय संविधान, सहकारिता, ग्रामपंचायत आदि अनेकविषयों का या तो नये सिरे से, या अतिरिक्त सामग्री के रूप में, समावेश किया है, जिससे ग्रंथ की उपादेयता तथा व्यापकता बढ़ गई है । यदि अहिन्दीभाषी प्रान्तों से भी उपयुक्त प्रोत्साहन मिला तो हम शीघ्र ही अंग्रेजी रूपान्तर प्रस्तुत करने का विचार रखते हैं ।

वार्त्तालाप-विन्दुओं को तैयार करने में श्री शिवनन्दन महतो ने, प्रेस कापी तैयार करने में श्री जानकीजीवन तथा प्रूफसंशोधन में श्री गजेन्द्र प्रसाद तिवारी ने जो सहायता दी है उसका हम आभार स्वीकार करते हैं ।

—धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री

समर्पण

विश्वविख्यात शिक्षाशास्त्री

तथा

शिक्षा-व्यवस्थापक

श्री डा० के० जी० सैयदैन

को



विषय-सूची

परिच्छेद	पृष्ठ-संख्या
१ भारत में सामाजिक शिक्षा की प्रगति	१-८
२ स्वतन्त्रता और समाज शिक्षा	९-१२
३ भारतीय संविधान	१३-१५
४ व्यक्ति एवं समाज	१६-१९
५ समाजशास्त्र और सामाजिक शिक्षा	२०-२२
६ शिक्षाप्रक्रिया और समाजशिक्षा	२३-२६
७ समाजशिक्षा और समाजसेवा का	
रचनात्मक कार्यक्रम	२७-३८
८ वयस्क-मनोविज्ञान	३९-४३
९ समाजशिक्षा में साक्षरता का स्थान	४४-४७
१० वयस्क-साक्षरतावर्ग और उसकी सामग्री	४८-५३
११ नवसाक्षरों का साहित्य	५४-५७
१२ वयस्क-शिक्षापद्धति की विशेषताएँ	५८-६१
१३ साक्षरता-प्रदान की प्रणाली	६२-६६
१४ साक्षरतावर्ग का प्रारंभिक पाठ्यविषय	६७-८१
१५ (१) सामाजशिक्षा तथा समाजसेवा का प्रशिक्षण	८२-८७
(२) एक मास वा पंद्रह दिनों का प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम	८८-९०
(३) त्रैमासिक प्रमाणपत्र का पाठ्यक्रम	९१-९७
(४) एकवार्षिक उपाधि का पाठ्यक्रम	९८-११४
१६ शिक्षण संस्थाओं द्वारा समाजसेवा-कार्य	११५-१२२
१७ प्रचार और प्रदर्शन	१२३-१२६

परिच्छेद	पृष्ठ-संख्या
१८ समाज-शिक्षा-शिविर	१२७-१४०
१९ किशोरकुल तथा तरुणसंघ	१४१-१४५
२० सायंकालीन विद्यालय-कार्य	१४६-१४९
२१ पुस्तकालय, वाचनालय तथा संग्रहालय	१५०-१५२
२२ समाज-भवन या समाजसदन	१५३-१५४
२३ मनोरंजन तथा लोक-रङ्गमंच	१५५-१६०
२४ सेमिनार : क्या और क्यों	१६१-१६३
२५ सामुदायिक विकास-क्षेत्र में समाजशिक्षा	१६४-१७१
२६ पूर्णकालिक वैतनिक कार्यकर्ता	१७२-१७६
२७ लोक-विद्यालय	१७९-१८३
२८ जनता-महाविद्यालय की रूपरेखा	१८४-१९०
२९ सांस्कृतिक विश्वविद्यालय: एक कल्पना	१९१-१९२
३० विदेशों में समाजशिक्षा की रूपरेखा	१९३-२०५
३१ सामाजिक परिगणन अथवा सर्वेक्षण	२०६-२०८
३२ परिधिष्ट —	
(क) सामाजिक परिगणन की तालिकाएँ	२०९-२१८
(ख) वार्तालाप-विद्	२१९-३१३
(ग) प्रमाणपत्रों और प्रिवरणपत्रों के नमूने	१४-६२६
(घ) माहितीय-संकेत	३२७-३५८
(ङ) अनुक्रमणिका	३५९-३६७

परिच्छेद एक

भारत में सामाजिक शिक्षा की प्रगति

जिसे हम आज समाजशिक्षा कहते हैं, उसे पहले प्रौढ़शिक्षा की संज्ञा दी गई थी। भारत में कभी ऐसा समय नहीं रहा है जब जनसमाज को शिक्षित करने और उसके जीवन को उन्नत करने के साधन नहीं प्रौढ़शिक्षा की अपनाये गये हों। प्राचीन युग में जब मुद्रण का आविष्कार प्राचीन परम्परा नहीं हुआ था, और उससे भी प्राचीनतर युग में जब सम्भवतः लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था, समाज में ऐसी अनेक पद्धतियाँ प्रचलित थी जिनके द्वारा जनता में चेतना का प्रचार और उसकी अभिरुचि का परिष्कार किया जाता था। प्राचीनतम साहित्य को, जिसमें वेद, उपनिषद् आदि सम्मिलित हैं, भारतीय ऋषि-मुनियों ने 'श्रुति' और 'स्मृति' दो व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया था। इन दो नामों से इसी प्रकार का संकेत होता है कि हमारी शिक्षा मुख्यतः श्रुति अर्थात् श्रवण-शक्ति और स्मृति अर्थात् स्मरण-शक्ति पर ही अवलम्बित थी। प्रत्येक विद्वान् व्यक्ति मानों शिक्षा तथा विद्या के सौर जगत् का केन्द्रीय सूर्य था, जो अपनी रश्मियों के आलोक के द्वारा आसपास के समग्र वातावरण तथा जीवन को आलोकित करता था।

इस विषय की चर्चा करते समय हमारा ध्यान स्वतः प्राचीन वैदिक यग की आश्रम-प्रणाली की ओर आकर्षित होता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत

प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती थी कि वह पचास वर्ष की अवस्था के बाद गृहस्थ-आश्रम के संकीर्ण स्वार्थमय जीवन को त्याग कर समाज की व्यापक रंगभूमि में अवतीर्ण हो अपना जीवन जनता-जनार्दन की आश्रमप्रणाली सेवा में अर्पण करे। चतुर्थ आश्रम को संन्यास आश्रम में प्रव्रज्या अथवा 'प्रव्रज्या' भी कहा गया है और संन्यासी को 'प्रव्रजित' और 'परिव्राजक' की मज्ञा दी गई है। 'प्रव्रज्या' और 'परिव्राजक'—ये शब्द इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि संन्यासी को एक स्थान पर न बैठकर, नगर-नगर ग्राम-ग्राम में घूम कर (व्रज गतौ), न केवल अध्यात्म-नीति तथा सदाचार का प्रचार करना चाहिए, अपितु अपने जीवन के आदर्शों के सक्रमण द्वारा जनजीवन को उन्नत बनाना चाहिए। हमारे लिए यह अत्यन्त दुर्भाग्य का विषय है कि भारतीय संस्कृति की यह विशेषता, यह प्रथा, इस समय प्रायः लुप्त-सी हो गई है और हम स्वार्थमय तथा वासनामय जीवन के कदम में तब तक फँसे रह जाते हैं, जब तक हमारे प्राण-पछी थककर अपने पिंजड़े से उड़ नहीं जाते। यह भी दुर्भाग्य का विषय है कि साधु-संन्यासियों का वह दल, जो आज भी भारत में विद्यमान है, कुछ सख्या में समाज का हित-साधक न होकर समाज के दुर्बल कंधों का भार बन गया है। एक तो, उनका मानसिक स्तर प्रायः बहुत निम्न होता है; दूसरे, उनके जीवन में समाज की सेवा की भावना प्रायः नहीं ही हुआ करती, और वे कुछ साधनाओं, योग की प्रक्रियाओं अथवा वेश-भूषा के प्रतीकों में ही अपने क्रियाकलाप को सीमित कर बैठते हैं।^१

एक दूसरा साधन जो हमारे देश में सामाजिक-जीवन के उत्थान का प्रेरक था, वह है कथाओं, कीर्तनों, रामलीलाओं और नाटकों आदि की परम्परा। रामलीला, नाटक आदि के दल के दल समग्र कथा कीर्तन देश में विद्यमान थे, और अभिनयों, उपदेशों तथा कथा-रामलीला कीर्तनों के द्वारा समाज को शिक्षित करते रहते थे,—शिक्षित नाटक आदि इस अर्थ में नहीं कि निरा अक्षर-ज्ञान आवश्यक हो, वल्कि, इस अर्थ में कि सामाजिक चेतना परिष्कृत हो। इसी कोटि में उन भाटों, चारणों तथा "जोगी" "बाउल" आदि संतों की गणना की जायगी जो द्वार-द्वार पर घूम कर भिक्षा का पात्र लिये सारंगी अथवा अन्य

१. ऐसे भी साधु-महात्माओं की हमारे देश में कमी नहीं है जिन्होंने अपना सर्वस्व जनसमाज के कल्याण के निमित्त निछावर कर दिया है।

वाद्य की मधुर ध्वनि के साथ उपदेशात्मक पद्यों को सुनाया करते थे और इस प्रकार जनचेतना को समृद्ध किया करते थे ।

वर्णाश्रम की प्राचीन व्यवस्था में ब्राह्मणों का स्थान ऐसा था कि वे त्याग, तपस्या और विद्वत्ता के प्रतीक होते थे । उनकी आवश्यकता अति न्यून होती थी और उनकी पूर्ति जनता की दी हुई मधुकरियों और ब्राह्मणों का दक्षिणाओं से हो जाया करती थी । वे मानों चलते-फिरते त्यागमय विद्यालय अथवा पुस्तकालय थे, जो घर-घर में वेदों, उप-जीवन निषदों तथा अन्य अध्यात्मपरक ग्रंथों के सारतत्त्वों को सरल शब्दों में अथवा कथाओं के रूप में प्रस्तुत किया करते थे,—

एक इस प्रकार के वातावरण की सृष्टि करते थे जिसमें शास्त्र-ज्ञान और पुस्तक-पठन के अभाव में भी समाज के व्यक्ति अपने अध्यात्म तथा संस्कृति को समझने में समर्थ होते थे और अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का ज्ञान प्राप्त कर उनका समुचित पालन करने के योग्य होते थे । यह वस्तुतः एक शोचनीय प्रसंग है कि प्राचीन काल की ये सारी परम्पराएँ या तो शिथिल हो गई हैं या विकृत ।

इस दुःस्थिति के ऐतिहासिक कारण भी हैं । इसवी सदी के आरम्भ से लेकर बीसवी सदी के मध्य तक हमारे देश का इतिहास कुछ ऐसा रहा है कि उसके शासनसूत्र का संचालन समय-समय पर हमारे हाथों विदेशी राज्य नहीं रहा । अनेक जातियाँ भारत के बाहर से आईं और का उन्होंने कुछ समय के लिए देश पर अधिकार जमाकर ऐसी दुष्प्रभाव शासन-नीति को संचालित किया जिसके द्वारा जनता की स्वतन्त्र मनोवृत्ति और जागरूक चेतना कुण्ठित होती गई । यह कुंठा अंगरेजों के शासनकाल में अपनी सीमा को पार कर गई । अंगरेजों ने अपने वैज्ञानिक उत्कर्ष तथा साम्राज्यवाद की शक्ति का अधिक से अधिक प्रयोग किया और देश को अनेक वर्गों में विभाजित कर दिया । कुछ वर्ग, जिनमें जमींदार और सरकारी कर्मचारी सम्मिलित हैं, जनता के शोषक बन गये और करोड़ों की संख्या में सामान्य जनता शोषित बनकर कराहने लगी । उसकी मानसिक स्वतंत्रता कुचल दी गई, गाँव की आर्थिक स्वाश्रयिता नष्ट कर दी गई, और समग्र राष्ट्र अज्ञान, दैन्य तथा परवशता के अन्धकार में भटकने के लिए छोड़ दिया गया । हमें इस बात के प्रमाण उपलब्ध हैं कि सन् १८५७ के पहले भारत में भारतीय शिक्षा का प्रचार आजकल की अपेक्षा

अधिक था। प्रायः हर एक गाँव में कोई न कोई पंडित था, मौलवी था, और उसके घर पर पाठशाला या मकतब की व्यवस्था थी। अंगरेजों के आने के पहले केवल बंगाल में बीस हजार पाठशालाएँ थी। सन् १८२३ ई० की ईस्ट इंडिया कंपनी की एक सरकारी रिपोर्ट में लिखा है कि शिक्षा की दृष्टि से संसार के किसी भी अन्य देश में किसानों की अवस्था इतनी ऊँची नहीं है जितनी ब्रिटिश भारत के भागों में। वस्तुतः बात ऐसी है कि साम्राज्यवादी अंगरेजी शासन के अभिशाप से जनता ज्यों-ज्यों निर्धन बनती गई, त्यों-त्यों शिक्षा की व्यवस्था छिन्न-भिन्न होती गई और लोग अशिक्षा में ग्रस्त होते गये।

जब १८५७ के बाद भारत में नवीन चेतना का आविर्भाव हुआ तो लोगों का ध्यान जहाँ एक ओर बालक-बालिकाओं की शिक्षा की ओर आकर्षित हुआ वहाँ साथ ही साथ प्रौढ़ों की शिक्षा पर भी गया। सबसे नवीन चेतना पहले प्रौढ़शिक्षा का प्रारम्भ मद्रास प्रान्त में हुआ। मद्रास और नए मे 'पंचम' हरिजनों की दशा शिक्षा की दृष्टि से बहुत प्रयोग : प्रौढ़ शोचनीय थी और ईसाई मत का प्रचार इस प्रान्त में पहले शिक्षा का से पर्याप्त मात्रा में हो चुका था। पहले-पहले जो प्रौढ़ प्रथम युग पाठशालाएँ खोली गई वे इन हरिजनों के लिए, और ईसाई मत के प्रचारक पादरियों द्वारा। क्रमशः इन पाठशालाओं में हरिजनों के अतिरिक्त किसान भी आने लगे। मद्रास के बाद बंगाल और संयुक्त प्रान्त में भी प्रौढ़ शिक्षालय खोले गये। ये शिक्षालय प्रायः फ्राइमरी स्कूलों के अध्यापकों के अधीन थे और इनका कार्यक्रम कुछ ऐसा शुष्क तथा जीवनहीन था कि इनमें वयस्कों को आकर्षित करने की क्षमता न थी। फिर भी प्रौढ़शिक्षा का कार्य चलता रहा। कलकत्ता वर्किंग मेन्स इन्स्टिट्यूट (Calcutta Working Men's Institute) की ओर से पाठशालाएँ खुलीं। मम्बई, पूना और मद्रास की गैरसरकारी समाजसेवा-संस्थाओं ने भी प्रौढ़ पाठशालाएँ खोलीं। इनके अतिरिक्त सरवेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी (Servants of India Society), शांति निकेतन, केन्द्रीय-राष्ट्र-पाठशाला सघ, मुजफ्फरपुर (बिहार), यंगमेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन (Youngmen's Christian Association) नागपुर, तथा आन्ध्रदेश प्रौढ़शिक्षा समिति की ओर से अपने-अपने ढंग से कार्य होने लगे।^२

ईसाई मिशनरियों द्वारा भी जहाँ-तहाँ प्रौढ़-शिक्षा का काम चलता रहा। १६१२ में मैसूर के दीवान श्री विश्वेश्वरय्य ने मैसूर में अनेक रात्रि पाठशालाएँ खोलीं। बम्बई और बंगाल में भी रात्रि पाठशालाएँ खुलीं। उदाहरणतः १९१७ में बंगाल में १०७ पाठशालाएँ चलती थीं जिनमें छात्रों की संख्या थी २७३९। सन् १९२१-२२ में पंजाब सरकार ने पहले-पहल अपनी बजट में प्रौढ़ों की साक्षरता को स्थान दिया और रात्रि पाठशालाओं के संचालन की व्यवस्था की। पंजाब का यह कार्यक्रम १९२६-२७ तक प्रगति पर रहा। उस वर्ष वहाँ पर पाठशालाओं की संख्या ३७८४ थी और छात्रों की संख्या ९८४१४। बम्बई में सन् १९२२ में २७ पाठशालाएँ थीं। युक्तप्रान्त की सरकार ने सन् १९२१ में ६ म्युनिसिपलिटियों को रात्रि पाठशालाओं के विकास के लिए आर्थिक साहाय्य दिया। १९२४ में द्रावणकोर की सरकार ने रात्रि पाठशालाओं को विधिवत् स्वीकृत करने के लिए नियम जारी किया। सन् १९२७ तक के युग को प्रौढ़ साक्षरता के इतिहास का प्रथम युग कहा जा सकता है।^३

डॉ० संयदेन* ने प्रौढ़शिक्षा के विकास का द्वितीय युग १९२७ से १९३७ माना है। किन्तु यह युग इस दिशा में अत्यन्त शिथिल रहा। प्रायः सभी प्रान्तों में प्रौढ़ पाठशालाएँ अवनति की ओर उन्मुख थीं। उदाहरणतः, पंजाब में जहाँ प्रारम्भिक युग में अच्छी प्रगति थी, इस

द्वितीय युग युग में पाठशालाओं की संख्या १७९ मात्र रह गई। पंजाब के विपरीत बम्बई में इस युग में प्रगति अच्छी रही। सन् १९३७ में वहाँ १८० पाठशालाएँ थीं जिनमें ६२९९ छात्र पढ़ते थे। बम्बई की इस प्रगति में पूना की ऐडल्ट एडुकेशन लीग (Adult Education League) तथा रूरल रिकन्स्ट्रक्शन एसोसिएशन (Rural Reconstruction Association), बम्बई नगर का लिटरसी एसोसिएशन (Literacy Association) तथा सेवा-सदन और सोशल लीग (Social League) आदि सार्वजनिक संस्थाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान था।

प्रौढ़शिक्षा के इतिहास में सन् १९३७ और सन् १९३८ अमर रहेंगे।

३. डॉ० संयदेन ने 'टीचर्स हैण्डबुक ऑफ सोशल एजुकेशन' में सन् १९१८ से सन् १९२७ तक को प्रारम्भिक विकास का युग माना है।

४. वही, पृष्ठ ६।

यह तृतीय युग का प्रारम्भ था और इसकी परिणति सन् १९४२ में हुई। जनता की मिनिस्ट्री प्रान्तों में कायम हुई। सन् १९३७ से १९३९ तृतीय युग तक दो वर्षों में प्रौढ़-शिक्षा में जितनी उन्नति हुई उतनी पिछले पचास वर्षों में भी नहीं हुई। बिहार में प्रान्त भर में प्रौढ़ पाठशालाओं को आर्थिक साहाय्य देकर प्रोत्साहन दिया गया। युक्त-प्रान्त ने भी इसी प्रकार तत्परता से पाठशालाओं और पुस्तकालयों के खोलने और उन्हें आर्थिक साहाय्य देने की व्यवस्था की। जिस प्रकार बिहार में शिक्षा-मंत्री डा० संयद महमूद ने व्यक्तिगत रूप से भी प्रौढ़-शिक्षा-आन्दोलन में हाथ बँटाया उसी प्रकार मद्रास के मुख्य मंत्री श्री राजगोपालाचारी ने स्वयं प्रौढ़ों के लिए पुस्तकें लिखीं।

सन् १९३७ से सन् १९४२ तक प्रौढ़-शिक्षा और साक्षरता का कार्य अत्यधिक प्रगति पर रहा और सभी प्रान्तों की सरकारों ने इसे अपना महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व समझ कर इसे बजट में उपयुक्त चतुर्थ युग स्थान दिया। न केवल रात्रि-पाठशालाएँ खोली गईं अपितु ग्रामीण पुस्तकालयों तथा चलते-फिरते पुस्तकालयों को स्थापित किया गया। साक्षरता-प्रसार के लिए उपयुक्त साहित्य का भी प्रकाशन किया गया। इस प्रसंग में भिन्न-भिन्न प्रान्तों की प्रगतियों का संक्षिप्त निर्देश अनुपयुक्त न होगा। आसाम में १९४० सितम्बर से अप्रैल १९४३ तक २१६७१३ व्यक्तियों ने साक्षरता की परीक्षाएँ दीं जिनमें १९४२ के अगस्त तक लगभग १ लाख व्यक्ति उत्तीर्ण हुए। बंगाल में १९४२ में साक्षरता-वर्गों की संख्या २२५७४ थी और छात्रों की संख्या ५३०१७८। बिहार में १९३८-३९ साल में ५०८२० साक्षरता वर्ग थे जिनमें ९०९०८१ छात्र थे और उनमें ४५०००० साक्षर हुए। बम्बई में सन् १९४२ में साक्षरता वर्गों की संख्या ३०७२ थी। बम्बई नगर की एडल्ट एडुकेशन कमिटी ने ३१०० वर्गों के द्वारा ४०००० वयस्कों को साक्षर बनाया। उड़ीसा में पहले तो ११६८ पाठशालाएँ थीं किन्तु १९३९-४० में उनकी संख्या केवल ४३३ थी और छात्रों की संख्या ३६९२। पंजाब में सन् १९३८ से १९४२ तक १९१५६२ वयस्कों को साक्षर बनाया गया। इस प्रान्त ने वयस्कों की पोथियों तथा अन्य साहित्य के प्रकाशन में प्रशंसनीय कार्य किया। युक्तप्रान्त में १९३९ से १९४२ तक ७२५००० वयस्क साक्षर बनाये गये। ग्रामीण पुस्तकालयों को प्रचुर प्रोत्साहन दिया गया। वयस्कोपयोगी साहित्य का भी प्रकाशन

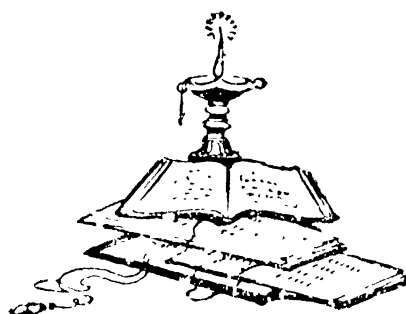
हुआ । भारतीय रियासतों में बड़ौदा ने उल्लेखनीय कार्य किया । १९३६ और उसके बाद के दो वर्षों में साक्षरता वर्ग १६४८ थे जिनमें छात्रों की संख्या २३६१६ थी । जम्मू-कश्मीर में १९४२-४३ साल में ४०५० साक्षरता वर्ग थे जिनमें उपस्थिति की संख्या ४४९८७ थी । मैसूर रियासत में वयस्क-साक्षरता-प्रचार का कार्य अनवरत रूप से चला । वहाँ ६०० उच्चवर्गीय छात्र प्रशिक्षित किये गये और उनके द्वारा साक्षरता वर्ग संचालित हुए । ग्रीष्मावकाशकालीन विशेष वर्ग भी छात्रों द्वारा संचालित हुए । जिस युग की चर्चा हम कर रहे हैं उसमें दिल्ली की जामिया मिलिया ने प्रौढशिक्षा का अलग विभाग स्थापित करके महत्वपूर्ण कार्य किया । सन् १९३८ में इण्डियन ऐडल्ट एडुकेशन एसोसिएशन (Indian Adult Education Association) नामक संस्था की स्थापना हुई । यह संस्था क्रमशः भारत की केन्द्रीय संस्था बनने की ओर अग्रसर होने लगी । कहना न होगा कि १९३७ से १९४२ तक का युग समाज-शिक्षा के इतिहास में एक स्वर्णयुग था ।

सन् १९४२ के राजनीतिक आन्दोलन और अंगरेजों की दमननीति का विषमय प्रभाव साक्षरता आन्दोलन पर भी पड़ा और १९४२ से १९४६ तक के युग में—जिसे हम समाजशिक्षा के इतिहास का पंचम युग पंचम युग कहेंगे—सभी प्रान्तों की प्रगति शिथिल पड़ गई और भिन्न-भिन्न सरकारों ने अपनी बजट की रकम को घटा कर सीमित क्षेत्र में और सीमित ढंग से साक्षरता प्रचार के कार्य को जीवित रहने दिया । मैसूर और ट्रावणकोर रियासतों में अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक प्रगति से कार्य हुआ । मैसूर में १९४६-४७ में साक्षरता वर्गों की संख्या ३९४१ थी और छात्रों की संख्या ७८६११ ।

सन् १९४७ में प्रौढ-शिक्षा के इतिहास में एक नवीन युग का अवतरण हुआ क्योंकि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् केन्द्र में तथा प्रान्तों में राष्ट्रीय सरकारों ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ली और स्वभावतः हर एक सरकार ने अपना ध्यान इस महत्वपूर्ण दिशा की ओर प्रेरित किया । १९४८ में सेन्ट्रल ऐडवाइजरी बोर्ड ऑफ एडुकेशन (Central Advisory Board of Education) ने प्रौढसाक्षरता की योजना पर सामूहिक रूप से विचार किया और यह निश्चय किया कि प्रौढ-साक्षरता को समाज-शिक्षा का व्यापक रूप दिया जाय जिसमें न केवल साक्षरता का स्थान हो, बल्कि

स्वास्थ्य, सामाजिक चेतना, उन्नत कृषि तथा कला आदि सर्वोदय के सभी अंगों का समावेश हो। १९४९ में सभी राज्यों से केन्द्रीय सरकार ने समाज-शिक्षा संबंधी योजनाएँ माँगी और उन्हें केन्द्रीय आर्थिक साहाय्य देने की व्यवस्था की। केन्द्रीय सरकार ने १९४९-५० में सभी राज्य सरकारों से अपने यहाँ की समाज-शिक्षा की प्रगति का विवरण भी माँगा जिससे यह पता चलता है कि भारत में उस एक वर्ष में लगभग ५५००० प्रौढ़ों को साक्षरता प्रदान की गई। आजकल प्रत्येक राज्य सक्रिय रूप से सामाजशिक्षा की व्यापक योजना को कार्यान्वित कर रहा है और पंचवर्षीय योजना में समाजशिक्षा को अत्यन्त महत्त्व का स्थान दिया गया है।^१

-
५. इस परिच्छेद के लिखने में डॉ० सैयदैन द्वारा संपादित “टीचर्स हैंड-बुक ऑफ सोशल एडुकेशन” से प्रचुर सामग्री ली गई है।



परिच्छेद दो

स्वतन्त्रता और समाजशिक्षा

सन् १९४७ ई० के पहले भारत परतन्त्र था और यह परतन्त्रता लगभग डेढ़ सौ वर्षों के विदेशीय शासन काल में इतनी जकड़ गई थी कि हमारी सामाजिक चेतना लुप्त हो गई थी। दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, राममोहन राय, विवेकानन्द, रामतीर्थ आदि ने धर्म का महारमा गाँधी और राजनीतिक स्वतन्त्रता जो रूप जनता के सामने रखा उसमें विवेक और बुद्धि (Rationalism) का बहुत बड़ा स्थान था। इन युगप्रवर्तकों के विचारों ने हमारे धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में अन्ध परम्परा की जो प्रबल मनोवृत्ति थी, उसमें क्रान्ति लाने की चेष्टा की। किन्तु इन्होंने राष्ट्र का भौतिक तथा आर्थिक परवशता के विरुद्ध आन्दोलन नहीं किया। इस प्रकार के आन्दोलन का रूप खड़ा किया महात्मा गाँधी ने, जिसके फलस्वरूप, लगभग तीस वर्षों के अनवरत संग्राम तथा सत्याग्रह के बाद, हमें राजनीतिक स्वतन्त्रता उपलब्ध हुई। इस स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हम लोगों ने अपने लिए एक विधान का निर्माण किया जो विधान जनता का विधान है और जिसमें किसी वंश-परम्परागत राजकुल अथवा व्यक्ति-विशेष

के निरंकुश शासन (Dictatorship) का अवकाश नहीं है । इस विधान की सफलता एकमात्र इसी में है कि जनता अपने कर्त्तव्य और अपने अधिकारों को अच्छी तरह समझे और विधान-सभाओं तथा संसदों में ऐसे प्रतिनिधियों को भेजे जो सच्चे अर्थ में उसके हितों का प्रतिनिधित्व कर सकें, और शासनसूत्र के संचालन के लिए जो अधिकारी नियुक्त हुए हैं उनका ठीक-ठीक उपयोग कर सकें । अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों के पालन तथा निर्वाह के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि जनता में कम-से-कम इतनी समझ और शिक्षा हो कि वह अपने गाँव, अपने परिवार, राष्ट्र तथा विश्व की मोटी-मोटी समस्याएँ समझ सके और उन समस्याओं के समाधान के लिए ठीक ढंग से प्रयत्नशील हो सके ।

किन्तु, आज जब हम यह देखते हैं कि हमारे राष्ट्र के प्रायः सभी राज्यों अथवा प्रान्तों में लगभग ८० प्रतिशत या इससे भी अधिक लोग निरक्षर हैं^१ और अशिक्षा तथा अज्ञान के गहरे गर्त में पड़े हैं, तो हमें ऐसा समझने को

१. भिन्न-भिन्न राज्यों में सामूहिक दृष्टि से साक्षरता की प्रतिशती (percentage) केवल १६.६ है (१९५१ की जनगणना के अनुसार) । तात्पर्य यह कि ३६ करोड़ जनता में ३० करोड़ निरक्षर हैं, केवल ६ करोड़ साक्षर ।

इन ६ करोड़ में भी ६ लाख ऐसे हैं जो पढ़ मात्र सकते हैं, लिख नहीं सकते । ५ करोड़ ऐसे हैं जो मिडल स्टेडर्ड तक भी पढ़े हुए नहीं हैं । मिडल अथवा उससे ऊँचे स्टेडर्ड वाले केवल ९० लाख हैं । इन ६० लाख में भी केवल ३८ लाख हाइ स्कूल स्टेडर्ड तक या ऊँचे पहुँचे हैं । उपर्युक्त ३८ लाख में १६ लाख हाइ स्कूल से कुछ ऊँचे, ४.६६ लाख आइ० ए० या आइ० एस-सी० तक और ११ ७ लाख डिग्री या डिप्लोमाधारी हैं ।

स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक संख्या में साक्षर हैं । सारे देश में पुरुष २४.६ प्रतिशत और स्त्रियाँ ७.९ साक्षर हैं । किसानों में केवल १२.१ प्रतिशत साक्षर हैं, गैर-किसानों में २६.० प्रतिशत । शहरों में रहनेवाले साक्षर पुरुष ५४.६ प्रतिशत हैं, और साक्षर स्त्रियाँ २७.० प्रतिशत । गाँवों में साक्षर पुरुष २४.० और साक्षर स्त्रियाँ ६.० प्रतिशत हैं । डिग्रीडिप्लोमाधारी पुरुषों की संख्या ६६३,३०४ है, और स्त्रियों की १८३,०६४ ।

बाध्य होना पड़ता है कि हमारी स्वतन्त्रता बहुत अंशों में विडम्बनामात्र है । यद्यपि हम जनतन्त्र अथवा गणतन्त्र की प्रतिष्ठा किये हुए हैं तथापि वस्तुस्थिति ऐसी है कि केवल कुछ ही व्यक्ति अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों को समझते और शासन तथा उसके विधान में सक्रिय भाग लेते हैं । शेष अन्धे के नेतृत्व में अन्धों के समान तटस्थ एवं निश्चेष्ट होकर उपनिषद् की निम्न-लिखित पंक्ति को चरितार्थ करते हैं—

दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढाः ।

अन्धेनैव नीयमानाः यथान्धाः ॥

यदि हम यह चाहते हैं कि हमारा राष्ट्र सच्चे अर्थ में स्वतन्त्र हो और विश्व के अन्य जागरूक राष्ट्रों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल सके, तो हमारे लिए आवश्यक हो जाता है कि हम शिक्षा का ऐसा व्यापक प्रसार करें जिससे न कि व्यक्तिगत चेतना समुन्नत हो, बल्कि साथ ही साथ हमारी सामाजिक चेतना भी जागरित तथा परिष्कृत हो । और ऐसा तभी संभव है जब कि हम, एक ओर, शिक्षणशालाओं में प्रारम्भ से ही बालक-बालिकाओं में सामाजिकता और समाज के प्रति कर्तव्यपालन की भावना का संचार करें, और, दूसरी ओर, उन लोगों में भी इस प्रकार की भावना को भरें, जो परिस्थितिबश संस्थाओं से लाभ उठाने से वंचित हैं । सामाजिक चेतना के बिना स्वतन्त्रता विडम्बना-मात्र है; और सामाजिक चेतना लाने के लिए समाज-शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य है ।

किसी भी राष्ट्र के सुखी होने की पहचान यह है कि उसमें जन-साधारण के कल्याण (welfare) और सुरक्षा (security) की समुचित व्यवस्था विद्यमान है । यह व्यवस्था तबतक संभव नहीं है जबतक रामराज्य लोग स्वार्थी बने हुए हैं और स्वार्थ की वेदी पर जनहित की बलि चढ़ाने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं । चोरी, डकैती, हत्या, चोरबाजारी, पक्षपात—ये सभी दुर्गुण मूलतः इसी कारण फलते-फूलते हैं कि लोग समाज-हित तथा समाज-सुधार को किसी प्रकार का महत्त्व न देकर निरे स्वार्थ-साधन में निरत रहते हैं,—“बहुजनहिताय बहुजनसुखाय” आचरण न कर मानों ‘व्यक्तिगत-हिताय व्यक्तिगत-सुखाय’ बरतते हैं । किन्तु इस प्रकार के बर्ताव से हम महात्मा गाँधी के आदर्श ‘रामराज्य’ की अवतारणा अपने देश में नहीं कर सकते ।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' के उत्तरकांड में 'रामराज्य' का जो आदर्श प्रस्तुत किया है उसमें से कल्पना-जन्य अत्युक्ति का परिहार कर हम यह कह सकते हैं कि आदर्श सामाजिक तुलसी-चित्रित जीवन तभी समझा जायगा जब रोग, शोक आदि त्रिविध रामराज्य तापजन्य दुःख न सतावें, कोई भी अकाल मृत्यु का शिकार न बने, सभी परस्पर प्रीतिभाव से रहें, और समाज में किसी प्रकार का वैषम्य न हो—

बयरु न कर काहू सन कोई ।

रामप्रताप विषमता खोई ॥

× × ×

दैहिक दैविक भौतिक तापा ।

रामराज नहिं काहुहि व्यापा ।

× × ×

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा ।

सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना ।

नहिं कोई अबुध न लच्छन हीना ॥

× × ×

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज ।

जीतहु मनहि सुनिअ अस, रामचन्द्र के राज ॥

इस प्रकार का "रामराज्य" तभी सम्भव है जब हम व्यक्ति-व्यक्ति में सामाजिक भावना और सामाजिक सेवाभाव का संचार करें ।



परिच्छेद तीन

भारतीय संविधान

भारत में जनता का राज्य है। इस राज्य की व्यवस्था के लिए जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों ने एक संविधान (Constitution) बनाया है जो २६ जनवरी सन् १९५० ई० से लागू हुआ है। इस

भारत : संविधान के अनुसार भारत एक गणतंत्र-राज्य है। इसके गणतंत्र राज्य अन्तर्गत जितने राज्य हैं उनमें जनता के चुने हुए मंत्री शासन की व्यवस्था करते हैं। भारत देश का भी कोई राजा नहीं है, बल्कि जनता द्वारा चुना हुआ 'राष्ट्रपति' है।

देश का शासन तीन भागों में बाँटा जा सकता है—(१) केन्द्रीय शासन, (२) राज्यों या प्रान्तों का शासन, (३) केन्द्र-शासित प्रदेशों का शासन।

शासन के प्रकार प्रत्येक शासन जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा निर्मित मंत्रिमंडल से संचालित होता है। केन्द्रीय शासन के मंत्रिमंडल के नेता को 'प्रधानमंत्री' कहा जाता है तथा राज्यों या प्रान्तों के मंत्रिमंडल के नेता को 'मुख्यमंत्री'।

भारतीय संविधान ने प्रत्येक व्यक्ति को कुछ अधिकार सामान्य रूप से दिये हैं। उदाहरणतः प्रत्येक को अपने-अपने धर्म और उसके अनुसार

पूजा-पाठ की पूरी स्वतंत्रता है। इसी कारण भारतीय गणतंत्र को 'धर्म-निरपेक्ष' (Secular) कहा गया है। दूसरा मूल अधिकार समानता या बराबरी का है। सरकार की दृष्टि में सभी भारतीय समान मूल अधिकार हैं, चाहे वे किसी धर्म, किसी वर्ण और किसी जात-पाँत के हों। तीसरा मूल अधिकार बातचीत, भाषण, सभाएँ करने, इच्छानुसार उद्योग-धंधा करके जीवन-निर्वाह करने तथा देश के किसी भी हिस्से में बसने की स्वतंत्रता है। प्रत्येक बालिग को देश के विधान निर्माण के सिलेसिले में प्रतिनिधियों के चुनाव में स्वतंत्ररूप से, मत देने का अधिकार चौथा मूल अधिकार है।

भारतीय संविधान द्वारा विहित अधिकारों का संक्षिप्त उल्लेख नीचे किया जाता है:—

नागरिकों के अधिकार (१) कानून के सामने सब नागरिक समान होंगे और किसी भी नागरिक को कानूनी सुरक्षा से वंचित न किया जायगा।

(२) किसी नागरिक के साथ धर्म, नस्ल, जाति, लिंग और जन्म-स्थान के कारण भेद-भाव का व्यवहार न किया जायगा।

(३) सार्वजनिक स्थानों में आने-जाने और उनका उपयोग करने में किसी नागरिक के साथ भेद-भाव नहीं रखा जायगा।

(४) सब नागरिकों को सरकारी पदों के लिए समान अवसर प्राप्त होंगे।

(५) अछूतपन को समाप्त कर दिया गया है। अछूतपन को व्यवहार में लाना कानूनी अपराध होगा।

(६) राजभक्ति संबंधी उपाधियों का अन्त कर दिया गया है। केवल फौजी और विद्वत्ता-संबंधी उपाधियाँ ही दी जा सकेंगी।

(७) सब नागरिकों को नियमों के अनुसार भाषण देने, विचार प्रकट करने, सभा-सोसाइटी बनाने, जायदाद रखने तथा बेचने और कोई भी व्यापार करने का अधिकार होगा।

(८) किसी नागरिक को, जब तक कि उसने कानून नहीं तोड़ा है, कोई दण्ड न दिया जायगा।

(९) बिना अपराध बताए किसी नागरिक को पकड़ा नहीं जायगा और यातायात का समय छोड़कर पकड़ने के २४ घंटे के भीतर अपराधी को मैजिस्ट्रेट के सामने पेश करना होगा।

(१०) मनुष्यों का खरीदना-बेचना और बेगार आदि निषिद्ध है ।

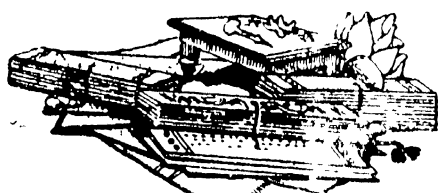
(११) सभी व्यक्तियों को अपना धर्मपालन करने, धर्म-प्रचार करने, धार्मिक तथा पुण्य संबंधी संस्थाएँ कायम करने और उन्हें चलाने का समान अधिकार होगा ।

(१२) किसी सम्प्रदाय या धर्म विशेष के माननेवालों पर ऐसा कोई कर नहीं लगाया जायगा, जो किसी दूसरे धर्म की वृद्धि या प्रचार के काम आवे ।

(१३) राज्य द्वारा चलाई गई किसी शिक्षा-संस्था में किसी धर्म-विशेष की शिक्षा न दी जायगी और राज्य से सहायता पानेवाली शिक्षा-संस्थाओं में भी धर्मविशेष की शिक्षा अन्य धर्मावलम्बियों के लिए अनिवार्य न होगी ।

(१४) अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति की रक्षा करने का अधिकार होगा । वे अपनी शिक्षा-संस्थाएँ भी स्थापित कर सकेंगे ।

(१५) किसी व्यक्ति की सम्पत्तिकानूनी अधिकार और क्षति-पूर्ति के बिना न ली जायगी ।



परिच्छेद चार

व्यक्ति एवं समाज

व्यक्ति और समाज परस्पर सापेक्ष सत्ताएँ हैं। व्यक्ति के बिना न तो समाज संभव है, और न समाज से विरहित व्यक्ति। “कामायनी” के कवि ने यह दिखलाने की चेष्टा की है कि आदि मानव समाज का ने अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए वासनाओं और निर्माण तृष्णाओं का संसार सजाया और उसीमें उलझ गया। वस्तुतः, कोई भी व्यक्ति इस विराट् प्रकृति के प्रांगण में अकेला नहीं रह सकता। हिंस्र पशुओं के आक्रमण से बचने के लिए, अपने हृदय की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए, अपनी मूक वाणी को अभिव्यक्ति देने के लिए, प्रत्येक व्यक्ति को अपने से अन्य व्यक्ति की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त मानव स्वयं पुरुष और नारी के रूप में दो भागों में बँटा हुआ है और ये दोनों परस्पर पूरक हैं। इन्हीं दोनों भागों के समन्वय से सृष्टि का क्रम चलता है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि इस सृष्टि की परम्परा में मात्र व्यक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है जबतक कम-से-कम एक और की संगति उसको न मिले। जब मानव अपने लिए किसी दूसरे को साथी बनाता है, अथवा अपने विचारों के आदान-प्रदान के लिए उसका सहारा लेता है, तो वह एक समाज का निर्माण करता है।

किन्तु, जब दो या अधिक व्यक्ति मिल कर समाज का अंग बन जाते हैं, तो, वैसी स्थिति में, समाज की एक अपनी, उन व्यक्तियों से भिन्न, सत्ता हो जाती है। यद्यपि समाज को व्यक्तियों से ही शक्ति मिलती है, समाज की फिर भी कालक्रम से उसकी वह शक्ति ऐसी हो जाती है जो सत्ता व्यक्ति की शक्ति से प्रबल एवं अतिशायिनी होती है। जब इस प्रकार व्यक्ति और समाज दोनों शक्तिशाली हो जाते

हैं तब अनेक प्रकार की व्यवस्थाओं की आवश्यकता होती है,—इसलिए कि व्यक्ति की शक्ति और समाज की शक्ति में परस्पर संघर्ष न हो जाय। मुख्यतः यह व्यवस्था दो प्रकार की होती है—सांस्कृतिक एवं राजनीतिक। “सांस्कृतिक” से हमारा तात्पर्य सभी इस प्रकार की व्यवस्थाओं से है जिनका आधार राजनीतिक नहीं है। उदाहरणतः धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण, आचार-विचार आदि, सवधी—जो संस्कृति के व्यापक अर्थ में अन्तर्बिष्ट हैं। “राजनीतिक” व्यवस्था से तात्पर्य उन विधान और उसकी कार्यान्विति से है जिसके द्वारा किसी देश, राष्ट्र अथवा राज्य की अर्थनीति तथा दण्डनीति का सबध है।

वर्तमान युग में राजनीति-सवधी जितनी व्यवस्थाएँ हैं, चाहे उन्हें जो भी नाम हम दे,—जनतन्त्र, गणतन्त्र, कम्यूनिज्म, फ़ैसिज्म, डिक्टे-टरशिप—सर्वत्र यह पाया जायगा कि व्यक्ति और समाज में किसी एक को अपेक्षाकृत अधिक प्राधान्य देकर दूसरे के साथ समन्वय की चेष्टा की जाती है। यदि व्यक्ति-प्रधान व्यवस्था हुई, तो यह कहा जाता है कि व्यक्ति की प्रधानता में ही समाज का हित है। यदि समाज की प्रधानता हुई तो यह कहा जाता है कि व्यक्ति के समाज में अन्तर्बिष्ट होने में ही व्यक्ति और समाज दोनों का हित है।

व्यवस्था चाहे जैसी भी हो—व्यक्तितंत्र अथवा जनतंत्र—सभी दशाओं में दो प्रकार के शिक्षा-विधान की अपेक्षा होगी; एक तो वह, जो प्रत्येक को अपने व्यक्तिगत कर्त्तव्य के पालन और व्यक्तिगत विशेषताओं के विकास की ओर अग्रसर करे, और दूसरा वह जो न केवल व्यक्ति को समाज के प्रति कर्त्तव्यों के पालन करने के लिए प्रेरित करे, अपितु ऐसे नियमों का विधान करे जिनके द्वारा एक विशिष्ट जनसमूह अथवा जनसमाज भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उपयुक्त व्यवहार या बर्ताव कर सके। आये दिन यह

देखा जाता है कि छात्रों के सघो द्वारा आन्दोलन खड़े किये जाते हैं। इन आन्दोलनों में कुछ तो रचनात्मक होते हैं, किन्तु कुछ ऐसे होते हैं जो निरे ध्वंसात्मक होते हैं और जिनका मुख्य लक्ष्य होता है किसी व्यवस्था-विशेष के प्रति विप्लव, नियंत्रण का अभाव और उच्छृङ्खलता का प्रदर्शन। उसी प्रकार हम यह देखते हैं कि किसी मेले में या किसी महत्त्वपूर्ण अधिवेशन में हमें इस प्रकार के कायदे-कानून का विधान करना पड़ता है जिसके अभाव में जनसमाज का बहुत बड़ा अहित हो सकता है। इन सभी विधानों के दो पहलू होते हैं—एक तो वह जो शासन अथवा शासक के अधीन है, और दूसरा वह जिम्मा उत्तरदायित्व जनसमाज पर है। उदाहरणतः, सन् १९५४ की फरवरी में प्रयाग के कुम्भ भेरे में जो दुर्घटना हुई और जगके फलस्वरूप बहुत बड़ी मख्या में जाने गई और लोग क्षत-विक्षत हुए, उसका उत्तरदायित्व अशतः तो सरकार, पुलिस तथा अन्य शासन के विभागों को लेना ही होगा; किन्तु उसका कम उत्तरदायित्व उस जनता का नहीं था जिमने विषम परिस्थिति में लेशमात्र भी समझ बूझ से काम नहीं लिया और भेड़ की नाई इधर-उधर विशृंखल भाव से भाग पड़ी।

सारांश यह कि व्यक्ति और समाज ये दोनों सापेक्ष सत्ताएँ हैं, और सापेक्ष होते हुए भी कुछ अंशों में उनमें से प्रत्येक के लिए पृथक् नियम और अनुशासन की आवश्यकता होती है। सामाजिक व्यक्ति और शिक्षा से उस शिक्षा की ओर सकेत है जिसके द्वारा प्रत्येक समाज का व्यक्ति जिस समाज में अपने को पावे उसके उपयुक्त अपने सापेक्ष्य को बना सके, और अपने हित-साधन के साथ-साथ उस समाज के हित-साधन में भी क्रियात्मक भाग ले सके। समाज-शिक्षा से उस शिक्षा का भी अभिप्राय है जिसके द्वारा कोई जन-समुदाय अथवा किसी सम्प्रदाय या सस्था के सदस्य, मिल-जुलकर, किस प्रकार व्यवहार करें, इसका समुचित ज्ञान प्राप्त कर सकें; और ऐसा न हो कि कोई एक जनसमुदाय किसी दूसरे जनसमुदाय के साथ टकरा जाय, अथवा उनके हितों में परस्पर संघर्ष हो जाय।

इससे और भी व्यापक अर्थ लिया जाय तो समाज-शिक्षा का लक्ष्य यह होगा कि वह प्रत्येक के हृदय में विश्व के मानवमात्र के कल्याण की भावना आरोपित करे, और क्रमशः एक ऐसी सामान्य मनोवृत्ति के विकास में

साधक हो जिसके द्वारा वह व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र के नाम पर
समाजशिक्षा का शोषण की मनोवृत्ति का सर्वथा परित्याग कर दे, तथा
व्यापक अर्थ “सर्वजनहिताय” और “सर्वजनसुखाय” बरतता हुआ
महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित “सर्वोदय” के पवित्र
लक्ष्य को कार्यान्वित करे।



परिच्छेद पाँच

समाजशास्त्र और सामाजिक शिक्षा

यद्यपि समाज व्यक्तियों के सम्मिलन में ही बनता है, फिर भी समाज अपनी एक स्वतंत्र सत्ता रखता है। जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की मनोवृत्ति और आचार-व्यवहार कुछ मिद्वान्तों पर अवलम्बित है और समाजशास्त्र वे वैज्ञानिक अध्ययन की सामग्री है, उसी प्रकार समाज अथवा मानव-समुदाय की मनोवृत्ति तथा आचार-व्यवहार भी वैज्ञानिक अध्ययन एवं विश्लेषण के विषय हैं। इस प्रकार का अध्ययन और विश्लेषण समाजशास्त्र के अन्तर्गत आता है। मौरिस जिन्मबर्ग के शब्दों में “समाजशास्त्र मानव अन्तःक्रियाओं, अन्तःसंबंधों, उनकी समस्याओं और परिणामों का अध्ययन है”।

कुछ अधिक स्पष्टता के साथ यह कहा जायगा कि समाजशास्त्र के मुख्य कार्य निम्नलिखित तीन हैं—

(१) सामाजिक संबंधों का स्वरूप निर्धारण:—यह समाजशास्त्र जिन संबंधों, विशेषतः संस्थाओं अथवा समितियों के स्वरूपों के या नमूनों का वर्गीकरण और स्वरूप-निर्धारण करता है।

कार्य (२) उनके आपसी पक्षों और संबंधों का निर्धारण:—यह सामाजिक जीवन के भिन्न-भिन्न भागों, पक्षों और तत्त्वों यथा आर्थिक और राजनैतिक, नैतिक और धार्मिक, नैतिक और वैधानिक,

औदिक और सामाजिक—के पारस्परिक संबंधों को निश्चित करने का प्रयत्न करता है।

(३) सामाजिक परिवर्तन की समस्याओं का समाधान:—यह सामाजिक परिवर्तन और स्थिरता की मूलभूत अवस्थाओं को मुलझाने की चेष्टा करता है। चूंकि सामाजिक मवध (क) व्यक्तियों के स्वभाव (ख) एक दूसरे से उनके संबंधों (ग) समुदाय (Community) से उनके संबंधों और (घ) बाह्य वातावरण से उनके संबंधों पर निर्भर करते हैं, इसलिए समाजशास्त्र इनका अध्ययन करता है और उनसे उत्पन्न मधर्षों का समाधान प्रस्तुत करता है।^१

अब प्रश्न यह है कि समाजशास्त्र और भिन्न-भिन्न सामाजिक विज्ञानों के बीच क्या मवध है। उदाहरणतः अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, आचारशास्त्र, कानून-शास्त्र, इतिहास, राजनीतिशास्त्र ये—सामाजिक विज्ञानों के समाजशास्त्र अन्तर्गत आते हैं और इनका प्रतिपाद्य विषय भी समाज है, तथा सामाजिक तब फिर एक अलग शास्त्र—समाजशास्त्र—की क्या विज्ञान आवश्यकता है? मक्षेप में यह कहा जायगा कि समाज-शास्त्र मानवों को निरे व्यक्तियों के रूप में न देखकर समाज के मदस्यों की हैसियत से देखता है और सामान्य तथा व्यापक मानव-संबंधों का अध्ययन करता है, इसके विपरीत सामाजिक विज्ञान मानव संबंधों के किसी एक पहलू का अध्ययन करता है और मनुष्य को व्यक्ति के रूप में अपने विश्लेषण का आधार मानता है। फिर भी समाजशास्त्र और विभिन्न सामाजिक विज्ञान परस्पर मापेक्ष हैं। राजनीति और समाजशास्त्र को ही लीजिए।^१ किमी भी सामाजिक समस्या का अध्ययन और समाधान राजनीतिक परिस्थितियों को समझे और परिवर्तित किये बिना मभव नहीं है; साथ ही, किमी भी प्रकार के राजनीतिक परिवर्तन सामाजिक स्थिति एवं सिद्धान्तों को ध्यान में रखे बिना कार्यान्वित नहीं किये जा सकते।

अब हमें यह विचारना है कि समाजशास्त्र और समाजशिक्षा में क्या अन्तर है। स्थूल रूप में हम ऐसा कह सकते हैं कि समाजशास्त्र में सिद्धान्त-पक्ष की प्रबलता है और समाजशिक्षा में व्यवहार-पक्ष की। उदाहरणतः परिवार के मवध में अध्ययन करते हुए समाजशास्त्र यह जानना चाहेगा कि

परिवार की परिभाषा क्या है, परिवार का निर्माण कैसे होता है, परिवार के उद्गम के क्या कारण हैं, उसके उद्देश्य क्या हैं, उसका विकास कैसे होता है, परिवार के संघटन में विवाह संबंध की क्या देन है और समाजशास्त्र और परिवार का विघटन किन परिस्थितियों और किन कारणों से होता है। किन्तु समाज-शिक्षा इन मूल सिद्धान्तों, संबंधों समाजशिक्षा एवं कारणों के विस्तृत अध्ययन में अपना समय नहीं लगाएगा। वह भाई का भाई के प्रति, पुत्र का माता-पिता के प्रति, माता-पिता का पुत्र के प्रति, व्यक्ति का अपने समाज के प्रति क्या कर्त्तव्य है, इस पर व्यावहारिक स्तर पर विचार करेगा और कुछ ऐसे नियमों का विधान करेगा जिनके पालन से परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व को निभा सकेगा।

समूह अथवा समाज के अध्ययन में भी समाजशास्त्र और समाजशिक्षा के अलग-अलग दृष्टिकोण होंगे। जहाँ समाजशास्त्र सामाजिक प्रक्रिया और उसके अन्तः संबंधों पर ध्यान देगा, सहयोग, स्पर्द्धा, विरोध, अनु-पृथक् कूलन, समीकरण, सात्मीकरण आदि प्रक्रियाओं पर सूक्ष्मज्ञान दृष्टिकोण दिलाएगा, वहाँ सामाजिक शिक्षा को इस प्रकार के सूक्ष्म विश्लेषणात्मक ज्ञान की अपेक्षा नहीं होगी; वह तो समाज के प्रति, और समाज हित के लिए, व्यक्ति को कैसे बरतना चाहिए, समाज सेवा के व्यावहारिक पहलू क्या हैं और उनको कार्यरूप में कैसे परिणत किया जाय आदि विषयों का प्रतिपादन करेगी।

यह निववाद है कि समाजशास्त्र का अध्ययन समाजसेवी के लिए बहुत बड़ा सहारा होगा, किन्तु ऐसा भी संभव है कि यदि समाजसेवी में लगन और अध्यवसाय है, यदि वह चतुरता तथा कुशलतापूर्वक अपने उपसंहार कार्यों को करने की क्षमता रखता है तो समाजशास्त्र के सिद्धान्तों के अध्ययन के बिना भी बहुत अशों में अपने कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व का पालन कर सकेगा। इसके विपरीत सामाजिक-शिक्षा के सामान्य तत्त्वों और कार्य क्षेत्र के अंगों के जाने बिना वह कदापि ऐसा करने में समर्थ नहीं होगा।



परिच्छेद छः

शिक्षाप्रक्रिया और समाजशिक्षा

विगत विश्वमहायुद्ध के पश्चात् जिस प्रकार राजनीति और अर्थनीति के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, उसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी ।

महायुद्ध के पहले की शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त को प्राचीन शिक्षा-व्यक्तिवाद की सजा दी जा सकती है। व्यक्ति-पद्धति में गुरु वाद का भी जो प्राचीनतर रूप था उसमें एकमात्र शिक्षक का व्यक्तित्व ही केन्द्रीय बिन्दु था। नैयायिकों का स्थान की भाषा में इसे 'मार्जारन्याय' की शिक्षा कह सकते हैं। जिस प्रकार मार्जारी (बिल्ली) अपने बच्चे की

गर्दन मुँह में दबाकर लिये चलती है, अर्थात् मार्जारी ही सक्रिय रहती है, उसका बच्चा नितान्त निष्क्रिय,—उसी प्रकार शिक्षक ही जो दे और जिस रूप में दे, शिष्य को ग्रहण करना पड़ता था ! शिष्य उस निश्चेष्ट और निष्क्रिय घड़े के समान था जिसमें शिक्षक अपने इच्छानुसार अनाज संचित कर सकता था, चाहे उस अनाज की अपेक्षा शिष्य के जीवन में हो या न हो । उस संचय की प्रक्रिया में शिष्य को सभी तरह की यातनाएँ सहने के लिए तैयार रहना पड़ता था—छड़ी, डंडा, भूमिशय्या, 'जलसेवन', 'सूर्यनमस्कार', 'अग्नि-परीक्षा', 'कुक्कुटासन', प्राणायाम, 'उलटबांसी', सब कुछ ! शिक्षक का

व्यक्तित्व ही एकमात्र ऐसा साँचा था जिसमें सभी प्रकार और सभी प्रकृति के छात्रों को ढलना था। इस व्यक्तिवाद की तुलना राजनीति के इतिहास में साम्राज्यवाद और पूँजीवाद से की जा सकती है।

जब इतिहास के चक्र का निचला छोर ऊपर की ओर आया, जब साम्राज्यवाद के स्थान को जनतन्त्रवाद ग्रहण करने लगा, तो व्यक्तिवाद की धारणा में भी परिवर्तन हुआ। पहले जहाँ गुरु के **परिवर्तित** व्यक्तित्व की सत्ता में छात्र के व्यक्तित्व का विलयन इष्ट **धारणा** था, वहाँ अब छात्र के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास को ही **का महत्त्व** शिक्षा का चरमलक्ष्य समझा जाने लगा। कुछ शिक्षा-शास्त्रियों ने गुरु को अनावश्यक तत्त्व मानने के पक्ष में कलम उठाई; और जिन्होंने आवश्यक तत्त्व माना भी, उन्होंने या तो उसे छात्र का समकक्ष बताया अथवा उससे अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण। उदाहरणतः, रूसो (Rousseau) का यह विचार था कि यदि प्रकृति का वातावरण और परिष्कृत परिस्थितियाँ मिलती जायं तो छात्र गुरु की सक्रिय अपेक्षा के बिना भी अपनी शक्तियों का समुचित विकास करने में समर्थ होगा।

विगत महायुद्ध में एक आश्चर्यजनक घटना ने अमेरिका, इंग्लैंड आदि सभी देशों को सकाँचोँध कर दिया। रूस ने, जो लगभग २५ वर्ष पहले बहुत ही पिछड़ा और अशिक्षित देश था, इतनी थोड़ी-सी नवीन शिक्षा-**पद्धति** में अवधि में इतनी अधिक उन्नति की कि उसने हिटलर के जर्मनी की दानवी सैन्यशक्ति को चकनाचूर कर दिया और **व्यक्ति तथा समाज का समन्वित विकास** वैज्ञानिक प्रगति में भी अमेरिका और इंग्लैंड का समकक्ष-सा होता दीख पड़ा। इस अद्भुत घटना ने रूस की कार्य-पद्धति को एक नवीन रूपरेखा दी जिसे एक शब्द में कहा जाता है 'साम्यवाद' या 'समाजवाद'। समाजवाद के सिद्धान्तानुसार व्यक्ति का अस्तित्व तब तक कोई महत्त्व

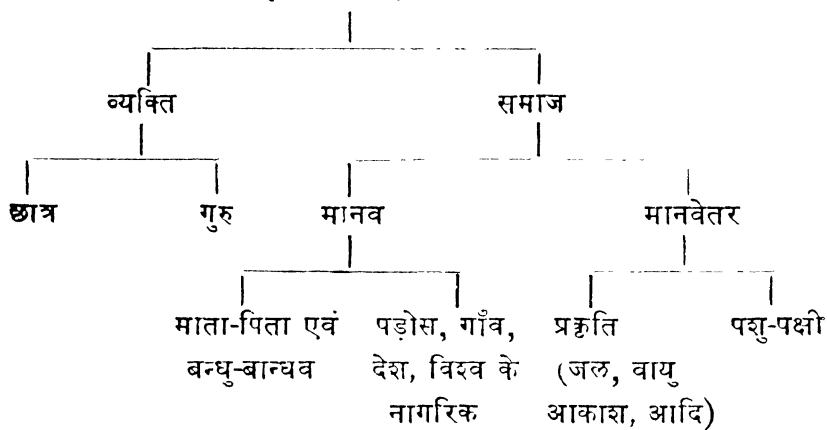
नहीं रखता जब तक वह अपने को अपने नाना-प्रकारों का अंग बनाकर उसमें विलीन न कर दे। यदि खेती करनी हो, उद्योग-अध्यवसाय चलायाना हो, गाँव की सफाई करनी हो, उसके नागरिकों का जीवन सर्वतोभावेन उन्नत करना हो, तो गाँव को सर्वथा सामाजिक अथवा सामूहिक रूप में आगे बढ़ाना होगा, गाँव की सारी सम्पत्ति सभी गाँववालों की होगी। व्यक्ति का प्रभाव और है, और समाज का प्रभाव और। जिस प्रकार नीले और पीले के संयोग से हरे रंग की

उत्पत्ति होती है, जो नीले और पीले दोनों से भिन्न एक तीसरा रंग है; जिस प्रकार हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिश्रण से एक तीसरी सत्ता 'जल' का आग्निर्भाव होता है; उसी तरह गाँव के सभी व्यक्तियों के मिलने से जिस सामूहिक शक्ति — समाज — की सृष्टि होती है वह उन सबों से भिन्न एक तीसरी शक्ति है; अतः शिक्षा यदि केवल व्यक्तित्व का विकास करे तो उसका उद्देश्य पूर्ण नहीं कहा जा सकता, जबतक वह समाज को एक अलग और महत्वपूर्ण सत्ता मानकर उसे उत्तम एवं परिष्कृत करने की प्रणाली विकसित न करे।

प्रत्येक शिक्षाविशेषज्ञ को यह उपर्युक्त सिद्धान्त ध्यान में रखना चाहिए। किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि हम यह मान ले कि व्यक्तिवाद के सिद्धांत में कोई तथ्य नहीं है। वस्तुतः व्यक्तिवाद और समाजवाद व्यक्तिवाद तथा समाजवाद की दोनों ही हमारे लिए उपयोगी हैं — हम तो मानते हैं कि शिक्षा-विज्ञान के विकास में दोनों ने अपनी महत्वपूर्ण देन दी है। अतः हमारी शिक्षणसंस्थाओं का यह कर्तव्य होना चाहिए कि ऐसे उपायों का अवलम्बन करे, जिनसे छात्र न केवल व्यक्तिगत रूप में अपने जीवन का लक्ष्य पूरा कर सके, अपितु समाज का अनिवार्य अंग बनकर समाज के सामूहिक कार्यक्रम में भी उचित हाथ बटा सकें, और आवश्यकतानुसार अपनी व्यक्तिगत सत्ता को सामाजिक सत्ता में विलीन भी कर सके। 'समाज' का प्रयोग हमने बहुत ही व्यापक अर्थ में किया है; इसके अन्दर प्रकृति (Nature) भी सम्मिलित है। आग, पानी, हवा, कलकल-छलछल प्रवाहित होनेवाली निर्झरिणी, शुभ्रसलिला मन्थरगामिनी गंगा, उडती-चहचहाती चिड़ियाँ, विस्तृत व्योमवितान, गम्यश्यामला भूमि, उत्तुंग पर्वत, अपार पारावार—सभी हमारे जीवन में हमारा "वातावरण" या समाज बनकर पिरोये हुए हैं, और वे न केवल हमें प्रभावित करते हैं, अपितु हमसे प्रभावित भी होते हैं। हमारे मातापिता, बन्धु बान्धव, अडोस-पड़ोस, देश-विदेश के रहनेवाले जन-समाज, पशुपक्षी—विश्व के सभी प्राणी हमारे समाज के अनिवार्य अंग हैं, और उनसे प्रभावित होना और उनको प्रभावित करना, दोनों हमें सीखना है। तभी शिक्षा सर्वांगपूर्ण कही जा सकती है।

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि शिक्षा-संस्थाओं और शिक्षा-शास्त्रियों को निम्न-उपसंहार लिखित तत्त्वों को ध्यान में रखते हुए और उनका उचित समन्वय करते हुए अपनी पद्धति को रचनात्मक रूप देना चाहिए।

शिक्षा-प्रक्रिया के तत्त्व



परिच्छेद सात

समाजशिक्षा और समाजसेवा का रचनात्मक कार्यक्रम

प्रत्येक सामाजिक क्षेत्र के कार्यकर्ता अथवा समाजसेवी को यह ध्यान में रखना होगा कि उसकी योजना अथवा कार्यक्रम एकांगी न हो, और वह किसी एक विशिष्ट पहलू को लेकर ही उस-जीवन की समष्टि पर आवश्यकता से अत्यधिक बल न दे। हमारी योजना और उसकी का कार्यक्रम व्यापक होना चाहिए। इसके मूल में समस्याओं की एक बहुत बड़ा सिद्धांत भी है;—वह है मानव-व्यापकता जीवन की व्यापकता। मानव जब अपनी जीवन-यात्रा में अग्रसर होता है, तो ससार वात्याचक्र के समान उसे चारों ओर से घेर लेता है तथा समस्याओं का एक बहुत बड़ा जाल उसके सामने बिछा देता है; और उसे इनका सामना एक ही साथ करना पड़ता है। अनुमान कीजिए कि एक राही चलते-चलते संध्यासमय एक घने जंगल में पहुँच गया। काले काले ऊँचे दैत्य-सदृश घने वृक्ष, सर्पवृश्चिकादि-मकुल उलझी हुई झाड़ियाँ, कहीं खाई कहीं टीला, कहीं व्याघ्र कहीं भालू, कहीं पानी कहीं दलदल, निविड अंधकार और ऐसा स्थान जिसके “आगे राह नहीं” ! राही उस समय यह नहीं सोच सकता कि पहले किसी एक बाधा को पार कर ले तब दूसरी बाधा पर ध्यान दे। सभी बाधाओं और

व्याधातों का उसे एकाग्र चित्त और सकलित शक्ति के द्वारा मुकाबला करना पड़ेगा। जीवन कानन का राही भी कुछ ऐसी ही परिस्थिति में रहता है। जैसे कहने को तो हम अपनी समस्याओं में किन्हीं को आर्थिक, किन्हीं को नैतिक, किन्हीं को राजनीतिक आदि कहकर उनकी विवेचना करते हैं, और उनका अलग-अलग समाधान भी ढूँढना चाहते हैं, और विवेचना की सतह पर यह विश्लेषणात्मकता (analytic method) ही उपादेय भी है, किन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में हमारी समस्याएं अपने उलझे सामूहिक रूप में ही हमारे सामने आती हैं। कहा भी है, विपत्तियाँ दल बाँधकर चलती हैं (Misfortunes never come alone)।

समाजशिक्षा अथवा समाजसेवा का लक्ष्य यह है कि हम प्रत्येक व्यक्ति को उसके व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन की समस्याओं को सुलझाने की प्रेरणा दे, इस दिशा में उसका मार्ग-प्रदर्शन करें, और उसकी समाजसेवक उन अन्तर्निहित शक्तियों को विकसित करने का साधन का लक्ष्य ढूँढ निकालें जिनके द्वारा वह अपने वात्स्याचक्र में पड़कर भी विचलित न हो और अपने लक्ष्य का स्पष्ट रूप अपनी आँखों के सामने रखकर उसकी पूर्ति में प्रयत्नशील हो।

उपर्युक्त सामान्य सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए हमें समाजशिक्षा और समाजसेवा की योजना अथवा कार्यक्रम में प्रायः सभी जीवनोपयोगी बातों का समावेश करना होगा। इन बातों सप्तसूत्री में से कुछ मुख्य बातें निम्नलिखित मात हैं; और योजना इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए इस योजना को हम “सप्तसूत्री योजना” कह सकते हैं।

१. शिक्षा एवं साक्षरता :—निश्चय ही वयस्कों की शिक्षा एवं साक्षरता समाजशिक्षा का मुख्य अंग होगी। सामान्यरूप से समाजशिक्षा के क्षेत्र में बालक-बालिकाओं की शिक्षा को पृथक् माना जाता है। ऐसा मानना वस्तुतः सुविधा की दृष्टि से है, न कि किसी सिद्धान्त की दृष्टि से। अतः जहाँ हमें केन्द्रों में वयस्कों को साक्षरता देने की व्यवस्था करनी होगी; वहाँ साथ-ही-साथ देखना होगा कि जो हमारा कार्यक्रम है, उसमें बालक-बालिकाओं की शिक्षा की व्यवस्था संतोषजनक है या नहीं। यदि नहीं है, तो समाजसेवक का यह कर्तव्य होगा कि उचित सख्या में उचित प्रकार की शिक्षण-संस्था की स्थापना करे और उसके संचालन के लिए जनता को जागरूक बनावे तथा

सरकार को भी साहाय्य के लिए प्रेरित करे। वयस्को के लिए साक्षरता-प्रदान की जो व्यवस्था हो वह ऐसी हो जो उन्हें शुक्ल अक्षरमात्र का ज्ञान न करावे, बल्कि उन्हें अपने और अपनी समस्याओं के संबंध में सोचने और उनका हल निकालने योग्य बनावे। समाज-केन्द्रों और उनकी प्रगतियों के संगठन की विधि क्या होनी चाहिए, इसपर हम विस्तार से अन्यत्र विचार करेंगे; परन्तु इस स्थल पर हम यही प्रतिपादित करना चाहते हैं कि शिक्षा तथा साक्षरता का कार्यक्रम हमारे लिए, विशेषतः शिक्षा-विभाग से संबंध रखनेवाले व्यक्तियों के लिए, बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

२ व्यक्तिगत एवं सामाजिक स्वच्छता—अंगरेजी में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि “Cleanliness is next to godliness” अर्थात् स्वच्छता देवत्व का प्रतीक है। स्वच्छता के दो पक्ष हैं—व्यक्तिगत और सामाजिक। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह अपने शरीर, अपने घर-आँगन और आसपास की जगह की सफाई करे। यदि केवल स्वच्छता के ही नियम पालन किये जायें, तो मनुष्य सामान्यतया रोगों से मुक्त रह सकता है। यही कारण है कि प्रारम्भ में जब बच्चों को अच्छी आदतें सिखाई जाती हैं तो उनमें सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता है सफाई की आदतों को। महात्मा गांधी ने भी स्वच्छता को अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया था। आज जब हम अपने मित्रों, भाई-बन्धु और पड़ोसियों को चलते-चलते मडक पर आसपास थूकते, जगह-जगह मूत्र-मलादि करते, गंदे-से-गंदे घरों में रहने और साँस लेते, दिनों, मप्पानों, महीनों तक स्नान न करते देखते हैं, तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रारम्भ से ही हमने शारीरिक स्वच्छता-जैसे मौलिक आचारतत्त्व की अवहेलना की है। यदि केवल निरक्षर और अनाड लोग ऐसा करें तो शायद कुछ अंशों तक क्षम्य हो। किन्तु हम तो यह देखते हैं कि पढ़े-लिखे व्यक्ति भी स्वच्छता के मौलिक नियमों का पालन नहीं करते। प्राथमिक शिक्षा के स्तर में ही स्वास्थ्य-विज्ञान की शिक्षा दी जाती है, किन्तु जब युनिवर्सिटी की उच्च शिक्षा प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों को भी हम बुरी तरह स्वच्छता-सम्बन्धी नियमों की उपेक्षा करते देखते हैं तो हमें अपनी शिक्षा-पद्धति पर तरस आता है। अपने व्यक्तिगत अनुभव में, विद्यालयों के निरीक्षण के क्रम में, हमने देखा है कि धूल और झोल से भरे, फटे-चिथड़े कागजों के टुकड़ों से आच्छादित कमरे में एक अध्यापक विद्यार्थियों को बड़ी शान और योग्यता के साथ किताब-

में लिखी हुई स्वास्थ्य-संबंधी बातें पढ़ाता है। भला इसमें अधिक 'व्याघात' क्या हो सकता है ! विचार और व्यवहार में इससे अधिक अन्तर कहाँ हो सकता है !

जो व्यक्ति अस्वच्छ है, और कहने पर भी अपनी बुरी लतों से बाज नहीं आता, वह एक व्यक्ति होते हुए भी सामाजिक संकट (social calamity) है। मान लीजिए कि एक ऐसा मनुष्य है

व्यक्तिगत स्वच्छता जिसे खाँसी, सर्दी अथवा चेचक का रोग हो गया है—यक्ष्मा कुष्ठ आदि भयानक रोगों की तो चर्चा ही छोड़ दीजिए;—

यदि ऐसा व्यक्ति अपनी रुग्णावस्था में भी अन्य लोगों के सम्पर्क में आने से परहेज नहीं करता, तो आप तो अभिशप्त है ही, दूसरों को भी अपने अभिशाप का 'बायन' बाँट देगा।

व्यक्तिगत स्वच्छता के अनिरिक्त सामूहिक अथवा वातावरणगत स्वच्छता भी आवश्यक है। उदाहरणतः, यदि किसी गाँव में हैजे की बीमारी फैली हो, तो आवश्यक है कि वहाँ के सभी कुओं और जलशयों को ओषधि आदि के द्वारा स्वच्छ बनाया जाय और रोग के कीटा-

सामूहिक स्वच्छता णुओं का नाश किया जाय। दूसरी बात यह है कि हमारी सामूहिक जीवन-व्यवस्था में कई ऐसे स्थल होते हैं, जिनकी स्वच्छता का उत्तरदायित्व, एक व्यक्ति पर न होकर, सारे समाज पर होता है; सड़क, गली, मन्दिर, मस्जिद, मैदान, पार्क आदि कुछेक ऐसी जगहें हैं, जिनकी सफाई का विधान या तो सारे समाज को करना है या उस संस्था को जिसे समाज ने इस उद्देश्य से संगठित किया हो, अर्थात् म्युनिसिपैलिटी, कारपोरेशन, और पंचायत आदि।

हमलोगों में से हर एक ने ऐसे अनेक दारुण अवसरों का साक्षात् अनुभव किया होगा जिनमें किसी व्यक्ति अथवा केवल कुछ लोगों की अवधानता और स्वच्छता के नियमों की उपेक्षा के कारण

अस्वच्छता के दुष्परिणाम कुत्ते का कुत्ता और गाँव का गाँव का रु-रुविलित हो गया। इन सारी बातों को ध्यान में रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि व्यक्तिगत तथा सामूहिक सफाई हमारी सामाजिक शिक्षा और सामाजिक सेवा के कार्यक्रम का प्रमुख अंग होना चाहिए।

३ स्वास्थ्य तथा ओषधि-वितरण :—जनता के स्वास्थ्य की सुरक्षा और रोगों का उन्मूलन तथा ओषधि-वितरण,—यह एका पहलू है जो वस्तुतः

राजकीय शासन के जनस्वास्थ्य-विभाग अथवा ओषधि-विभाग के अन्तर्गत आना चाहिए और इसके अन्तर्गत है भी । किन्तु यह भी निश्चित है कि कोई भी समाज-शिक्षा का कार्यक्रम तब तक सफल नहीं होगा जब तक उसके साथ-साथ दोनहीन जनता के स्वास्थ्य की चिन्ता न की जाय और उसकी रूग्णावस्था में उसकी सहायता न की जाय । प्रायः देखा जाता है कि ईसाई मिशनरियों ने जो जनता में अपने धर्म और विचारों का प्रचार किया और उसमें सफल हुए, उसके मूल में अन्य कारणों के साथ एक यह भी कारण था कि उन्होंने दवादारू तथा सेवा-शुश्रूषा को बड़ी सुन्दर व्यवस्था की । जिस प्रकार लोहा जब अग्न में तपकर द्रवित हो जाता है तो उसको हम मनमाना आकार-प्रकार दे सकते हैं, उसी प्रकार मानव-हृदय जब रोग और व्याधि से आक्रान्त होकर पिघल जाता है, उस समय यदि हमने उसकी सहायता की, उसके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया, तो वह स्वतः हम से प्रभावित होगा और हमारी बातें उसके मन में घर कर जायेंगी । अतः समाजशिक्षा-संगठनकर्त्ता का यह कर्त्तव्य होगा कि वह अपने ग्राम तथा अपने क्षेत्र के लोगों और उनके रोगों की पूरी जानकारी प्राप्त करे; और जब-जब जिस प्रकार के स्वास्थ्यसंबन्धी नियमों तथा ओषधियों के पालन और प्रदान की आवश्यकता हो तब-तब उनकी समुचित व्यवस्था करे । उसको यह भी ध्यान में रखना होगा कि नियमित आहार-विहार का पालन रोगों के निवारण का मुख्य साधन है (Prevention is better than cure) । अतः उसे जनता में सुधरे तथा सजुलित आहार का प्रचार करना होगा और प्राचीन अनर्गल रूढ़ियों के विरुद्ध मार्चा कायम करना होगा । हममें उभयुक्त आहार न सेवन करने के अतिरिक्त एक व्यापक त्रुटि यह भी है कि प्रायः हम सभी आवश्यकता से अधिक मात्रा में भोजन करते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि हमारी दरिद्रता और बढ़ती जाती है और हम अत्याहारजन्य रोगों के भी शिकार होते चले जा रहे हैं । गाँवों में शीतला, मूच्छा, तीव्र ज्वर आदि अनेक रोग ऐसे हैं जो भूत, प्रेत, पिशाच, डाइन आदि द्वारा जनित समझे जाते हैं और उनमें झाड़फूंक आदि जैसे उपचारों का उपयोग किया जाता है जिनका कोई वैज्ञानिक अथवा बुद्धिमत्त आधार नहीं है । कार्यकर्त्ता का यह उत्तरदायित्व है कि जनता में वह इस प्रकार की भ्रान्तियों को दूर करे और समय-समय पर विशेषज्ञों के परामर्श से कुओं की सफाई तथा महामारी आदि सन्नामक रोगों के निवारण के उपायों का अवलंबन करे । स्त्रियों के स्वास्थ्य का

दशा प्रायः अत्यन्त शोचनीय होती है । उनके नित्य के नियमों के पालन के लिए भी खाई (trench) पाखाने आदि की कोई व्यवस्था नहीं रहती; बच्चे के प्रसव के समय मूर्ख धाइयाँ आकर दूषित और गंदे ढंग से शुश्रूषा करती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि बहुत बड़ी संख्या में शिशु “जम्हुआ” के छू जाने से कालकवलित होते हैं । कार्यकर्त्ता का ध्यान इन सभी दुःस्थितियों की ओर होना चाहिए । गाँवों में, खासकर किसानों और मजदूरों में, एक और प्रचलित बीमारी है “टुकवर्म” की । यह बीमारी न केवल असमय वृद्धावस्था लाती है बल्कि मनुष्य को रक्तहीन तथा शक्तिहीन बना देती है । उसका कारण यह है कि लोग बिना विचारे खेतों में मलमूत्र का त्याग करते हैं और फिर उन्हीं स्थानों में पंदल घूमते हैं । यदि आठ-दस आने की टेट्राकैप (Tetracap) आदि ओपधि का प्रयोग किया जाय और पैर में जूता पहना जाय तो इस साधारण किन्तु भयानक रोग से मुक्ति हो सकती है । समय-समय पर कुओ के जल की शुद्धि भी आवश्यक है और कुएँ के ऊपर “जगत” का होना अत्यन्त आवश्यक है । स्वास्थ्यसंबंधी रचनात्मक उपायों में नियमित व्यायाम, खेलकूद, आदि का प्रबन्ध भी अपेक्षित है ।

यहाँ इस प्रसंग में जो कुछ भी कहा गया वह केवल निदर्शनमात्र है । मुख्य तात्पर्य यह है कि सामाजिक शिक्षा तथा समाजसेवा की कोई भी योजना तबतक पूरी नहीं कही जायगी जबतक उसमें जनस्वास्थ्य की उन्नति, रोगनिवारण तथा सेवा-शुश्रूषा का स्थान न हो ।

४ सामाजिक कुरीतियों का निवारण : हमारे समाज में अभी अनेक प्रकार के अवगुण और बुराइयाँ आ गई हैं, जिनके कारण हमारी दशा कई दृष्टियों से शोचनीय हो गई है । इन अवगुणों में मुख्य हैं—बाल-विवाह, अत्यधिक तिलक-दहेज, नशाखोरी, जूआ, अस्पृश्यता, जातपाँत की बुद्धिहीन वितण्डा, पर्दा आदि । वैसे तो इन अवगुणों के समूल नाश के लिए अनिवार्य शिक्षा का कार्यान्वित होना अनिवार्य है, किन्तु यह भी आवश्यक है कि हम उपर्युक्त दुर्गुणों के विरुद्ध सामाजिक चेतना का निर्माण करें, नैतिक एवं सामाजिक बन्धनों द्वारा जनता को इनसे रोकें, और सामाजिक जीवन को उन्नत बनावें । कोई भी ऐसा गाँव न होगा और कोई ऐसा मुहल्ला न होगा जहाँ लोग अधिक-से-अधिक संख्या में बीड़ी, तम्बाकू, खैनी, सिगरेट, आदि मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करते । उनको यह समझना होगा कि यदि

गांव का हर एक आदमी एक दिन के लिए भी इनका सेवन वर्जित कर दे तो उस गांव की आर्थिक आमदनी पचास या सौ रुपये या इससे भी अधिक बढ़ जायगी। यह अनुमान कठिन न होगा कि साल भर की इस छोटी-सी बचत से आसानी से एक पाठशाला अथवा विद्यालय चल सकेगा। विवाह के नाम पर जिस प्रकार तिलक-दहेज की प्रथा चल पड़ी है और जिस प्रकार आतिशबाजी, हाथी, घोड़े तथा व्यथ के ठाटबाट में अपव्यय हो रहा है, वह भला शोभन कैसे कहा जायगा—विशेषतः एक ऐसे देश में जहाँ लाखों-करोड़ों लोगों को पेट के लाले पड़े हैं ! लगन के दिनों में पालकी पर बैठे हुए अबोध कोमल आयु के शिशुओं को वर तथा कन्या के वेश में गुडियों की नाई सजे-सँवारे देखकर किसी भी सहृदय व्यक्ति का हृदय मर्मन्तिक वेदना से भर जायगा। हमें यह अनुभव करना चाहिए कि बाह्यावस्था में, जिस समय एक व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सका है, उसे विवाह के बंधन में जकड़ देना उसको पौरुषहीन तथा कायर बना देना है, और उसके अभिशप्त जीवन के साथ एक दूसरे कोमल कमनीय जीवन को भी अभिशप्त करके, दोनों को “अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः” नरक का अन्धकारमय गुफा में ढकेल देना है। जातपाँत की संकीर्णता तो शायद समग्र विश्व में भारत की ही दुर्विशेषता है, और इसका विषमय प्रभाव इतना व्यापक है कि वह प्रत्येक क्षेत्र में—चाहे वह राजनीतिक हो, चाहे आर्थिक हो, चाहे सामाजिक हो—कालुष्य की रेखा बनकर उसकी तह में प्रवेश कर जाती है और उसे दूषित तथा विकृत बना देती है। जो स्थान राजनीति में साम्राज्यवाद का है, जो स्थान अर्थनीति में पूँजीवाद का है, जो स्थान दण्डनीति में फाँसी का है, वही स्थान समाजनीति में संकुचित जातपाँत का है। आवश्यकता है कि हम इस क्षेत्र में क्रान्तिकारी कदम उठावें। सामाजिक कार्यकर्त्ता का इस दशा में न केवल महान् अपितु विकट उत्तरदायित्व है।

५ आर्थिक उन्नयनः—किसी भी राष्ट्र को उन्नत राष्ट्रों में स्थान पाने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी अर्थनीति सुदृढ़ नींव पर आश्रित हो। यदि वाणिज्य-व्यापार की दृष्टि से एक राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र के साथ वस्तु-विनिमय करता है, और विनिमय के द्वारा उसकी अपनी आर्थिक स्थिति पहले से उन्नत होती है, तब तो उस राष्ट्र की अर्थनीति सफल समझी जायगी। किन्तु यदि कोई राष्ट्र अन्य राष्ट्रों पर इस प्रकार परावलम्बी बनकर रहे, कि वे राष्ट्र अपना वस्तु-विनिमय बन्द कर दे और उधार देना

रोक दें तो लोग भूखों मरने लगें, अथवा व्यवस्था ठप पड़ने लगे, तो उस राष्ट्र को हम अवन्त तथा परावलम्बी मानेंगे । लगभग डेढ़ सौ वर्षों के अंगरेजी साम्राज्य ने भारतवर्ष को सब तरह से परावलम्बी बना रखा था । उसकी वह परावलम्बिता अभी भी विद्यमान है । यही कारण है कि हम अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं—खाद्य तथा वस्त्र—के लिए भी अमेरिका आदि देशों पर आश्रित हैं । इसलिए हमारा यह प्रथम कर्तव्य है कि हम अपने देश की पैदावार को बढ़ाये, कृषि को उन्नत करे, गृह-उद्योग का विकास करें और इस प्रकार के सभी अन्य साधनों को काम में लायें जिनसे हम आर्थिक रूप में प्रगतिशील, तथा क्रमशः न केवल स्वावलम्बी हो सकें, अपितु इस योग्य हो सकें कि आवश्यकता पड़ने पर अन्य राष्ट्रों का साहाय्य कर सकें । इस आर्थिक उन्नति के लिए हमें अपना ध्यान गाँवों की ओर ले जाना होगा और प्रत्येक ग्राम अथवा ग्राम-समुदाय को आर्थिक स्वावलम्बन की ओर अग्रसर करना होगा । कृषि में छोटे-छोटे टुकड़ों को मिलाकर बड़े-बड़े खेत बनाने होंगे और सहयोग के सिद्धांत के आधार पर खेती तथा उसकी उपज के विक्रय की व्यवस्था करनी होगी । मवेशियों की नस्लों में सुधार करना होगा । इस प्रकार की ऐसी सैकड़ों योजनाएँ हैं जिन्हें हमारी सरकार भी कार्यान्वित कर रही है, और इसी दृष्टि से सामुदायिक विकास विभाग (Community Project) की स्थापना हुई है । ग्राम-पंचायतों के द्वारा भी ग्रामों की सर्वांगीण उन्नति के लिए प्रयत्न हो रहे हैं । इन सभी योजनाओं और सरकार के अनेकानेक भिन्न-भिन्न विभागों के प्रयत्नों द्वारा ग्रामों की आर्थिक उन्नति में सन्तोषजनक प्रगति हो रही है । जमीन्दारी-प्रथा के उन्मूलन ने भी जन-जीवन की आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए नई दिशा प्रस्तुत की है ।

अब प्रश्न यह है कि अनेकानेक सरकारी विभागों के होते हुए समाज-शिक्षा-कार्यकर्ता की आवश्यकता क्या रह जाती है । वस्तुतः समाज-शिक्षा-कार्यकर्ता

की उपयोगिता फिर भी अनिवार्य है । यही कारण है कि

समाजशिक्षा- कार्यकर्ता का 'समन्वयात्मक कार्य'	सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत प्रत्येक विकास-क्षेत्र (Development Block) में समाजशिक्षा-धिकारी (Social Education Organiser) को भी स्थान दिया गया है । और भी अनेक कारण हैं । सर्वप्रथम कारण तो यह है कि चाहे

सरकार कितने भी प्रयत्न करे, जब तक जनता उन प्रयत्नों के साथ तादात्म्य का अनुभव नहीं करती है और सरकार को अलग न मानकर उसके साथ पूर्ण सहयोग नहीं करती है, तबतक आशंका यह है कि राष्ट्रिय सम्पत्ति का अपव्यय बहुत बड़े पैमाने पर होगा। अतः जनता और सरकार के बीच जो परस्पर साहचर्य की भावना है, व्यक्ति-व्यक्ति का अपने समाज के अन्य व्यक्तियों के प्रति जो उत्तरदायित्व है, उसका होना आवश्यक है और इस प्रकार की भावना तथा उत्तरदायित्व को जनता के हृदय तथा उसके जीवन में संचारित करना समाजसेवी अथवा समाज-शिक्षा-कार्यकर्त्ता का ही मुख्य कर्त्तव्य है। उसका यह भी कर्त्तव्य है कि वह अपने कार्यक्षेत्र में प्रकाशस्तम्भ (beacon light) तथा ज्ञानवितरण के माध्यम (clearing house for information) का काम करे। भिन्न-भिन्न विभागों के पदाधिकारियों से मिलना, उससे उपयुक्त साहित्य एकत्र करना, लोगों को भिन्न-भिन्न विभागों से उचित लाभ उठाने के लिए प्रेरित करना, अपने देश की रोज-रोज की खबरो तथा सामान्य नीतियों से लोगों को अवगत करना;—ये अनेकानेक ऐसे कार्य हैं जो समाजसेवी कार्यकर्त्ता निष्ठा तथा सुन्दरता के साथ कर सकता है। इस प्रकार हम यह अनुभव कर सकते हैं कि आर्थिक उन्नयन में भी समाजशिक्षा-विभाग का उत्तरदायित्व कितना व्यापक तथा महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रसंग में कार्यकर्त्ता को एक और ऐसे विषय का पूर्ण ध्यान रखना होगा जिसकी प्रायः हम उपेक्षा किया करते हैं। हमारे देश में जनसमुदाय का एक बहुत बड़ा अंश बेकार रहता है।
 बेकारी और उसका निराकरण और साथ-ही-साथ एक ऐसा अंश भी है जो शारीरिक परिश्रम से घृणा करता है। आज जो पढ़-लिखे लोग बेकार हो रहे हैं, और उनकी संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है, उसके मूल में अनेकानेक कारण हैं, जिनमें एक है हमारी त्रुटिपूर्ण शिक्षापद्धति। आज से लगभग ८० वर्ष पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक व्यंग्य लिखा था—

“तीन बुलावे तेरह धावे,
 निज निज बिपदा रोइ सुगवे ।
 आँखी फूटी भरा न पेट,
 क्यों साख साजन ?—नाह ‘ब्रेजुपुट’ ॥

भारतेन्दु द्वारा प्रस्तुत यह दूरदर्शितापूर्ण चित्र आज नग्न ताण्डव कर रहा है। किन्तु यहाँ हम इन पढ़े-लिखे बेकारों की चर्चा करना नहीं चाहते। हम तो उन किसानों की स्थिति की ओर समाजसेवी का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जो सालभर में कुछ महीनों और कुछ दिनों, वृष्टि-अनावृष्टि की दैवी योजना पर आश्रित रहकर, बड़ी मिहनत से कुदाल चलाते हैं, हल जोतते हैं और फसल में पानी पटाते हैं, फिर महीनों हाथ पर हाथ धरे भगवान का नाम लेते पड़े रहते हैं, और इस बीच अपने अमूल्य समय का कोई भी मूल्यवान् उपयोग करना नहीं जानते हैं। हमारा यह कर्तव्य होगा कि हम प्रत्येक किसान के लिए कुछ-न-कुछ गौण गृहउद्योगों की व्यवस्था करें। महात्मा गाँधी ने चर्खे को अनिवार्य बनाने का जो आन्दोलन किया, उसका यह भी मुख्य लक्ष्य था कि इन किसानों को एक गौण तथा जीवनोपयोगी उद्योग मिल जाय। प्रत्येक किसान अपनी बेकारी को हालत में रस्सी बुनना, टोकरी बुनना, कपड़े बुनना, काठ और लोहे के काम करना, छोटे पैमाने पर ईंट और खपड़े 'पाथना'—आदि-आदि अनेक ऐसे व्यवसाय हैं जिनमें प्रवृत्त हो सकता है। दिहातों में तो कम, किन्तु शहरों में रहनेवाले तथाकथित मध्यवर्ग में अथवा सम्पन्न परिवारों में प्रायः, एक ऐसी विकृत भावना चल पड़ी है कि स्त्रियाँ केवल भोगविलास और प्रसाधन की सामग्री मान ली जाती हैं और उन्हें वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर पर्दे में बन्द करके रख छोड़ा जाता है। इस प्रकार की असूर्यम्पश्या स्त्रियाँ राष्ट्र के लिए दो प्रकार से भारस्वरूप हैं;—एक तो वे अकर्मण्यता के कारण देश के आर्थिक उत्पादन में सहायक नहीं होतीं; दूसरे, वे आभूषणों के रूप में राष्ट्रिय सम्पत्ति की बहुत बड़ी राशि को अवरुद्ध कर देती हैं,—वह राशि जो सामान्य व्यापार-विनिमय अथवा विकास की योजनाओं में उपयुक्त नहीं हो पाती।

बेकारी के सिलसिले में हम इस प्रकार के लाखोंलाख भिखमंगों को भी नहीं भूल सकते जिनमें से बहुत से व्यक्ति सशक्त होते हुए भी भिख मांगकर निर्वाह करते हैं, और जिन्होंने भिक्षा-वृत्ति भिखमंगों की को मानों एक व्यवसाय-सा समझ लिया है। इस प्रकार व्यवस्था के भिखमंगे देश के लिए भार तो हैं ही, दूसरों को भी मानों आलस्यमय जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करते हैं। समाजसेवी का यह कर्तव्य है कि इस प्रकार की अनुचित भिक्षा-

वृत्ति के विरुद्ध जनमत उत्पन्न करे, और जो वस्तुतः रुग्ण तथा असहाय हैं उनकी शरण और शुश्रूषा की व्यवस्था करे ।

हमारे देश में कई लाख की संख्या में ऐसे तथाकथित साधु और फकीर भी हैं जो वस्तुतः संन्यासमय जीवन के उपयुक्त नहीं हैं और जो केवल देश के उत्पादन का ह्रासमात्र करते हैं और उसके विकास में कोई भी योग नहीं देते । समाजसेवी के सामने इस प्रकार के बेकार साधु-फकीरों की समस्या साधु-फकीर भी एक समस्या है । अतः या तो इस प्रकार की बेकारी को हमें रोकना होगा या अपनी समाजसेवा की व्यापक योजना में इन साधु-फकीरों को अन्तर्विष्ट करके उनका सदुपयोग करना होगा ।

(६) संस्कृति तथा मनोरंजन :—उपनिषदों में ब्रह्म को सच्चिदानन्द कहा है । अनेक स्थलों पर उपनिषदों ने “आनन्दम् ब्रह्मेति व्यजानात्” आदि मिथ्यात-वाक्यों का निर्देश किया है, जिनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ब्रह्म का आनन्दमय रूप बहुत महत्त्व रखता है । प्रत्येक जीवात्मा ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है, अतः आनन्द की अनन्त निधि का कुछ अंश प्रत्येक व्यक्ति में भी निहित है । संगीत, नृत्य, नाट्य और सांस्कृतिक आयोजनों तथा मनोरजनात्मक प्रदर्शनों द्वारा मानव मानों ब्रह्म के उसी आनन्दमय अंश को विकसित करने की चेष्टा करता है । संस्कृति तथा मनोरंजन का व्यावहारिक उपयोग यह भी है कि इनके द्वारा हम अपने जीवन के दैनन्दिन दुर्वह भार को थोड़ी देर के लिए भूल जा सकते हैं और उस विस्मृति की अवस्था में इतनी अन्तःशक्ति अर्जित कर सकते हैं जिसके बल पर दूसरे दिन का दुर्वह भार अपने कंधों पर ढो सके ।

समाजसेवी कार्यकर्ता का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह ग्रामीण जनता के स्वस्थ मनोरंजन के लिए उचित साधनों की व्यवस्था करे, स्वयं ग्रामीणों में जो भी कलाकार हों उनकी कला के विकास के लिए अवसर प्रदान करे । ग्राम-ग्राम में भजनमंडली, कीर्तन-स्वस्थ रूप दल, नाटक-मंडली आदि का निर्माण हो, तो अच्छा हो ।

किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मनोरंजन के साधनों द्वारा विकृत मनोवृत्ति को प्रथम न मिले, बल्कि मनोवृत्ति को स्वस्थतर बनने में सहायता मिले । संस्कृति या मनोरंजन आदि का संगठन किस प्रकार होना चाहिए इस संबंध की चर्चा हम एक स्वतंत्र प्रकरण^१ में करेंगे ।

१. देखिए ‘मनोरंजन तथा लोकरंगमंच’ शीर्षक परिच्छेद ।

भारतेन्दु द्वारा प्रस्तुत यह दूरदर्शितापूर्ण चित्र आज नग्न ताण्डव कर रहा है। किन्तु यहाँ हम इन पड़े-लिखे बेकारों की चर्चा करना नहीं चाहते। हम तो उन किसानों की स्थिति की ओर समाजसेवी का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जो सालभर में कुछ महीनों और कुछ दिनों, वृष्टि-अनावृष्टि की दैवी योजना पर आश्रित रहकर, बड़ी मिहनत से कुदाल चलाते हैं, हल जोतते हैं और फसल में पानी पटाते हैं, फिर महीनों हाथ पर हाथ धरे भगवान का नाम लेते पड़े रहते हैं, और इस बीच अपने अमूल्य समय का कोई भी मूल्यवान् उपयोग करना नहीं जानते हैं। हमारा यह कर्तव्य होगा कि हम प्रत्येक किसान के लिए कुछ-न-कुछ गौण गृहउद्योगों की व्यवस्था करें। महात्मा गाँधी ने चर्खे को अनिवार्य बनाने का जो आन्दोलन किया, उसका यह भी मुख्य लक्ष्य था कि इन किसानों को एक गौण तथा जीवनोपयोगी उद्योग मिल जाय। प्रत्येक किसान अपनी बेकारी की हालत में रस्सी बुनना, टोकरी बुनना, कपड़े बुनना, काठ और लोहे के काम करना, छोटे पैमाने पर ईंट और खपड़े 'पाथना'—आदि-आदि अनेक ऐसे व्यवसाय हैं जिनमें प्रवृत्त हो सकता है। दिहातों में तो कम, किन्तु शहरों में रहनेवाले तथाकथित मध्यवर्ग में अथवा सम्पन्न परिवारों में प्रायः, एक ऐसी विकृत भावना चल पड़ी है कि स्त्रियाँ केवल भोगविलास और प्रसाधन की सामग्री मान ली जाती हैं और उन्हें वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर पर्दों में बन्द करके रख छोड़ा जाता है। इस प्रकार की असूर्यम्पश्या स्त्रियाँ राष्ट्र के लिए दो प्रकार से भारस्वरूप हैं;—एक तो वे अकर्मण्यता के कारण देश के आर्थिक उत्पादन में सहायक नहीं होतीं; दूसरे, वे आभूषणों के रूप में राष्ट्रिय सम्पत्ति की बहुत बड़ी राशि को अवरुद्ध कर देती हैं,—वह राशि जो सामान्य व्यापार-विनिमय अथवा विकास की योजनाओं में उपयुक्त नहीं हो पाती।

बेकारी के सिलसिले में हम इस प्रकार के लाखोंलाख भिखमंगों को भी नहीं मूल सकते जिनमें से बहुत से व्यक्ति सशक्त होते हुए भी भीख मांगकर निर्वाह करते हैं, और जिन्होंने भिक्षा-वृत्ति भिखमंगों की को मानों एक व्यवसाय-सा समझ लिया है। इस प्रकार व्यवस्था के भिखमंगे देश के लिए भार तो हैं ही, दूसरों को भी मानों आलस्यमय जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करते हैं। समाजसेवी का यह कर्तव्य है कि इस प्रकार की अनुचित भिक्षा-

वृत्ति के विरुद्ध जनमत उत्पन्न करे, और जो वस्तुतः रुग्ण तथा असहाय हैं उनकी शरण और शुश्रूषा की व्यवस्था करे ।

हमारे देश में कई लाख की संख्या में ऐसे तथाकथित साधु और फकीर भी हैं जो वस्तुतः संन्यासमय जीवन के उपयुक्त नहीं हैं और जो केवल देश के उत्पादन का ह्रासमात्र करते हैं और उसके विकास में कोई भी साधु-फकीरों योग नहीं देते । समाजसेवी के सामने इस प्रकार के बेकार की समस्या साधु-फकीर भी एक समस्या है । अतः या तो इस प्रकार की बेकारी को हमें रोकना होगा या अपनी समाजसेवा की व्यापक योजना में इन साधु-फकीरों को अन्तर्विष्ट करके उनका सदुपयोग करना होगा ।

(६) संस्कृति तथा मनोरंजन :—उपनिषदों में ब्रह्म को सच्चिदानन्द कहा है । अनेक स्थलों पर उपनिषदों ने “आनन्दम् ब्रह्मेति व्यजानात्” आदि गिद्वात-वाक्यों का निर्देश किया है, जिनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ब्रह्म का आनन्दमय रूप बहुत महत्त्व रखता है । प्रत्येक जीवात्मा ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है, अतः आनन्द की अनन्त निधि का कुछ अंश प्रत्येक व्यक्ति में भी निहित है । संगीत, नृत्य, नाट्य और सांस्कृतिक आयोजनों तथा मनोरजनात्मक प्रदर्शनों द्वारा मानव मानों ब्रह्म के उसी आनन्दमय अंश को विकसित करने की चेष्टा करता है । संस्कृति तथा मनोरंजन का व्यावहारिक उपयोग यह भी है कि इनके द्वारा हम अपने जीवन के दैनन्दिन दुर्वह भार को थोड़ी देर के लिए भूल जा सकते हैं और उस विस्मृति की अवस्था में इतनी अन्तःशक्ति अर्जित कर सकते हैं जिसके बल पर दूसरे दिन का दुर्वह भार अपने कंधों पर ढो सकें ।

समाजसेवी कार्यकर्ता का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह ग्रामीण जनता के स्वस्थ मनोरंजन के लिए उचित साधनों की व्यवस्था करे, स्वयं ग्रामीणों में जो भी कलाकार हों उनकी कला के विकास के मनोरंजन का लिए अवसर प्रदान करे । ग्राम-ग्राम में भजनमंडली, कीर्तन-स्वस्थ रूप दल, नाटक-मंडली आदि का निर्माण हो, तो अच्छा हो ।

किन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मनोरंजन के माधनों द्वारा विकृत मनोवृत्ति को प्रथम न मिले, बल्कि मनोवृत्ति को स्वस्थतर बनने में सहायता मिले । संस्कृति या मनोरंजन आदि का संगठन किस प्रकार होना चाहिए इस संबंध की चर्चा हम एक स्वतंत्र प्रकरण^१ में करेंगे ।

१. देखिए ‘मनोरंजन तथा लोकरंगमंच’ शीर्षक परिच्छेद ।

(७) प्रकाशन तथा प्रचार:—प्रत्येक कार्यकर्त्ता को नियमित रूप से ऐसे प्रकाशनों की व्यवस्था करनी चाहिए जिनसे जनता को स्थानीय समस्याओं और उनके समाधान पर प्रकाश तथा निर्देश मिल सके। सम्भव है कि इस प्रकार की व्यवस्था विस्तृत पैमाने पर नहीं करनी पड़े, क्योंकि सरकार के प्रायः सभी विभाग कुछ-न-कुछ साहित्य प्रकाशित करते हैं और वे साहित्य प्रायः पर्याप्त होंगे यदि उनका उचित रूप से प्रचार हो सके। फिर भी हमारा अनुमान है कि प्रत्येक क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता को उस क्षेत्र की विशेष परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए एक साप्ताहिक अथवा मासिक पत्रिका (Bulletin) अवश्य प्रकाशित करनी चाहिए। प्रचार के लिए सरकार का प्रचार अथवा जन-सम्पर्क-विभाग तो रहता ही है, किन्तु अपने सघन क्षेत्र में प्रचार के लिए कार्यकर्त्ता को विशेष व्यवस्था करनी अनिवार्य होगी। प्रचार के लिए रेडियो, मैजिक लैण्डर्न, पोस्टर, पुस्तिका आदि अनेक साधनों का अवलम्बन करना होगा।

प्रचार की व्यापकता की दृष्टि से समाजसेवी को त्यौहारों, पर्वों, मेलों आदि विशेष अवसरों का उपयोग अवश्य करना चाहिए। अनुभव से यह सिद्ध है कि इस प्रकार के अवसरों पर 'साक्षरता-आन्दोलन' या 'हस्ताक्षर-आन्दोलन' (जिनमें निरे अपढ़ व्यक्ति को भी तीन घंटे में सामान्य अक्षरज्ञान कराके अपना हस्ताक्षर करना सिखला दिया जाता है) बहुत सफल हुए हैं और कुछ प्रतिशत लोगों पर इनका स्थायी प्रभाव हुआ है।



परिच्छेद आठ

वयस्क-मनोविज्ञान

हम यह जानते हैं कि समाज-शिक्षा के व्यापक कार्यक्रम में वयस्कों की शिक्षा प्रथम स्थान रखती है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रत्येक कार्यकर्ता वयस्कों की मनोवृत्ति, वयस्क मनोविज्ञान तथा वयस्क की मुख्य सामान्य मनोविज्ञान से परिचित हो। उसे मानव, विशेषतः मनोवृत्तियाँ प्रौढ मानव, की प्रमुख प्रवृत्तियों या मानसिक वृत्तियों की पूरी जानकारी होनी चाहिए। इस प्रकार की मुख्य वृत्तियाँ निम्नलिखित हैं^१—

- (क) खाद्य, शरण तथा वस्त्र की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा जीवन की सुरक्षा;
- (ख) प्रजननात्मक प्रवृत्ति;
- (ग) कुतूहल अथवा खेल की प्रवृत्ति;
- (घ) सगठन और मंत्री की प्रवृत्ति;
- (ङ) आत्मप्रबलता की प्रवृत्ति (Assertion);

१. देखिए : डा० संयदेन—Teachers' Handbook of Social Education, पृ० २६।

(च) इसी से मिलती-जुलती आत्मनिवेदन की प्रवृत्ति (Submission);

(छ) सुख तथा मनोरंजन की आकांक्षा ;

(ज) अध्यात्म-जीवन और शान्ति की कामना ।

ऊपर जिन प्रवृत्तियों अथवा मानस-वृत्तियों का निर्देश किया गया है, वे सामान्यतः सभी व्यक्तियों में विद्यमान हैं। हमारा यहाँ यह लक्ष्य नहीं कि हम मनोविज्ञान-शास्त्र के सिद्धान्त का विवेचन करें अथवा उसके आधार पर मानसिक वृत्तियों का विश्लेषण करें। ये प्रवृत्तियाँ दैनन्दिन जीवन और उसकी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए गिनाई गई हैं। प्रत्येक चतुर कार्यकर्त्ता को यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसके कार्यक्रम में इन प्रवृत्तियों को मनुष्य करने की क्षमता हो। उसे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं-कहीं कुछ प्रवृत्तियाँ निर्बल होंगी, कुछ सबल; क्योंकि प्रवृत्तियों की प्रबलता और निर्बलता कई अन्य कारणों पर अवलम्बित है। उदाहरणतः, यदि किसी स्थान में रहने के लिए घरों की व्यवस्था अच्छी, किन्तु कपड़े का अपेक्षाकृत अभाव हो, अथवा बाजार आदि दूर हो, तो वहाँ वस्त्र द्वारा सुरक्षा की प्रवृत्ति प्रबल होगी। यदि किसी स्थान के जन-साधारण की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है तो वहाँ पर खेतीबारी अथवा उद्योग के लिए लोग अधिक लालायित होंगे। ऐसा देखा गया है कि जहाँ लोग खुशहाल हैं वहाँ सामूहिक जीवन का जैसा विकास होता है वैसा उस स्थान में नहीं हो पाता, जहाँ लोगों को पेट के लाले पड़े हैं और खेतों की सिचाई आदि का समुचित प्रबन्ध नहीं है। वयस्कों की मनोवृत्ति पर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। आजकल यूरोपीय तथा एशियाई देशों में जो परस्पर संघर्ष चल रहा है, अथवा यूरोप और एशिया के भिन्न भागों में जो अन्तर्विप्लव जारी है, उसकी आधारभूत मनोवृत्ति का मुख्य कारण राजनीतिक है। भारतवर्ष और पाकिस्तान में भी सम्पर्क का जो अभाव दीख पड़ता है उसके मूल में राजनीतिक परिस्थिति है। बात यह है कि देश की व्यापक राजनीति जन-जन के जीवन में प्रविष्ट हो जाती है और उसकी मनोवृत्ति को प्रभावित कर देती है। राजनीति के अतिरिक्त धर्म (Religion) भी एक ऐसा तत्त्व है जो जनता की मनोवृत्ति पर अपना व्यापक प्रभाव डालता है। प्रत्येक धर्म के साथ कुछ आचार-व्यवहार परम्परा से लग गये हैं और उन आचार-व्यवहारों के साथ हमारा अनुचित मोह हो गया है। फलतः

समान आचार-व्यवहारवालों के साथ तो हमारा प्रेमभाव रहता है; किन्तु विपरीत आचार-व्यवहारवालों के साथ हम संघर्ष में आ जाते हैं। यहीं, भारतवर्ष में, धर्ममूलक राजनीति के आधार पर हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का सगड़ा खड़ा कर कितनी शत-सहस्र निरीह मानवता के खून से होली खेली गई, यह किसको नहीं विदित है। विश्व का इतिहास बतलाता है कि धर्म के आवेश में कभी-कभी मानव दानव बन जाता है और वह लोमहर्षण बर्बर नृशंसताएँ बरतने में भी नहीं हिचकता। धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अतिरिक्त सामाजिक परिस्थितियाँ भी मानव-मनोवृत्ति को बहुत अधिक प्रभावित करती हैं। आजकल जात-पाँत और सामाजिक बन्धनों के नाम पर लोग किस प्रकार अपने आचार-व्यवहार को विशेष ढाँचे में ढालते हैं, इसका पर्याप्त परिचय हमें भारतीय हिन्दू-समाज में मिलता है। व्यक्तिगत परिस्थितियाँ भी इस सब में कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उदाहरणतः एक विवाहित और एक अविवाहित वयस्क के सोचने-विचारने, रहने-सहने में बहुत अन्तर होगा।

कार्यकर्ता को यह ध्यान में रखना चाहिए कि यद्यपि बालक और वयस्क में प्रायः सभी मनोवृत्तियाँ समान रूप से विद्यमान रहती हैं, तथापि, प्रौढ़ होने के कारण, वयस्क की समझ बालक की अपेक्षा परिपक्व और व्यावहारिक रहती है। वयस्क की इसके अतिरिक्त जहाँ बालक पर प्यार-पुत्रकार का मनोवृत्ति में अन्तर असर पड़ता है, वहाँ साथ-ही-साथ डाँट-फटकार से भी काम लेने में हम नहीं हिचकते। किन्तु वयस्कों के लिए डाँट-फटकार का प्रयोग घातक सिद्ध होगा। अतः हमारा यह लक्ष्य होना चाहिए कि हम उन्हें समझाएँ-बुझाएँ और प्रेम के बन्धन में बाँधकर उनसे काम ले। कार्यकर्ता को इस बात का भी विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि वयस्क की दिलचस्पी प्रमुखतः किन दिशाओं में है। सम्भव है, कोई चित्रकारी से प्रेम करता हो, कोई संगीत से, तो कोई लकड़ी के काम से, और कोई पशुपालन में विशेष दिलचस्पी रखता हो। हमें समाजशिक्षा-केन्द्रों में ऐसे कार्यक्रमों का समावेश करना चाहिए जिनसे वहाँ के वयस्कों की इन विशेष प्रवृत्तियों का विशेष संबंध हो, वरना सफलता कम, अथवा देर से, मिलेगी।

जब हम वयस्कों के साथ मिल-जुलकर काम करें तो हमको यह चेष्टा करनी चाहिए कि उनके आत्माभिमान तथा भावुकता को ठेस न लगे ।

प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व तथा जीवन-शैली से प्रेम कार्यकर्त्ता का रखता है । ऐसा न हो कि हमारे व्यवहारों से वह अपने कर्त्तव्य को अपमानित अथवा अवमानित समझने लगे । यदि ऐसा हुआ तो हम उससे सहयोग की आशा नहीं कर सकते ।

साक्षरता के कार्यक्रम में हम प्रायः इस कठिनाई का अनुभव होता है कि साक्षरता-वर्गों में वयस्क बहुत कम आते हैं । कार्यकर्त्ता को इससे निरुत्साह नहीं होना चाहिए । उसे यह चेष्टा करनी चाहिए कि

साक्षरता-वर्ग साक्षरता के साथ वयस्कों के जीवन की ठोस तथा तत्कालीन को रुचिकर आर्थिक समस्याओं को सम्बद्ध करे, जिसमें उन्हें यह विश्वास बनाना आवश्यक हो जाय कि पढ़ने-लिखने से उन्हें दो पैसे अधिक मिलेंगे अथवा उन्हें कुछ वास्तविक लाभ होगा । ऐसा संबंध स्थापित

करने के लिए मनोरंजक नाटकों का अभिनय भी सहायक सिद्ध होगा । उदाहरणतः एक ऐसा नाटक, जिसमें पति का कोई गुप्त पत्र पत्नी के पास, अथवा पत्नी का कोई गुप्त पत्र पति के पास आया हो, और वह स्वयं न पढ़ सकने के कारण दूसरों से पढ़वाने के लिए बाध्य हुआ हो—इस प्रकार की स्थिति का रोचक ढंग से अभिनय जनता पर प्रभावोत्पादक हो सकेगा । उसी प्रकार, दो दुल्हिनें एक ही ट्रेन से और लगभग एक ही प्रकार का वस्त्राभूषण पहनी, परदे के भयानक आवरण में जकड़ी, एक ही डब्बे में जा रही हो, और एक ही स्टेशन पर उतर कर दोनों भूल से ऐसे पतियों के घर पहुँचा दी जाती हो जो उनके अपने पति न हों,—तो ऐसे दृश्य पर आश्रित नाटक अच्छा प्रभाव डाल सकता है ।

वयस्कों में यह भी देखा जाता है कि वे परम्परा से आलस्यपरायण हो जाते हैं और शाम को घर जाने के बाद सिवा बैठे-बैठे गप करने, 'घूर तापने'

अथवा 'खेती' खाने के कुछ नई सक्रिय योजना में आलस्य और हाथ बटाना नहीं चाहते । कार्यकर्त्ता को इस परम्परा-कुटेब का गत आलस्य-परायणता को दूर करने की चेष्टा करनी निवारण होगी । यह भी देखा गया है कि जब शाम को

छुट्टी मिलती है तो वे तुरत ताड़ी, शराब अथवा जुए आदि में पैसे का दुरुपयोग करना शुरू कर देते हैं । वे सक्रिय तो

हैं, किन्तु विकृतरूप से सक्रिय हैं। हमारा यह कर्तव्य होगा कि हम उनकी सक्रियता को सही दिशाओं में प्रेरित करें। प्रत्येक मानव, चाहे वह कितनी भी साधारण परिस्थिति में क्यों न हो, सौन्दर्य तथा संगीत का प्रेमी है; अतः कार्यकर्त्ता को यह चाहिए कि जहाँ वह अपने केन्द्रों का संगठन करता हो, अथवा जहाँ पर वयस्कों के लिए मिलने-जुलने का अवसर प्रदान करता हो, वह स्थान साफ-सुथरा तथा सजा हुआ हो। सफाई और सजावट स्वयं आकर्षण के साधन हैं, इसे हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।

अन्त में हम इतना कहकर इस प्रसंग की समाप्ति करेंगे कि समाजसेवी कार्यकर्त्ता को वयस्कों के साथ मिलने-जुलने तथा उनके बीच कार्य करने में कभी भी अपने में बड़प्पन (Superiority) बड़प्पन का की भावना नहीं लानी चाहिए। उन्हें यह न मालूम पारहार हो कि यह “उपदेश” देने आया है; बल्कि यह अनुभव करे कि यह उनके साथ मिलजुल कर, उनके सुखों में हँस-खेलकर, और उनकी मुसीबतों में रो-गाकर, उनके साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर उनकी तथा अपनी उन्नति की चेष्टा करने आया है। कार्यकर्त्ता के वचन और कर्म में पूरा सामंजस्य होना चाहिए। जैसा कहे वैसा करे, अन्यथा वह जनता का विश्वासपात्र नहीं बन सकता।

मनस्येकं वचम्येकं कर्मण्येकम् महात्मनाम् ।^२

२. इस परिच्छेद के लिखने में “Teachers’ Handbook of Social Education” के अध्याय ३ से पर्याप्त सामग्री ली गई है।



परिच्छेद नव

समाजशिक्षा में साक्षरता का स्थान

समाजशिक्षा का जो वर्तमान आन्दोलन चल रहा है उसके इतिहास का सिंहावलोकन करने पर पता चलता है कि अपने मूल रूप में समाज-शिक्षा साक्षरता तक ही सीमित थी। उदाहरणतः, बिहार राज्य समाजशिक्षा का में जब प्रथम-प्रथम १९३७ ई० में यह आन्दोलन खड़ा हुआ, प्रारंभिक रूप तो इसका लक्ष्य जनता में मात्र साक्षरता का प्रचार था; और कई वर्षों तक यही लक्ष्य व्यवस्थापकों और कार्य-कर्त्ताओं की दृष्टि में प्रमुख रहा। भारत में साक्षरता-आन्दोलन के पहले फिलीपाइन्स आदि कुछ अन्य देशों में भी साक्षरता-संबंधी प्रयोग सफलता के साथ किये गये थे, और इस क्षेत्र में किये हुए प्रयोगों के बल पर डॉ० लोबाख (Laubach) आदि कर्मठ समाजसेवियों की ख्याति विश्वव्यापिनी हो गई। फिलीपाइन्स में जो साक्षरता के प्रयोग हुए, उनकी प्रेरणा अमेरिका से प्राप्त हुई थी, और अमेरिका की दृष्टि में साक्षरता की ही समस्या फिलीपाइन्स के लिए मुख्य समस्या थी।

अमेरिका और इंग्लैंड आदि देश जब अन्य देशों के वयस्कों की शिक्षा के संबंध में विचार करने हैं तो उनका सर्वप्रथम ध्यान साक्षरों और

निरक्षरों के परस्पर अनुपात पर जाता है। इसका कारण यह है कि अमेरिका तथा इंग्लैंड में बहुत दिनों से अनिवार्य शिक्षा का विधान पारित देशों का लागू होने के कारण ऐसा जन-समाज बहुत अल्पसंख्यक रह दृष्टिकोण गया है जो निरक्षर हो। अतः जब इनके सामने कोई ऐसा देश आता है जिसमें निरक्षरों की संख्या ७०-८० प्रतिशत या इससे भी अधिक है, जैसा कि भारत, तब इन्हें ऐसा लगता है मानों ऐसे राष्ट्र की भी मूल समस्या निरक्षरता है। उनका ऐसा सोचना ठीक भी है, क्योंकि आज के वैज्ञानिक युग में जब मुद्रित समाचार-पत्रों के द्वारा हम विश्व की दिन-प्रति-दिन की खबरें एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचा सकते हैं, और उनसे एक समुन्नत राष्ट्र लाभ उठा सकता है, तो, वैसी स्थिति में, सचमुच वह राष्ट्र अत्यन्त भाग्यहीन है जिसका ७५ या ८० प्रतिशत जनसमुदाय शिक्षित तो दूर रहा, साक्षर भी नहीं है। उन्नत राष्ट्रों के विचार में यदि कोई मानव साक्षर नहीं है, तो वस्तुतः वह मानव की कोटि में आता ही नहीं है; —वह तो एक प्रकार से पशुत्व के स्तर पर अवस्थित है।

किन्तु, जब एशियाई राष्ट्र अपने यहाँ की निरक्षरता की समस्या पर स्वयं विचार करते हैं, तो उनके सामने अनेकानेक अड़चने आ खड़ी होती हैं। सबसे पहली अड़चन तो आर्थिक अड़चन है। जहाँ उन्हें एशियाई देशों की विशिष्ट समस्या अपने राष्ट्र के बालक-बालिकाओं की शिक्षा की व्यवस्था करने में ही जान के लाले पड़े हैं, वहाँ वयस्क नर-नारियों की इतनी बड़ी जनसंख्या की साक्षरता की व्यवस्था करना कैसे संभव है। दूसरी बात जिसका अनुभव वहाँ के नेता करते हैं, वह यह है कि निरी साक्षरता प्रदान करने से किसी वयस्क में नागरिकता की भावना आ जाय,—ऐसी आशा दुराशामात्र है। जब इन्हीं वयस्कों को मत देना है और उन्हीं मतों के आधार पर विधान-सभाओं में प्रतिनिधियों को भेजना है, तो पहली आवश्यकता हमारी यह है कि ये साक्षर हों या न हों, ये लिखित साहित्य का दर्शन करें या न करें, मौखिक प्रचार तथा जन-आन्दोलन के द्वारा इन्हें अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों का सामान्य ज्ञान दिलाया जाय।

निरक्षरता के कार्यक्रम को क्रियात्मक रूप देनेवालों को यह भी अनुभव हुआ है कि वयस्कों, विशेषतः अधिक उम्र वाले वयस्कों, के हृदय

में बच्चों के-से निरे अक्षर-ज्ञान के लिए उत्सुकता पैदा करना कठिन है ।

जब तक साक्षरता के कार्यक्रम का उनके जीवन की नग्न वयस्कों में समस्याओं के ठोस समाधान के साथ ग्रथिबंधन न किया स्वतः प्रवृत्ति जाय, तबतक वे साक्षरताप्रदान के लिए संगठित केन्द्रों आवश्यक अथवा वर्गों में सम्मिलित नहीं होते; और यदि प्यार-पुचकार अथवा आग्रह के बल पर सम्मिलित होते भी हैं तो नियमित रूप से नहीं । यदि आप उनके सामने साक्षरता का गुणगान कीजिए, तो प्रायः वे यह कह उठते हैं कि “बूढ़ा सुग्गा कहीं ‘पोस’ मानेगा; अरे, हमलोगों के जो ये बालबच्चे हैं इन्हीं को ले जाइए, पढाइए-लिखाइए !” वयस्कों के इस कथन और इसकी आधारभूत मनोवृत्ति का विश्लेषण करने से यह पता चलता है कि उनके पीछे एक मूल्यवान् सिद्धान्त निहित है । वह यह है कि साक्षरता, अथवा अपने व्यापक रूप में शिक्षा, की योजना तभी सार्थक हो सकती है जब वह राष्ट्र के भावी वयस्कों, अर्थात् शिशुओं, की शिक्षा की व्यवस्था पर पूर्ण ध्यान दे और कम-से-कम प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दे । यदि किसी राष्ट्र का प्रत्येक बालक और बालिका अनिवार्य रूप से प्राथमिक शिक्षा ग्रहण कर ले, तो यह आशा की जाती है कि वह आजन्म साक्षर रह सकेगा या रह सकेगी । कम-से-कम इतना तो निश्चय है कि साक्षरता के कार्यक्रम के प्रति उसकी पूरी दिलचस्पी होगी ।

ऊपर जिन विचार-विन्दुओं को प्रस्तुत किया गया है, उनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि साक्षरता प्रत्येक मानव के लिए आवश्यक एवं उपादेय है, तथापि साक्षरता के कार्यक्रम के प्रति भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं ।

साक्षरता मित्र परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं ।

समाज-शिक्षा का जहाँ बच्चों की अनिवार्य शिक्षा व्यापक रूप से कार्यान्वित

अनिवार्य अंग; है और फलतः जन-साधारण की सामान्य नागरिक

किन्तु एक मात्र भावना उन्नत है, वहाँ वयस्क, किन्तु निरक्षर, जन-समाज

अंग नहीं के लिए प्रमुख समस्या निरक्षरता की समस्या होगी । जहाँ,

और जिस देश में, बचपन की अनिवार्य शिक्षा का विधान नहीं है और लाखों-करोड़ों की संख्या में बालक-बालिकाएँ निरक्षर हैं और ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों निरक्षर वयस्कों की संख्या को द्रौपदी के दुकूल की तरह बढ़ते जाते हैं, वहाँ, और उस देश में, प्रमुख समस्या होगी सामान्य

सामाजिकता अथवा नागरिकता की भावना का संचार । किन्तु वैसी स्थिति में भी, सामाजिकता अथवा नागरिकता की भावना के संचार के लिए जो संस्थाएँ अथवा केन्द्र खोले जायेंगे, उनमें साक्षरता का कार्यक्रम अनिवार्य रहेगा । यदि साक्षरता न होगी तो सामाजिकता की भावना कुण्ठित हो जायगी और यथेष्ट रूप में विकसित न हो सकेगी ।

तात्पर्य यह कि कोई भी राष्ट्र हो और उस राष्ट्र की कैसी भी परिस्थिति हो, यदि वहाँ निरक्षरों की संख्या अधिक है, तो समाज-शिक्षा के कार्यक्रम में साक्षरता का स्थान महत्वपूर्ण रहेगा ।



परिच्छेद दस

वयस्कसाक्षरता-वर्ग और उसकी सामग्री

डा० सैयदेन ने, वयस्कों की शिक्षा के लिए जिन सामग्रियों की आवश्यकता होती है, उन्हें मुख्यतः सात कोटियों में विभक्त किया है^१ :—

१. शिक्षक, कार्यकर्त्ता अथवा अन्य व्यक्ति द्वारा सामग्रियाँ उच्चरित शब्द ।

२. रेडियो अथवा ग्रामोफोन आदि द्वारा पुनरुच्चरित शब्द ।

३. लिखित शब्द ।

४. चित्र, नक्शे, चार्ट इत्यादि ।

५. प्रस्तुत अथवा पुनः प्रस्तुत पदार्थ । यथा—‘मूर्तियाँ’, ‘मॉडल’ (Model), नाटकीय दृश्य, स्वांग, प्रदर्शन आदि ।

६. प्रतिप्रस्तुत अथवा प्रतिकलित पदार्थ । यथा—फिल्म, फिल्म-ट्रिप, लैन्टर्न स्लाइड आदि तथा अन्य अनेक प्रकार के चित्र ।

७. तथ्यगत पदार्थ, अर्थात् वे पदार्थ जिन्हें हम प्राकृतिक जगत् में उनके असली रूप में देखते हैं अथवा ‘म्यूजियम’, ‘प्रदर्शनी’ आदि में किसी विशेष ढंग से सजाये हुए देखते हैं ।

१. डा० सैयदेन—‘टीचर्स हैण्डबुक आफ सोशल एडुकेशन’, अध्याय ४ ।

उच्चरित या लिखित शब्दों के माध्यम से शिक्षक जो ज्ञान देता है, उस ज्ञान को परिपुष्ट करने के लिए, अथवा स्वतंत्र रूप से ज्ञानप्रदान करने के लिए, जिन सामग्रियों की आवश्यकता होती है उनको निम्नलिखित मुख्यतः दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है:—(अ) पाठ्य सामग्री और (ख) श्रव्यदृश्य (audio-visual) सामग्री ।

(अ) पाठ्य-सामग्री—पठन अथवा अध्ययन हमारे आज के जीवन में अनिवार्य रूप से ओतप्रोत है । हम यहाँ तक कह सकते हैं कि जो अपढ़ है वह एक दृष्टि से असम्भ्य है । कभी ऐसा पाठ्य सामग्री जमाना रहा होगा कि लोगों से सुनकर, विद्वानों और संतों के सत्संग में रहकर, हम आवश्यक ज्ञान की प्राप्ति कर लेते होंगे; किन्तु आज यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार ज्ञान-प्राप्ति का दम भरते तो वह बावला कहा जायगा । आज विज्ञान ने हमारे बीच ऐसे अनेकानेक आविष्कारों को प्रस्तुत कर दिया है जिनके द्वारा हम स्थान और समय के व्यवधान को प्रायः नाश चुके हैं, और रेल, मोटरगाड़ी, तार, हवाई जहाज, रेडियो, टेलीविजन आदि से संचालित यह विश्व ऐसा मालूम होता है मानों वह प्रत्येक क्षण भयानकरूपा से परिवर्तित होता जाता है । इस परिवर्तन के साथ हमारे जीवन का सामाजिक तभी निबह सकता है जब हम समाचार-पत्रों, पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों द्वारा जानकारी प्राप्त करते रहें और क्षणभर के लिए भी अपने को पिछड़ने न दें । आज जब हम जनतंत्र के सिद्धांतों में विश्वास रखते हैं और उसका असली रूप जनता के सामने रखना चाहते हैं, तो हमारे लिए यह भी आवश्यक है कि हम विश्व की सतह पर राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में प्रवाहित होनेवाली भिन्न-भिन्न विचारधाराओं में जनता को अवगत करावें और उसमें ऐसी समझदारी भरें कि वह इन का विश्लेषण करके अपने लिए किसी निश्चित विचारधारा को आना सके । जनता में यह क्षमता तभी आ सकती है जब वह पढ़ने-लिखने में समर्थ होगी ।

कुशल कार्यकर्ता अथवा शिक्षक वयस्कों के समान इन बातों को अपने ढंग से रखने की चेष्टा करेगा और पढ़ने-लिखने का प्रवृत्ति जगायेगा ।

आजकल जिन पाठ्य-सामग्रियों का हम साक्षरता-मुख्य पाठ्य वर्ग अथवा सामाजिक केन्द्र में प्रयोग करते हैं वे सामग्रियाँ निम्नलिखित हैं:—

१. पुस्तकें, पुस्तिकाएँ (pamphlets) और मोड़-पत्रियाँ तथा वार्तालाप-बिन्दु (folders and talking points) ।
२. दैनिक-पत्र ।
३. पत्रिकाएँ (bulletins, magazines and periodicals)
—साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, आदि ।
४. चार्ट, चित्र, नक्शे, ग्राफ आदि ।
५. ब्लैकबोर्ड, स्लेट, पेन्सिल, कागज आदि (माध्यम के रूप में) ।

बालकों के लिए भी इन सभी सामग्रियों की आवश्यकता होती है, किन्तु वयस्कों के लिए जो सामग्रियाँ तैयार की जायेंगी उनका आधार वयस्क-मनोविज्ञान होगा और उनके तैयार करने में अनुभव तथा कला दोनों की अनिवार्य आवश्यकता है । इतना तो कहना नहीं होगा कि पुस्तकें, चार्ट आदि सुन्दर ढंग से छपने चाहिए, उनकी छपाई में सफाई होनी चाहिए, उनमें चित्रों का यत्रतत्र समावेश होना चाहिए, उनमें ऐसे शब्द आने चाहिए जो सरल और जनता के दैनन्दिन जीवन से सीधा संबंध रखते हों, उनकी शैली सरल और मोहक होनी चाहिए, प्रतिपादित विषयों का चुनाव बहुत सावधानी से होना चाहिए, और उनके प्रणयन तथा प्रकाशन में पूरी सावधानी बरतनी चाहिए ।

(आ) **श्रव्यदृश्य सामग्री**—शिक्षक अथवा कार्यकर्ता अपने केन्द्र में लोगों को पढ़ाने-लिखाने अथवा समझाने-बुझाने के सिलसिले में उच्च-रित वाक्यों के अतिरिक्त जिन सभी साधनों का प्रयोग करता है—ब्लैकबोर्ड से लेकर फिल्म प्रोजेक्टर तक—वे **श्रव्यदृश्य सामग्रियाँ** श्रव्यदृश्य सामग्रियों के अन्दर आते हैं । वयस्कों की शिक्षा के लिए इनका प्रचुर मात्रा में उपयोग करना चाहिए । बालकों की शिक्षा में तो इनका अपेक्षाकृत कुछ कम उपयोग हो तो क्षति नहीं है, क्योंकि उनको समय पर्याप्त रहता है और उनकी पढ़ाई-लिखाई की कई-वर्षों की एक पूरी योजना बनी रहती है । किन्तु वयस्कों को पढ़ाते-लिखाते अथवा शिक्षित बनाते समय हमें मानो समय के साथ होड़ लेनी पड़ती है, और यह चेष्टा करनी पड़ती है कि कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक ज्ञान दे सकें । इन बातों को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि प्रत्येक समाजशिक्षा-केन्द्र में अथवा केन्द्रों के सघन क्षेत्र में ग्रामोफोन, रेडियो, मैजिक लैंटर्न और फिल्म तथा फिल्म-

स्ट्रिप प्रोजेक्टर होना आवश्यक है। साथ ही साथ रेकर्डों, स्लाइडों और फिल्मों का एक सुन्दर संग्रहालय (Library) भी होना चाहिए। श्रव्यदृश्य शिक्षा के यदि ये साधन केन्द्र में रहेंगे और कार्यकर्त्ता उत्साह तथा समग के साथ काम करेगा तो इसमें संदेह नहीं कि वह केन्द्र सफल तथा लोकप्रिय होगा। इनके अतिरिक्त सुन्दर-सुन्दर चित्रों, कला के नमूनों और स्थानीय उपयोगिता रखनेवाले पदार्थों का संग्रहालय अथवा प्रदर्शनी का होना भी आवश्यक है। नाटक आदि भी वस्तुतः श्रव्य-दृश्य साधनों के अन्तर्गत आते हैं किन्तु हम इसपर अन्यत्र, “मनोरंजन तथा लोकसंगमच” के प्रसंग में, विचार करेंगे।

आजकल प्रायः सभी सफल केन्द्रों में समाचार-सूचना-पट (News-board) का नियमित रूप से प्रयोग किया जाता है। प्रतिदिन सुन्दर अक्षरों में स्थानीय तथा देश-विदेश की आवश्यक सूचनाएँ समाचार-संगृहीत कर उन्हें ब्लैकबोर्ड पर लिखकर उसे किसी केन्द्रीय सूचना-पट स्थान में रख दिया जाता है, जिसमें लोग थोड़े में सभी आवश्यक सूचनाएँ जान लें। कार्यकर्त्ता आवश्यकतानुसार उन्हें पढ़कर सुना देता है, टीका-टिप्पणी भी करता है। कई गांवों में उत्साही कार्यकर्त्ताओं ने रामायण, महाभारत, हितोपदेश आदि से सुन्दर पद्य, उपदेश-वाक्य आदि चुनकर उन्हें सुन्दर रंगीन अक्षरों में घर-घर की दीवारों पर लिखवा दिया है, जिन्हें पढ़कर लोग लाभ उठाते हैं और अनायाम उनमें से कई पद्य अथवा वाक्य याद भी कर लेते हैं। इसी प्रकार केन्द्रीय स्थलों में गांव के आँकड़े, प्रगति के विवरण आदि भी सुन्दर और स्पष्ट अक्षरों में लिख दिये जाते हैं। इनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव बहुत अच्छा पड़ता है और आगन्तुकों को अपनी योजनाएँ समझाने में कार्यकर्त्ता को सुविधा होती है।

(इ) विविध—१९५३ में बिहार के विक्रम नामक स्थान में एक क्षेत्रीय सेमिनार (Regional Seminar) हुआ था जिसमें समाजशिक्षा संबंधी अनेकानेक समस्याओं पर विचार किया गया था।

विविध सेमिनार का जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसमें एक ऐसे समग्रियाँ शिक्षण-केन्द्र के लिए, जिसमें दो शिक्षक और ४० वयस्क हों, साक्षरता-प्रसार की दृष्टि से निम्नलिखित साधनों की आवश्यकता बताई गई है :—

श्यामपट (Black board)—१।

खल्ली—१ बक्स ।

लालटेन—८ (यदि पेट्रोलमैक्स न हो) ।

स्लेट—४० ।

पेन्सिल—४० ।

नक्शे—(क) गाँव, (ख) थाना, (ग) सबडिवीजन, (घ) जिला,
(च) डिवीजन, (छ) राज्य और प्रान्त, (ज) भारत, (झ),
एशिया (ट) एक संकेतदण्ड (Pointer) ।

वयस्कों के योग्य प्राइमर—भाग १—४० ।

भाग २—४० ।

भाग ३—४० ।

चटाई या आसन -- ४० ।

दैनिक हिन्दी पत्र—१ ।

साप्ताहिक—१ ।

‘गाँव की बात’ (Bulletin)—१ ।

समाजशिक्षा-विभाग की पत्रिका—१ ।

घड़ी-घट -- १ ।

बक्स (सापानों के रखने के लिए) ।

रजिस्टर—(क) उपस्थिति बही ।

(ख) प्रवेश बही ।

(ग) भंडार बही (Stock Register) ।

(घ) योजना और प्रगति बही ।

(च) निरीक्षण-बही ।

(छ) हिसाब-किताब-बही ।

रेडियो—१ ।

मैजिक लैन्टर्न (स्लाइडो सहित)—१ ।

उपयोगी पुस्तकों का सेट

(रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थ भी हों)—१ ।

उपयुक्त चार्ट और चित्र ।

पुरस्कार के लिए वयस्कोपयोगी चीजें ।

पुस्तकें, पेन्सिल, व्यवहार की अन्य सामग्रियाँ ।^२

२. द्वे० समाजशिक्षा अध्ययनमंडल, बिहार; प्रकाशक—वयस्क-शिक्षा-बोर्ड,
बिहार, १९५३—पृ० २०-२२ ।

साक्षरता-वर्ग के कार्यक्रम में निम्नलिखित कार्यों का समावेश किया जा सकता है। यह निर्देश उपलक्षणमात्र है। कार्यक्रम में यथावसर, यथास्थान, यथापरिस्थिति परिवर्तन किये जा सकते हैं। हाँ, इतना अवश्य ध्यान रहे कि कोई केन्द्र का कार्यक्रम निरे साक्षरता-वर्ग के रूप में सफल हो, ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

कार्यक्रम

नियमित सामूहिक प्रार्थना।

समाचार-सार-वाचन (देशविदेश की चुनी हुई खबरें)।

गाव की प्रमुख समस्याओं से शुरू कर अन्य समस्याओं पर चौपाल के ढंग की बातचीत।

वास्तविक साक्षरता-कार्य (रोचक ढंग से)।

नाम, गाँव, और पूरा पता लिखना।

पत्र लिखना।

कहानी लिखना।

सरल, उपयोगी हिमाव-किताब।

प्राइमर, पुस्तक आदि का पठन तथा स्वाध्याय।

रामायण अथवा इसी प्रकार की अन्य पुस्तकों का पठन-पाठन तथा सम्मिलित वाद्य-गान।

स्थानीय हस्तकला एवं उद्योग।

अन्तिम सम्मिलित गान।^३

-
३. ममाजशिक्षा अध्ययन मंडल, बिहार; प्रकाशक—वयस्क-शिक्षा-बोर्ड, बिहार, १९५३—पृ० २०-२२।



परिच्छेद ग्यारह

नव-साक्षरों का साहित्य

पिछले परिच्छेद में वयस्कोपयोगी पाठ्यसामग्री की चर्चा की गई है और इस संबंध में पुस्तक-पुस्तिकाओं का उल्लेख हुआ है। इन पुस्तक-पुस्तिकाओं, पत्र-पत्रिकाओं आदि में जो साहित्य नव-साक्षरों होगा उसकी विशेषताओं का ज्ञान होना संगठनकर्त्ता के अथवा कार्यकर्त्ता के लिए आवश्यक है। क्योंकि साहित्यनिर्माण के लिए अन्यथा, न तो वह स्वयं उपयुक्त साहित्य का निर्माण कर सकता है, न दूसरों द्वारा उसका निर्माण करा सकता है, और न निर्मित साहित्य का मूल्यांकन ही कर सकता है। वयस्को, मुख्यतः नवसाक्षर वयस्कों, के साहित्य के निर्माण के संबंध में विस्तृत विचार करने के लिए इंडियन एडल्ट एडुकेशन एसोसियेशन (Indian Adult Education Association) ने दिल्ली में एक सेमिनार का आयोजन किया था। उस सेमिनार में भिन्न-भिन्न प्रान्तों के विशेषज्ञ जिन निष्कर्षों पर पहुँचे उनका सारांश यहाँ दिया जा रहा है।^१

१. देखिए—Literature for Neo-literates

—प्रकाशक : Indian Adult Education Association,
1953.

जिसे प्रारंभिक अक्षरज्ञान मात्र हुआ हो, उसे 'नवसाक्षर' (neo-literate) कहा जायगा । नव-साक्षरों के लिए जिस साहित्य का निर्माण करना चाहिए उसे सामान्यतः तीन कोटि में विभक्त नवसाक्षरों के किया जा सकता है :—

तीन स्तर प्रथम स्तर (stage) का साहित्य;
 द्वितीय स्तर (stage) का साहित्य;
 तृतीय स्तर (stage) का साहित्य ।

प्रथम और द्वितीय स्तरों के साहित्य में यथासंभव संयुक्त अक्षरों का प्रयोग नहीं होना चाहिए; किन्तु तृतीय स्तर के साहित्य में संयुक्ताक्षरों का थोड़ा-थोड़ा समावेश हो सकता है । वस्तुतः अक्षरों और मात्राओं पर हमारा ध्यान उतना नहीं होना चाहिए जितना इस बात पर होना चाहिए कि ऐसे शब्दों और वक्यों का प्रयोग किया जाय जिनसे वयस्क अपेक्षाकृत अधिक परिचित हों और जिनके साथ वे अपने दैनन्दिन जीवन का अधिक से अधिक संबंध जोड़ सकें ।

वयस्कूपयोगी साहित्य भिन्न-भिन्न शैलियों में होना चाहिए, किन्तु जिस क्रम में इनका उल्लेख नीचे किया जाता है शैलियाँ उसी क्रम में शैली को प्रधानता दी जानी चाहिए ।

पौर्वापर्यक्रम में शैलियाँ :—

कहानी;
 पद्य;
 इतिवृत्तात्मक गद्य;
 नाटक;
 परस्परालाप (dialogue);
 चिट्ठी ।

साहित्योपयोगी विषयों—मुख्यतः द्वितीय तथा तृतीय स्तर के वयस्कों के लिए—की भी एक सूची नीचे दी जा रही है । जिस क्रम में साहित्योपयोगी विषयों का उल्लेख किया जा रहा है उसी क्रम में उनका महत्त्व अथवा प्रधानता विषय अपेक्षित है ।

पौर्वापर्यक्रम में विषय :—

स्वास्थ्य;
जीवनचरित्र;
खेती;
सामाजिक कर्त्तव्य (Civics);
गृहविज्ञान;
प्रचलित उद्योग-धंधे;
ग्राम-संगठन;
ग्रामीण खेल;
लोकगीत और लोककथाएँ;
परम्परा और पौराणिक गाथाएँ;
पशुपालन एवं पशुचिकित्सा;
पथ-चेतना (Road sense);
स्थानीय भूगोल ।

इस परिच्छेद को समाप्त करने के पूर्व हम उस विशिष्ट प्रकार के साहित्य की ओर भी संकेत करना चाहेंगे जिसकी आवश्यकता दिन प्रतिदिन कार्यकर्त्ता, विशेषतः, साक्षरता-वर्ग के संचालक, को होगी । कार्यकर्त्ता के प्रत्येक कार्यकर्त्ता को एक ऐसा पुस्तकालय-वाचनालय सुलभ लिए पठनीय होना चाहिए जिसमें समाजशास्त्र, नागरिकशास्त्र, साहित्य, समाज-मनोविज्ञान, वयस्क-मनोविज्ञान, वयस्क-शिक्षा-प्रणाली, देशविदेशों के इतिहास, भूगोल, सामान्यज्ञान संबंधी पुस्तकें, अपने देश के आकर-ग्रन्थ (Classics), जीवनचरित्र आदि तथा प्रचलित पत्रपत्रिकाएँ और दैनिक मिल सकें । कार्यकर्त्ता इन्हें पढ़कर अपनी नोट-पुस्तिका में आवश्यक अथवा ज्ञातव्य बातों को अंकित करता जायगा और उन्हें समय-समय पर केन्द्रों में जुटनेवाले लोगों को बतलाएगा । उस दिन की प्रमुख खबरों को बताना और उन्हें ब्लैकबोर्ड आदि पर लिखकर सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाना तो उसकी नियमित दिनचर्या होगी ।

उपर्युक्त कार्य को सुगम बनाने के लिए हमें कार्यकर्त्ताओं के लिए विशिष्ट साहित्य का निर्माण करना होगा, अथवा इस प्रकार के

अन्यत्र निर्मित साहित्य का उपयोग करना पड़ेगा। यह निर्देश-साहित्य साहित्य अनेक प्रकार का होगा किन्तु कुछ का निर्देश किया जा रहा है:—

सामान्य निर्देशपुस्तिका (General Handbook or Guide);
विशिष्ट-विषयक निर्देशपुस्तिका (Subjectwise Handbook);
संलाप-बिन्दु (Talking Points)।

सामान्य निर्देश-पुस्तिका से कार्यकर्त्ताओं को अपने कार्य के संचालन तथा संगठन में सहायता मिलेगी; इतिहास-भूगोल आदि विभिन्न विषयों की निर्देशपुस्तिकाओं से उन-उन विषयों का ज्ञान कराने में सहूलियत होगी; और संलापबिन्दुओं^२ को पढ़कर वह दिन-प्रतिदिन भिन्न-भिन्न काम की चीजों, व्यवहारिक ज्ञान के माध्यमों, तथा व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी अनेकानेक विषयों पर जनता के सामने सरलतम, किन्तु प्रामाणिक एवं रोचक, ढंग से बातचीत कर सकेगा, परस्पर आलाप-प्रतिलाप-संलाप द्वारा उसके मानसिक स्तर को उन्नत बनाएगा और हृदय में सामाजिक चेतना भरने की चेष्टा करेगा।

२ संलापबिन्दुओं के नमूने पुस्तक के अन्त में देखिए।



परिच्छेद बारह

वयस्क शिक्षा-पद्धति की विशेषताएँ

शिक्षा का सामान्य लक्ष्य यह होता है कि हम सभ्य एवं शिष्ट नागरिक बनें, हमें अपने समाज, अपने राष्ट्र तथा विश्व के संबंध में सामान्य ज्ञान प्राप्त हो, जिसमें हम अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व को अच्छी तरह समझ सकें। उसका यह भी लक्ष्य होता है कि हम अपनी जीविका के अर्जन एवं निर्वाह के लिए किसी कला अथवा क्षेत्र-विशेष में कुशलता प्राप्त करें। इन लक्ष्यों की पूर्ति के साथ-साथ शिक्षा हमारे आचार-व्यवहार को सुधारती है और ऐसी जीवनशैली प्रदान करती है जिसमें सद्गुणों, सद्भावनाओं और सही रहन-सहन का समावेश हो। इसके अतिरिक्त शिक्षा हमारे व्यक्तित्व की जो तीन शक्तियाँ हैं—शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक—उनमें समन्वय लाती है, जिससे हम उस सिद्धांत-वाक्य का आदर्श प्रस्तुत कर सकें जिसमें यह कहा गया है कि—“मनस्यैकं वचस्यैकं कर्मण्येकं महात्मनम्।” यदि हमारे व्यक्तित्व में इन तीन शक्तियों का समुचित समन्वय न हुआ, तो हम उस मनोवैज्ञानिक विकृति के शिकार समझे जायेंगे जिसे “विच्छिन्न व्यक्तित्व” (Split Personality) कहते हैं। जब हम शिक्षा के इन लक्ष्यों को ध्यान में रखते हैं, तो हमारे सामने यह प्रश्न होता है कि हमें वयस्कों को शिक्षा प्रदान करते समय किस प्रकार की पद्धति अपनानी चाहिए।

सामान्यतः शिक्षक और शिक्षित के बीच जो संबंध हो सकता है उसके आधार पर वयस्क शिक्षा-प्रणाली को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—(क) शिक्षक-प्रधान-प्रणाली वयस्कशिक्षा (ख) शिक्षार्थिप्रधान-प्रणाली और (ग) सम्मिलित का प्रणालियाँ शिक्षण-प्रणाली ।

(क) शिक्षक-प्रधान प्रणाली—इस प्रणाली में शिक्षक प्रायः तीन पद्धतियों से काम लेता है—भाषणपद्धति, परामर्शपद्धति, तथा प्रदर्शनपद्धति । इन सभी पद्धतियों का प्रयोग अनिवार्य है । कभी-कभी शिक्षक को किन्हीं विशिष्ट विषयों को समझाने के लिए भाषण देना आवश्यक हो जाता है । किन्तु अधिकांशतः ऐसी परिस्थितियाँ होंगी जिनमें भाषण के बदले शिक्षक परामर्श से काम लेगा । ऐसा प्रतीत होगा मानो शिक्षार्थी जिज्ञासुभाव से शिक्षक के पास आया है और शिक्षक उसकी जिज्ञासा को सन्तुष्ट करता है, शिक्षार्थी अपनी कठिनाइयाँ शिक्षक के सामने रखता है और शिक्षक प्रेम से उनका समाधान करता है । इस पद्धति के लिए आवश्यक है कि शिक्षक अपने शिक्षार्थी के व्यक्तित्व, उसकी पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियों तथा उसकी आर्थिक स्थिति से अच्छी तरह अवगत हो और साथ-ही-साथ मनोविज्ञान-शास्त्र का भी ज्ञान रखता हो । यदि शिक्षक में ये गुण हों तो वह शिक्षार्थी के हृदय में प्रवेश कर सकता है । प्रदर्शन-पद्धति (Demonstration) तब अपनायी जाती है जब शिक्षक शिक्षार्थी को कोई व्यावहारिक ज्ञान दे रहा हो । मान लीजिए कि एक टेबुल या कुर्सी बनाने की प्रक्रिया चल रही है । स्पष्ट है कि केवल सिद्धान्तों के निर्देशन से अथवा ब्लैकबोर्ड पर चित्रादि के प्रदर्शन से काम नहीं चलेगा । शिक्षक को स्वयं टेबुल और कुर्सी बनाने का अभ्यास होना चाहिए और उसे शिक्षार्थियों के समुख यथा अवसर स्वयं बनाकर, अथवा बनाने में सक्रिय भाग लेकर, अपनी कला का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए ।

(ख) शिक्षार्थि-प्रधान प्रणाली—जब प्रथम-प्रथम शिक्षाशास्त्र का विकास हुआ तो शिक्षा-प्रक्रिया में सवप्रमुख, या यो कहिए, एकमात्र स्थान शिक्षक को मिला था । शिक्षार्थी मानो खाली घड़े के समान था—निष्क्रिय, निश्चेष्ट; और शिक्षक को यह अधिकार था कि वह जिस प्रकार का पदार्थ चाहे—ठोस या तरल—सबकुछ मनमाने रूप से उसमें भर दे । किन्तु ज्यों-ज्यों शिक्षा-शास्त्र का विकास होता गया, त्यों-त्यों यह अच्छी तरह से अनुभव

परिच्छेद बारह

वयस्क शिक्षा-पद्धति की विशेषताएँ

शिक्षा का सामान्य लक्ष्य यह होता है कि हम सभ्य एवं शिष्ट नागरिक बनें, हमें अपने समाज, अपने राष्ट्र तथा विश्व के संबंध में सामान्य ज्ञान प्राप्त हो, जिसमें हम अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व को अच्छी तरह समझ सकें। उसका यह भी लक्ष्य होता है कि हम अपनी जीविका के अर्जन एवं निर्वाह के लिए किसी कला अथवा क्षेत्र-विशेष में कुशलता प्राप्त करें। इन लक्ष्यों की पूर्ति के साथ-साथ शिक्षा हमारे आचार-व्यवहार को सुधारती है और ऐसी जीवनशैली प्रदान करती है जिसमें सद्गुणों, सद्भावनाओं और सही रहन-सहन का समावेश हो। इसके अतिरिक्त शिक्षा हमारे व्यक्तित्व की जो तीन शक्तियाँ हैं—शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक—उनमें समन्वय लाती है, जिससे हम उस सिद्धांत-वाक्य का आदर्श प्रस्तुत कर सकें जिसमें यह कहा गया है कि—“मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।” यदि हमारे व्यक्तित्व में इन तीन शक्तियों का समुचित समन्वय न हुआ, तो हम उस मनोवैज्ञानिक विकृति के शिकार समझे जायेंगे जिसे “विच्छिन्न व्यक्तित्व” (Split Personality) कहते हैं। जब हम शिक्षा के इन लक्ष्यों को ध्यान में रखते हैं, तो हमारे सामने यह प्रश्न होता है कि हमें वयस्कों को शिक्षा प्रदान करते समय किस प्रकार की पद्धति अपनानी चाहिए।

सामान्यतः शिक्षक और शिक्षित के बीच जो संबंध हो सकता है उसके आधार पर वयस्क शिक्षा-प्रणाली को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—(क) शिक्षक-प्रधान-प्रणाली वयस्कशिक्षा (ख) शिक्षार्थिप्रधान-प्रणाली और (ग) सम्मिलित का प्रणालियाँ शिक्षण-प्रणाली ।

(क) शिक्षक-प्रधान प्रणाली—इस प्रणाली में शिक्षक प्रायः तीन पद्धतियों से काम लेता है—भाषणपद्धति, परामर्शपद्धति, तथा प्रदर्शनपद्धति । इन सभी पद्धतियों का प्रयोग अनिवार्य है । कभी-कभी शिक्षक को किन्हीं विशिष्ट विषयों को समझाने के लिए भाषण देना आवश्यक हो जाता है । किन्तु अधिकांशतः ऐसी परिस्थितियाँ होंगी जिनमें भाषण के बदले शिक्षक परामर्श से काम लेगा । ऐसा प्रतीत होगा मानो शिक्षार्थी जिज्ञासुभाव से शिक्षक के पास आया है और शिक्षक उसकी जिज्ञासा को सन्तुष्ट करता है, शिक्षार्थी अपनी कठिनाइयाँ शिक्षक के सामने रखता है और शिक्षक प्रेम से उनका समाधान करता है । इस पद्धति के लिए आवश्यक है कि शिक्षक अपने शिक्षार्थी के व्यक्तित्व, उसकी पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियों तथा उसकी आर्थिक स्थिति से अच्छी तरह अवगत हो और साथ-ही-साथ मनोविज्ञान-शास्त्र का भी ज्ञान रखता हो । यदि शिक्षक में ये गुण हुए तो वह शिक्षार्थी के हृदय में प्रवेश कर सकता है । प्रदर्शन-पद्धति (Demonstration) तब अपनायी जाती है जब शिक्षक शिक्षार्थी को कोई व्यावहारिक ज्ञान दे रहा हो । मान लीजिए कि एक टेबुल या कुर्सी बनाने की प्रक्रिया चल रही है । स्पष्ट है कि केवल सिद्धान्तों के निर्देशन से अथवा ब्लैकबोर्ड पर चित्रादि के प्रदर्शन से काम नहीं चलेगा । शिक्षक को स्वयं टेबुल और कुर्सी बनाने का अभ्यास होना चाहिए और उसे शिक्षार्थियों के समुख यथा अवसर स्वयं बनाकर, अथवा बनाने में सक्रिय भाग लेकर, अपनी कला का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए ।

(ख) शिक्षार्थि-प्रधान प्रणाली—जब प्रथम-प्रथम शिक्षाशास्त्र का विकास हुआ तो शिक्षा-प्रक्रिया में सबप्रमुख, या यो कहिए, एकमात्र स्थान शिक्षक को मिला था । शिक्षार्थी मानो खाली घड़े के समान था—निष्क्रिय, निश्चेष्ट; और शिक्षक को यह अधिकार था कि वह जिस प्रकार का पदार्थ चाहे—ठोस या तरल—सबकुछ मनमाने रूप से उसमें भर दे । किन्तु ज्यों-ज्यों शिक्षा-शास्त्र का विकास होता गया, त्यों-त्यों यह अच्छी तरह से अनुभव

किया जाने लगा कि वस्तुतः शिक्षा का लक्ष्य शिक्षार्थी की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास है, और वे तब तक विकसित नहीं हो सकतीं जब तक शिक्षार्थी स्वयं चेष्टमान न हो। शिक्षक का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह शिक्षार्थी को निर्देशमात्र दे, उसे भूल तथा परीक्षण (Trial and Error) करने की पूरी स्वतन्त्रता दे, और इस प्रकार की परिस्थितियाँ उसके सामने प्रस्तुत करे जिनमें वह क्रमशः अपने अनुभवों की ईंट चुन-चुन कर ज्ञान की सुन्दर इमारत सजा सके। शिक्षार्थी में जिज्ञासा तथा कुतूहल को उत्पन्न करना शिक्षक का प्रथम कर्त्तव्य है। जब इस प्रकार की जिज्ञासा अथवा कुतूहल की उत्पत्ति हो जाय, तो उसमें ऐसी प्रेरणा देनी चाहिए कि वह अपनी जिज्ञासा अथवा कुतूहल को स्वयं संतुष्ट करने की क्षमता प्राप्त कर सके। इस बात को ध्यान में रखते हुए शिक्षक को चाहिए कि वह उपयुक्त वाचनालय और पुस्तकालय की सुविधा प्रदान करे; व्यावहारिक कार्यों के लिए प्रयोगशाला (Laboratory) की व्यवस्था करे; इस प्रकार की प्रश्नावली तैयार करके उसको दे, जिसके आधार पर वह अन्वेषण तथा छानबीन कर सके; वह इस प्रकार की तालिकाएँ (Statements or proformas) सोच निकाले जिनकी पूर्ति करने में शिक्षार्थी को स्वयं प्रयास करना पड़े। शिक्षक को बीच-बीच में विशेष यात्राओं का भी प्रबन्ध करना चाहिए,—ऐसी यात्राएँ जिनमें शिक्षार्थी आँखें खोल कर देखे-सुने और अपने लिए आवश्यक ज्ञान का अर्जन करे। कभी-कभी सभी शिक्षार्थियों अथवा शिक्षार्थियों के वर्गविशेष के सामने कुछ व्यावहारिक योजनाएँ (Projects) प्रस्तुत करनी चाहिए। गाँव के स्कूल की दीवाल अथवा छप्पर की मरम्मत, कुएँ की मरम्मत, सड़क अथवा गली का निर्माण—ये सब कुछ इस प्रकार की योजनाएँ हैं जिनमें मानव की सभी शक्तियों का उपयोग हो सकता है। कहाँ से ईंट लाएँ, कहाँ से बाँस लाएँ, कैसे चन्दा इकट्ठा करें, किनसे श्रमदान ले, इत्यादि अनेकानेक समस्याएँ हैं जिनके समाधान हुए बिना ये योजनाएँ सफल नहीं हो सकती। शिक्षक को चाहिए कि शिक्षार्थियों को प्रेरित करे कि वे स्वयं इन समस्याओं का समाधान करें। हाँ, बीच-बीच में उचित पथ-निर्देश, प्रोत्साहन आदि आवश्यक है।

(ग) सम्मिलित-शिक्षण-प्रणाली—इस प्रणाली के दो अंग हो सकते हैं। एक तो शिक्षक के साथ मिलकर शिक्षार्थी किसी कला अथवा उपयोग की वस्तु तैयार कर सकता है;—शिक्षार्थी मानों शिक्षक का सहकारी बन जाता

हैं और उसके साथ मिलकर किसी पदार्थ का निर्माण करता है तथा इसी निर्माण के सिलसिले में उस कला को सीखता भी जाता है। इस प्रणाली का दूसरा अंग है वर्गगत विचार-विनिमय। एक समस्या ले ली, और उस पर विचार करने के लिए शिक्षार्थियों का एक वर्ग बन गया। शिक्षक भी उस वर्ग का सदस्य बन गया और समान स्तर पर एक साथ विचार-विमर्श होने लगा। उचित होगा कि इस प्रकार के विचार-विमर्श में कोई शिक्षार्थी ही वर्ग-नेता (Group leader) का काम करे। वर्ग-नेता के अतिरिक्त प्रत्येक वर्ग में एक विवरण-संकलयिता (Reporter) की आवश्यकता रहती है। यह संकलयिता विचार-विनिमयों का निष्कर्ष तैयार करता है और वर्ग के सभी सदस्यों की जानकारी के लिए उनके सामने उसे रखता है। इस प्रकार के विचार-विनिमय में वर्ग-नेता को कभी-कभी बड़ी सावधानी बरतनी होती है, क्योंकि प्रायः आशंका यह रहती है कि वर्ग के सदस्य विचार-विनिमय करते-करते मुख्य विषय को छोड़कर दूर न भाग जायें अथवा गौण विषय में इतना अधिक समय न ले लें कि मुख्य विषय के प्रति पूरा न्याय न हो सके।

विचार-विमर्श-पद्धति शिक्षण का बहुत सुन्दर माध्यम है, क्योंकि इसके द्वारा विरोधियों के भी विचारों को ध्यान और सहिष्णुता के साथ सुनने और उनपर निष्पक्ष भाव से सोचने की समझदारी आती है। आज भारतवर्ष में विचार-सहिष्णुता की बहुत बड़ी कमी है। अतएव यदि इस पद्धति के द्वारा बयस्कों में मिलजुल कर किसी समस्या को सुलझाने और अपने विरोधियों की भी भावनाओं के प्रति सद्भावना रखने की प्रवृत्ति आ सके, तो बयस्क-शिक्षा-केन्द्र की बहुत बड़ी सफलता मानी जायगी।



परिच्छेद तेरह

साक्षरता-प्रदान की प्रणाली

पिछले परिच्छेद में वयस्कों की शिक्षा की पद्धति और उसके मुख्य विषय क्या होने चाहिए, इन पर विचार किया गया। किंतु कुछ विचार इस संबंध में भी करना है कि यदि वयस्कों को अक्षर-ज्ञान विचार की कराना हो तो हम किस प्रणाली का अवलम्बन वाक्य इकाई करे। भिन्न-भिन्न देशों में बच्चों को अक्षर-ज्ञान न कि वर्ण कराने की प्रणाली के संबंध में अनेकानेक प्रयोग हुए हैं और होते आ रहे हैं। सभी देशों में पुरानी पद्धति यह थी कि प्रारम्भ से ही जिस क्रम में वर्णमाला के अक्षर होते हैं उसी क्रम में वर्णों का अभ्यास कराया जाता है—पढ़ना और लिखना साथ-साथ। किन्तु ज्यों-ज्यों इस संबंध में अनुशीलन तथा अनुसंधान होते गये त्यों-त्यों उपर्युक्त प्रणाली को त्रुटिपूर्ण समझा जाने लगा। निरे वर्णों का अभ्यास कराना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त भ्रान्त है, क्योंकि यदि छोटे से छोटे बच्चे की बोली का भी विश्लेषण करें, तो पता चलेगा कि उसकी बोली का मूल आधार कोई विचार है जिसे वह अपने ढंग से किसी वाक्य में प्रकट करना चाहता है। जब प्रारम्भ में वह “बाबा”,

“मामा” अथवा किसी अन्य प्रकार की व्यक्त या अव्यक्त ध्वनि का उच्चारण करता है, तो मानों हृदय के किसी भाव को वाक्य में प्रकट करने की चेष्टा करता है। प्रारम्भ में उसका वाक्य मूक चेष्टाओं, अग-संचालन और उच्चरित शब्द—तीनों का मानों एक ऐसा समन्वित रूप रहता है जिसकी व्याख्या ठीक-ठीक नहीं हो सकती। किन्तु तथ्य यह है, कि बोली की प्रारम्भिक इकाई वाक्य है, न कि वर्ण। अतः वाक्यविच्छिन्न वर्णों को इकाई मानकर पढ़ाई-लिखाई का प्रक्रम करना मानो एक मूल मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के विपरीत जाना है। दूसरी बात जो अक्षर ज्ञान कराते समय—चाहे बच्चों को चाहे वयस्कों को—ध्यान में रखनी चाहिए, वह यह है कि प्रारम्भिक पढ़ाई के सिलसिले में पुस्तकों अथवा चार्टों के वाक्य बिल्कुल सरल हों, उनमें संयुक्ताक्षर प्रायः नहीं हो, और उनका सीधा सबध पढ़नेवाले के दैनिक जीवन के क्रिया-कलाप से हो। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वयस्कों के प्राइमरों अथवा चार्टों में छोटे-छोटे वाक्यों से पाठ का निर्माण होना चाहिए। इन वाक्यों के आधार पर शब्दों का, और उन शब्दों के आधार पर वर्णों का ज्ञान स्वतः होता जायगा।

इस प्रसंग में यदि मनोविज्ञान-शास्त्र के “समूह-प्रत्यक्ष” (Configuration or Gestalt) सिद्धान्त की चर्चा करे तो अनुचित नहीं होगा।

उपर्युक्त सिद्धान्त हमें यह बतलाता है कि जब हम अपनी ‘समूह-प्रत्यक्ष’ आँखों से अथवा अन्य ज्ञानेन्द्रियों से किसी वस्तु या पदार्थ का सिद्धान्त पदार्थ का प्रत्यक्ष करते हैं, तो पहले उस वस्तु या पदार्थ के सामूहिक या संगठित रूप का अनुभव करते हैं, न कि उस समूह के खंड-खंड का। उदाहरणतः यदि हम किसी नदी में नाव पर सँवर रहे हों और सामने पहाड़ और जंगलों का एक मनोहर दृश्य उपास्थित हो, तो स्पष्ट है कि हम उस दृश्य को जंगलों और पहाड़ों के एक सामूहिक, सश्लिष्ट सत्ता के रूप में देखेंगे न कि भिन्न-भिन्न चोटियों और शतसहस्र वृक्षों के पृथक्, विच्छिन्न और विश्लिष्ट रूप में। इसी प्रकार मनुष्य की बुद्धि किसी विचार अथवा वाक्य की इकाई को पहले ग्रहण करेगी, तथा उस इकाई के अन्तर्गत आये हुए शब्दों और भावखण्डों को पीछे; और वर्णों को तो सबसे पीछे।

इसी विचारक्रम में एक तीसरे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की ओर हम सकेत

करेंगे। वह है “साहचर्य-सिद्धान्त” (Theory of Association)। इस सिद्धान्त का तात्पर्य यह है कि जिस तरह हमारे जीवन की भिन्न-भिन्न प्रगतिर्या और परिस्थितियाँ एक माला में गुम्फित हैं, उसी प्रकार हमारे मन के भाव भी शृंखला में पिरोये हुए हैं, और वे एक दूसरे से संबद्ध हैं। अतः किसी पाठ के अन्तर्गत आए हुए वाक्य तथा शब्द मिलजुल कर यदि किसी कहानी अथवा छोटी-मोटी घटना का सहचरित रूप प्रस्तुत करें तो अच्छा हो, क्योंकि उस दशा में मनोगतभावों की माला के साथ उसका सामंजस्य होगा।

इस साहचर्य-सिद्धान्त का एक दूसरा पक्ष भी है। वह है संकेत का संकेतित से संबंध, अक्षर का उसके द्वारा द्योतित किसी पदार्थ के रूप से संबंध। हमने लोबाख (Laubach) महोदय और लोबाख की उनकी प्रणाली की चर्चा सुनी है। वे वयस्क-साक्षरता प्रणाली के अन्ताराष्ट्रिय क्षेत्र में एक विशेषज्ञ माने जाते हैं। उन्होंने साहचर्य-सिद्धान्त के इस दूसरे पहलू का अत्यधिक प्रयोग—मैं तो कहूँगा कि आवश्यकता से अधिक प्रयोग—किया है। उनकी “हिन्दी प्रवेशिका” के पहले पाठ की प्रतिलिपि दृष्टान्त के लिए अलग पृष्ठ पर दी जा रही है। उसमें हम यह देखते हैं कि अक्षर “आ” के साथ आम के प्राकृतिक रूप का संबंध जोड़ने की चेष्टा की गई है जिसमें कि वयस्क अपने पूर्व-परिचित आम फल के रूप के आधार पर “आ” अक्षर के रूप को भी हृदयंगम कर सके। वैसे, सिद्धान्ततः तो इस प्रकार का संबंध-संपादन बड़ा अद्भुत दीख पड़ता है और रोचक भी, परन्तु “अ” अक्षर के विकास के इतिहास में जिन लोगों का हाथ रहा है उन लोगों ने यह कभी सोचा भी नहीं होगा कि ऐसी क्लिष्ट कल्पना के द्वारा “आ” अक्षर और आम फल का संबंध स्थापित किया जायगा। फिर भी यह एक अभिनव प्रयोग है और इसका वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने की आवश्यकता है। सामान्यतः जो पद्धति अपनायी जाती है उसमें भी अक्षर का सबंध शब्द से, और शब्द का साहचर्य उसके द्वारा द्योतित पदार्थ से स्थापित किया जाता है, किन्तु यह चेष्टा नहीं की जाती कि “आ” और आम की शकल एक जैसी दीख पड़े। चेष्टा यह की जाती है कि जब वह ‘आम’ शब्द देखे, तब वह आम का चित्र भी देखे, और इस प्रकार बार-बार देखते रहने से उनके मस्तिष्क में एक परिचय तथा परिज्ञान-पथ-सा निर्मित हो जाय जिससे

कि दोनों में से कोई-एक अनायास दूसरे का मानस प्रत्यक्ष कराने में समर्थ हो। प्रायः जितनी प्रारम्भिक पोथियाँ वयस्कों के लिए प्रचलित हैं वे इसी पद्धति पर हैं।

इस संबंध में एक प्रश्न यह आता है कि प्रारम्भिक अक्षरज्ञान कराने में वयस्कों की स्मरणशक्ति का उपयोग होना चाहिए कि नहीं और यदि होना चाहिए तो किस मात्रा में। प्राचीन परम्परा तो ऐसी थी कि छोटे-छोटे शिशुओं को भी बिना समझे-बूझे 'अष्टाध्यायी' और 'अमरकोष' के सूत्र तथा श्लोक रटायें जाते थे और कुरान की आयतों को 'हिफत्र' कराया जाता था। आधुनिक शिक्षा पद्धति इसे शक्ति का ह्रास और स्मृति का दुरुपयोग समझती है। सिद्धान्ततः तो यह ठीक है कि बिना समझे-बूझे अन्धी स्मरण-शक्ति का उपयोग करना लाभदायक नहीं है किन्तु इसके विपरीत यह भी मानना उचित नहीं होगा कि स्मरणशक्ति का उपयोग बिल्कुल न किया जाय। हमें याद रखना चाहिए कि भगवान ने हमें स्मरणशक्ति दी है, और हमारी यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि हम अच्छे-अच्छे श्लोकों, कविताओं, चौपाइयों और दोहों को याद कर लें और आवश्यकतानुसार जहाँ-तहाँ दुहरा सकें। श्री विनोबा भावे जी की शिक्षा में स्मरणशक्ति के उपयोग को बहुत महत्त्व देते हैं। मारा भी विचार है कि वयस्कों की स्मरणशक्ति का उपयोग उचित मात्रा में अवश्य होना चाहिए और उन्हें रामायण गीता आदि ग्रंथों से चुन-चुन कर सरल पद्यों अथवा पक्तियों को "रट" जाने को प्रेरित करना चाहिए। उसे एक तो उनके शब्द का कोष बढ़ेगा, और दूसरे, वे चौगाल आदि बैठकों में प्रभावोत्पादक ढंग से बातें करने में समर्थ होंगे। यदि पद्य और छन्द याद रहें और सर्गित की ओर रुचि रहे, तो वे गा-बजाकर अपने मनोरंजन में साधन भी स्वयं प्रस्तुत कर ले सकते हैं।

संक्षेप में हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचें:—

निष्कर्ष (क) अक्षरारम्भ वाक्यों और वाक्यगत शब्दों के आधार पर होना चाहिए।

(ख) ये वाक्य और शब्द वयस्कों के दिन-प्रतिदिन के जीवन के कार्य-कलाप तथा वातावरण से संबंध रखने वाले हों।

(ग) यह आवश्यक नहीं कि वर्णों को उनके परम्परागत क्रम में ही अभ्यास कराया जाय। उनका कुछ इस प्रकार का क्रम होना चाहिए कि एक के बाद दूसरे तक पहुँचने में आकृति-साम्य के आधार पर सुविधा हो। आकृति-साम्य के कुछ उदाहरण अलग पृष्ठ पर दिये जा रहे हैं।

(घ) पाठ छोटे-छोटे और सरल हो और अच्छा हो कि किसी कहानी अथवा घटना के रूप में प्रस्तुत किये जायँ।

ये पथ-निर्देश ऐसे हैं जिनके आधार पर लगनवाला कार्यकर्ता सफलतापूर्वक वयस्कों को अक्षर-ज्ञान दे सकता है। प्रायः सभी राज्यों ने अपने

अपने ढंग से विशेषज्ञों की देखरेख में वयस्कों की प्रारम्भिक

मूलभूत पोथियाँ प्रकाशित की हैं जिनका उपयोग किया जा सकता

समस्या है। किन्तु मूलभूत समस्या है वयस्कों का नियमित रूप से

साक्षरता-वर्गों में न आना; और कार्यकर्ता की दृष्टि

इस समस्या के समाधान की ओर सर्वदा रहनी चाहिए, तथा, इस उद्देश्य से, अपने केन्द्रों में ऐसे कार्यक्रम को चलाना चाहिए जिसमें मनोरंजन तथा आकर्षण के साधन अवश्य हों।



परिच्छेद चौदह

साक्षरता-वर्ग का प्रारम्भिक पाठ्यविषय

जनसमाज को योग्य नागरिक बनाना, उसे अपने अड़ोस-पड़ोस और दुनिया के विषय में अधिक जानकारी रखने की क्षमता देना, तथा उसमें

अधिक से अधिक स्वस्थ, मधुर और सुखी जीवन-प्रणाली समाजशिक्षा को अपनाने की सामर्थ्य प्रदान करना—यही किसी भी योजना का मुख्य वयस्क-शिक्षा की योजना का मुख्य उद्देश्य होगा।

लक्ष्य भिन्न-भिन्न देशों में और भारत के भिन्न-भिन्न राज्यों में वयस्कों को शिक्षा तथा साक्षरता प्रदान करने के अनेकानेक प्रयोग किये गये हैं और किये जा रहे हैं। इन प्रयोगों के आधार पर बने हुए एक पाठ्यक्रम की रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है। वस्तुतः इस पाठ्यक्रम को निरा साक्षरता का पाठ्यक्रम कहना उचित नहीं होगा, और ऐसा पाठ्यक्रम संभव भी नहीं है। हम तो यहाँ तक कहेंगे कि वयस्कों की शिक्षा में साक्षरता का अनिवार्य स्थान होते हुए भी यह

कोई आवश्यक नहीं कि शिक्षा का प्रारम्भ साक्षरता से ही हो। अच्छा तो यह होगा कि पहले बातचीत के सिलसिले में वयस्कों के जीवन में जो प्रेरणा के स्रोत शुष्क हो गये हैं, उनमें हरियाली लायी जाय, और जब वे हमारी समाज-शिक्षा की योजनाओं में दिलचस्पी लेने लगें, तो उन्हें विधिवत् साक्षरता-प्रदान किया जाय अथवा व्यापक पाठ्यक्रम के आधार पर शिक्षा की नियमित व्यवस्था की जाय।

जो भी पाठ्यक्रम समाजशिक्षा केन्द्रों में सम्मिलित होनेवाले निरक्षरों अथवा नवसाक्षरों के लिए निर्धारित किया जाय, यह आवश्यक होगा कि उसके द्वारा उन्हें उनके जीवन और वातावरण से संबद्ध आवश्यक पाठ्यक्रम के बातों की जानकारी दी जाय; और वह जानकारी भी ऐसी प्रमुख होनी चाहिए जिस का निरा सैद्धांतिक रूप न हो, बल्कि विषय व्यावहारिक हो। और दी जाय वह मातृभाषा में ही। जहाँ हिन्दी की बोलियाँ मातृभाषा के रूप में प्रचलित हो, वहाँ सरल हिन्दी के माध्यम से ही पढ़ाना-लिखाना संभव और सुकर होगा। उनको कुछ न कुछ गणित—विशेषतः दैनन्दिन जीवन में आनेवाले गणित—का ज्ञान होना ही चाहिए। उसी प्रकार आज के युग में सामान्य विज्ञान का सामान्य ज्ञान भी अनिवार्य है। नागरिकता, ग्रामीण अर्थशास्त्र, शासनव्यवस्था, व्यक्ति का अपने समाज के प्रति कर्तव्य, उसके उत्तरदायित्व तथा अधिकार, आदि के विषय में भी उनकी जानकारी होनी चाहिए। इतिहास का ज्ञान मुख्यतः कहानियों के रूप में होना चाहिए। भूगोल का भी अध्ययन ऐसा होना चाहिए जिसका उनके जीवन, उनके निवास-स्थान और उसके भौगोलिक महत्व, यातायात की सुविधा आदि से सीधा संबंध हो। कृषि, पशुपालन और उद्योग के संबंध में भी उनकी अच्छी जानकारी होनी चाहिए। कुछ न कुछ उद्योग उनके जीवन का प्रमुख अंग होना चाहिए। यद्यपि साम्प्रदायिक अथवा मजहबी शिक्षा की व्यवस्था उचित नहीं है, फिर भी नैतिकता तथा अध्यात्म का समावेश शिक्षण-केन्द्रों के पाठ्य विषयों में अवश्य होना चाहिए; और इनका ज्ञान मुख्यतः कथाओं के रूप में दिया जाना चाहिए।

सामान्य निर्देश के रूप में एक पाठ्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है।

पाठ्यक्रम'

१. मातृभाषा

१. मौखिक आत्म-प्रकाशन

(अ) निम्न विषयों पर वार्त्तालापः—

- (१) वयस्क और उसका परिवार ।
- (२) गाँव के विभिन्न व्यवसाय; समाज में प्रत्येक का महत्त्व ।
- (३) गाँव की कृषि तथा अन्य उद्योगों की अवस्था तथा उन्हें सुधारने के संभव साधन ।
- (४) गाँव के समाजसेवी व्यक्ति ।
- (५) गाँव की सार्वजनिक संस्थाएँ—विद्यालय, मठिया, पंचायत, पुस्तकालय आदि; उनकी व्यवस्था और उनसे लाभ ।
- (६) गाँव तथा गाँव के आसपास उपजनेवाले विभिन्न खाद्यान्न, फल तथा अन्य महत्त्वपूर्ण पदार्थ ।
- (७) विभिन्न ऋतुएँ तथा ग्रामीण जीवन पर उनका प्रभाव ।
- (८) विभिन्न त्योहार तथा महत्त्वपूर्ण दिवस और उनका आयोजन ।

(आ) निम्न विषयों पर वाद-विवादः—

- (१) कौन अधिक बलवान् है—कलम या तलवार ?
- (२) कौन अधिक महान् है—बुद्धिमत्ता या संपत्ति ?
- (३) कौन अधिक अच्छा है—किसान का जीवन या पंसारि का ?
- (४) कौन अधिक मधुर है—विपन्नता या संपन्नता ?
- (५) क्या पहनें—मिल का कपड़ा या खादी ?
- (६) कौन अधिक आवश्यक है—अन्न या द्रव्य ?
- (७) कौन अधिक आनन्ददायक है—जाड़ा या गरमी ?
- (८) कौन अधिक उपयोगी है—शिक्षक या डाक्टर ?

(इ) निम्न विषयों का अभिनयकरणः—

- (१) राम और भरत का भ्रातृ-प्रेम ।
- (२) लक्ष्मण और परशुराम ।
- (३) अगद और रावण ।

१. यह पाठ्यक्रम सामान्य निदर्शन मात्र है और इसमें परिस्थिति तथा वयस्कों की योग्यता के अनुसार आवश्यक परिवर्तन किये जा सकते हैं ।

- (४) दानी कर्ण ।
- (५) सत्य हरिश्चन्द्र ।
- (६) एक सुखी मजदूर ।
- (७) एक आदर्श ग्रामीण पुरोहित ।
- (८) एक आदर्श ग्रामीण शिक्षक ।
- (९) एक सफल किसान ।
- (१०) एक शिक्षित ग्रामीण कार्यकर्ता ।

२. पढ़ना

- (१) वयस्क का अपना नाम और उसके गाँव, उसके परिवार के सदस्यों, डाकघर, थाने, जिले, राज्य और देश के नाम ।
- (२) उस स्थान के प्रतिष्ठित व्यक्तियों और राष्ट्र के नताओं के नाम ।
- (३) उस स्थान में उत्पन्न होनेवाले विभिन्न खाद्यान्नों के नाम ।
- (४) विभिन्न प्राकृतिक वस्तुओं के नाम—सूर्य, चंद्र, बादल, वर्षा, तारे जिन्हें वयस्क प्रायः देखा करता है ।
- (५) कृषि-संबंधी विभिन्न औजारों के नाम, जिन्हें उस स्थान के किसान साधारणतः उपयोग में लाते हैं ।
- (६) विभिन्न वाद्य-यंत्रों के नाम, जिन्हें ग्रामीण भजन, कीर्तन आदि में काम में लाते हैं ।
- (७) उपयुक्त क्रियाओं के साथ (१) से (४) में बताये गये शब्दों के—साधारणतः दो शब्दों के—छोटे-छोटे वाक्य ।
- (८) वयस्कों के दैनिक जीवन में किये गये काम से संबंध रखनेवाले छोटे-छोटे वाक्य ।
- (९) साधारण पारिवारिक पत्र और उनके पते ।
- (१०) सरकार द्वारा समय-समय पर निकले हुए परचे, विज्ञापन आदि ।
- (११) सरल भाषा में लिखित संक्षिप्त लोक-कहानियाँ ।
- (१२) लोकगीत—यथा; आल्हा, बिरहा, होली, चैत, भजन प्रभृति ।
- (१३) राम, कृष्ण, गाँधी तथा अन्य राष्ट्रिय नेताओं पर सरल तथा संक्षिप्त कविताएँ ।
- (१४) सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, हवा, वर्षा, गाय, बैल, बुनाई, फसल की तैयारी तथा ऐसे ही अन्य कार्य-कलापों पर संक्षिप्त तथा सरल कविताएँ ।

(१५) श्रीरामचरित-मानस, विशेषतः सुन्दर कांड ।

(१६) समाचार-पत्र तथा मासिक पत्र ।

(१७) सामाजिक उत्सवों के अवसर पर संक्षिप्त एकांकी नाटकों का अभिनय ।

३. लिखना

(१) वयस्क का अपना नाम और उसके गाँव, उसके परिवार के सदस्यों, डाकघर, थाने, जिले, राज्य और देश के नाम ।

(२) उसके परिवार के सदस्यों तथा उस स्थान के प्रतिष्ठित व्यक्तियों और देश के नेताओं के भी नाम ।

(३) उपजाये गये विभिन्न खाद्यान्नां, देखी गई विभिन्न प्राकृतिक वस्तुओं और उपयोग में लाये गये कृषि के औजारों तथा वाद्य-यंत्रों के नाम ।

(४) साधारणतः (१)–(३) से लिये गये लगभग दो-दो शब्दों के संक्षिप्त वाक्य ।

(५) संक्षिप्त वाक्यों में किये गये कामों की चर्चा के साथ दिनचर्या ।

(६) पिता, भाई, पुत्र तथा अन्य रिश्तेदारों को संबोधित करते हुए पारिवारिक पत्र ।

(७) व्यापारियों तथा रोजगारियों को संबोधित करते हुए व्यावहारिक पत्र ।

(८) सिंचाई, बीज, तकावी आदि के संबंध में छोटी-मोटी सहायता प्राप्त करने के लिए विभिन्न सरकारी अफसरों को आवेदन-पत्र ।

(९) सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध उपयुक्त अधिकारी के पास शिकायतें ।

(१०) शुद्ध भाषा तथा छोटे-छोटे वाक्यों में प्रतिदिन की घटनाओं का संक्षिप्त विवरण ।

(११) आजकल के ज्वलंत विषयों पर तथा होली, दीपावली, दुर्गापूजा, बाढ़, अग्निकांड, अवर्षण आदि—जैसे विषयों पर संक्षिप्त लेख ।

(१२) चालू घटनाओं तथा विभिन्न ऋतुओं पर लोकगीत—रचना और पढ़ना ।

(१३) आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक सुधार के तौर-तरीकों पर विचार करते हुए संक्षिप्त कथोपकथन लिखना ।

(१४) सरल चित्र और नक्शे बनाना ।

२. प्रारंभिक गणित

१. १०० तक की गणना ।
२. पूर्णांकों का लिखना, पढ़ना और समझना—१०, १००, १०००, १००००, १००००० का ज्ञान ।
३. १००० तक के अंकों को चढ़ाव तथा उतार के क्रम से क्रमबद्ध करना ।
४. पहाड़ों या गुणक टेबुल का बनाना और उनका अभ्यास करना— १०×१० ; १२×१० ; १६×१० ; २०×१० ।
५. पूर्णांकों के चारों मौलिक नियमों (जोड़, घटाव, गुणा, भाग) का अभ्यास ।
६. चारों मौलिक नियमों के अंतर्गत घरेलू काम-काज से संबंधित हलके हिसाबों का मौखिक अभ्यास ।
७. मिश्र जोड़, मिश्र घटाव, मिश्र गुणा तथा मिश्र भाग का ज्ञान तथा उनका अभ्यास ।
८. भिन्नात्मक अंकों का पढ़ाया जाना $\frac{१}{२}$ $\frac{१}{४}$ $\frac{३}{४}$ का ज्ञान (ठोस दृष्टान्तों द्वारा समझाया जाय) ।
९. इन संकेतों की पहचान तथा प्रयोग:— $+$ $-$ $\times$ $\div$ $=$ ।
१०. रुपये-पैसे, तौल, समय तथा माप के टेबुल ।
११. घड़ी में समय देखने को जानना ।
१२. साधारण व्याज, जंसा कि उस स्थान में सामान्यतः प्रयोग में है ।
१३. उस स्थान में प्रचलित रुपये-पैसे, तौल तथा माप के लिखने की विधि से परिचय और उनका हिसाब-किताब ।
१४. दैनिक मजदूरी, लगान की दर, किराये आदि का जोड़ना तथा इनके संबंध में हलके हिसाबों का हल ।
१५. दैनिक जीवन के सामान की खरीद-बिक्री तथा तज्ज्वनित लाभ-हानि का ज्ञान ।
१६. क्षेत्रफल तथा स्थानीय मापों से उसके संबंध का व्यावहारिक ज्ञान ।

१७. आय-व्यय से संबंधित घरेलू हिसाब-किताब ।
 १८. विवाह, श्राद्ध, पूजा, त्योहार, कुर्आ-खुदाई, गुह-निर्माण तथा मरम्मतों आदि के संबंध में खर्च का अनुमान करना तथा हिसाब-किताब लिखना ।

३. सामान्य विज्ञान

१. सामाजिक तथा वैयक्तिक, दोनों दृष्टियों से स्वास्थ्य-निर्वाह का महत्त्व । शरीर की तौल में वृद्धि तथा कमी होने के कारणों का ज्ञान । स्वस्थ जीवन-यापन, स्वच्छता, विशुद्ध वायु, निर्मल जल, सतुलित भोजन, यथोचित विश्राम, श्रम, मानसिक प्रसन्नता तथा मादकद्रव्य-निषेध की आवश्यकता ।
२. वैयक्तिक स्वच्छता और स्वच्छ जीवन-यापन के अभ्यास, शरीर तथा शरीर-चर्म की उचित तथा नियमित सफाई, तेल-मर्दन तथा स्नान । हाथ, पैर, आँख, नाक, कान, मुँह, नाखून, बाल, जबड़े और दाँत की सफाई । कपड़ों की सफाई । समय पर नित्य-कर्म करना, उड़ोस-पड़ोस की सफाई—आस-पास की गंदगी ही रोग फैलानेवाले कीटाणुओं की वृद्धि की उत्तरदायी है । मल-मूत्र फेंकने की व्यवस्था—खाईवाले पाखाने (ट्रेच लैटरिन) तथा इनके लाभ । कीटाणु तथा इनके काम । पानी-सोख गडह (सोक पिट) तथा इनके महत्त्व । मक्खियाँ, मच्छड़ और जूँ—इन्हें कैसे रोका जाय ? रोग तथा मौत की अवस्था में सफाई—कीटाणु-नाशक दवाओं का उपयोग, कीटाणुग्रस्त कपड़ों तथा बिछावन को नष्ट करना, भोजों तथा उत्सवों के समय स्वच्छता ।
३. विशुद्ध वायु का महत्त्व तथा आवश्यकता । हवा की गंदगी दूर कर उसे विशुद्ध करना । हवा को विशुद्ध करने में पेड़ों का काम । हवादार स्थान की आवश्यकता तथा हवादार स्थान बनाने का तरीका । साँस की प्रक्रिया ।
४. सूर्य—जीवनदाता तथा सबसे बड़ा कीटाणु-नाशक ।
५. गाँव में पानी जुटाने की समस्या । गंदे जल को विशुद्ध बनाने तथा कीटाणु-रहित करने की विधियाँ ।

६. ग्रामीण भोजन तथा इसे सुधारने का उपाय । विभिन्न प्रकार के भोजन और इनकी पौष्टिकता का महत्त्व । अच्छे भोजन में क्या तत्त्व रहना चाहिए । शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता—गुण तथा परिमाण । भोजन पचना । दूध, फल और साग-सब्जियों का महत्त्व । कच्चे तथा सड़े-गले भोजन से दूर रहना । मादक द्रव्यों की बुराइयों का वैज्ञानिक विश्लेषण ।
७. व्यायाम की आवश्यकता ।
८. ओज के पुनःस्थापन की अनिवार्यता । स्वास्थ्य के लिए गहरी नींद का महत्त्व ।
९. मनोरंजनात्मक क्रिया-कलाप का महत्त्व ।
१०. मानव-शरीर, इसके अंग-प्रत्यंग तथा उनके काम का ज्ञान ।
११. साधारण रोग—उनकी पहचान तथा सरल चिकित्सा—कब्ज, अपच, सिर-दर्द, बुखार, आंख का घाव आदि ।
१२. निम्नलिखित की प्रारंभिक चिकित्सा (फर्स्ट एड) और अत्यावश्यक चिकित्सा:—
 - (क) साँप तथा बिच्छू का दंशन ।
 - (ख) विपंले कीड़ों तथा पौधों का असर ।
 - (ग) गिरने, धक्का लगने आदि के कारण चोट ।
 - (घ) आग या तप्त तरल पदार्थ से जलना ।
 - (ङ) कटने का घाव, खून बहना ।
 - (च) पानी में डूबना ।
 - (छ) मूर्च्छा आना ।
 - (ज) उन्माद या हिस्टीरिया ।
 - (झ) मृगी ।
 - (ञ) भोजन के साथ विष का असर ।
१३. सामान्य प्रचलित रोग—इंफ्लुएंजा, मलेरिया, हैजा, टायफायड, गलसूआ, चेचक, प्लेग, पेचिश आदि—इनके कारण, चिकित्सा तथा रोकने के उपाय । रोगों के संबंध में लोक-प्रचलित मगर गलत धारणाएँ तथा विश्वास और उनका निवारण ।
१४. शिशु-पालन, जन्म के पहले तथा जन्म के बाद की सतर्कता । शिशु-पालन की समस्या ।

१५. विभिन्न ऋतुएँ तथा मनुष्यों, पशु-पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों, पेड़-पौधों तथा फसल पर उनका प्रभाव । वर्षा की ऋतु या ऋतुएँ । वर्षा कैसे होती है ? वर्षा होने के समय, वर्षा के पहले या बाद आकाश की रंगत । वर्षा का मूल्य । किस ऋतु में ओस तथा कुहरे बनते हैं ? कहाँ और कब ये बनते हैं ? कब और क्यों ये विलुप्त हो जाते हैं ? कपड़े कैसे सूख जाते हैं ? तालाब के अधिकांश जल कहाँ चले जाते हैं ?
सूर्य के उदय होने और अस्त होने के स्थान में परिवर्तन ।
सूर्य और ऋतुएँ ।
महीने के शकल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष । चन्द्रमा का घटना-बढ़ना ।
ग्रहण होने का कारण ।
१६. पौधों में भी जीव हैं—पौधों के मुख्य अंग और उनके काम ।
१७. सामान्य पक्षी तथा कीट-पतंग—उनके जीवन-यापन का ढंग । मनुष्यों के मित्र तथा शत्रु-रूप में पक्षी तथा कीट-पतंग ।
१८. प्रकृति पर मनुष्य की विजय की मरल और छोटी-छोटी कहानियाँ; यातायात के विकास की कहानी ।
१९. मुख्य जड़ी-बूटियों की पहचान और उनका उपयोग ।

४. प्रारंभिक नागरिकता और अर्थशास्त्र

१. ग्रामीण समाज और उसका संगठन ।
२. हमारा समाज ग्रामीण भारत में निवास करता है ।
३. आधुनिक ग्रामीण समाज के अन्तर्गत सामाजिक वर्गीकरण ।
४. एक ग्रामीण का उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य ।
५. परिवार और घर सहयोग तथा सद्भावना के सिद्धान्त पर आधारभूत है । परिवार की सुगम व्यवस्था । परिवार के सदस्यों का एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व ।
६. सामाजिक तथा जातीय सद्भावना ।
७. स्वायत्त शासन का अर्थ—स्वायत्त शासन का आदर्श रूप जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन ।
८. निर्वाचन—मत और इसका अर्थ । मत का मोल । मतदाता के कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व । लोकमत की अभिरुचि ।

९. ग्राम-पंचायत और उसका विधान । कैसे यह कार्यान्वित होती है ।
इसके नियंत्रण का क्षेत्र ।
१०. स्वायत्त शासन संचालित करनेवाली संस्थाएँ और उनके कार्य—
यूनियन बोर्ड, लोकल बोर्ड और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ।
११. हम कैसे शासित होते हैं ? स्थानीय, प्रांतीय और केन्द्रीय शासन के
संगठन का प्रारम्भिक ज्ञान ।
१२. राज्य के प्रति हमारे कर्तव्य । कानून तथा व्यवस्था के प्रति
सम्मान ।
१३. ग्रामीण कल्याण-केन्द्र और एजेंसियाँ तथा ग्रामीण समाज के विकास
की दिशा में उनकी देन । स्थानीय सरकारी विभागों तथा उनके
अधिकारियों का परिचय और उनका उपयोग ।
१४. किस प्रकार एक गाँव स्वतः पर्याप्त इकाई हो सकता है ?
१५. सुखी पारिवारिक जीवन के लिए आवश्यक शर्तें ।
१६. सामाजिक कुरीतियों की समस्याएँ और उनके समुचित हल ।
१७. ग्रामीण संस्कृति और स्वस्थ मनोरंजन ।
१८. परिवार के आय-व्यय का विवरण (बजट) ।
१९. बाजार तथा सौदा खरीदने-बेचने की समस्या ।
२०. ग्राम-सहयोग-समिति—उसके विधान और कार्य । सहयोग-समिति
की दूकान और बैंक ।
२१. कृषि, गृह-उद्योग, भवन-निर्माण, कपड़े, कर्ज तथा अर्थ-संबंधी
ग्राम-जीवन की वर्तमान अवस्था का विश्लेषण ।
२२. ग्राम-जीवन की आर्थिक स्थिति किस प्रकार सुदृढ़ बनायी जा सकती
है ? इस दिशा में गृह-उद्योग-केन्द्रित आर्थिक व्यवस्था का महत्त्व ।
२३. गाँव तथा नगर का पारस्परिक संबंध ।
२४. एक आदर्श गाँव की भावना ।
२५. नागरिकता की व्यावहारिक शिक्षा या ट्रेनिंग :—
(क) उचित समय पर, समुपयुक्त स्थान पर, स्वच्छ ढंग से नित्य
कर्म से निवृत्त होने की सीखना ।
(ख) जल तथा पात्रों का समुचित उपयोग ।
(ग) कपड़े तथा बिछावन की स्वच्छता तथा व्यवस्था ।
(घ) सामूहिक सफाई में भाग लेना ।

- (ड) कैसे, कब, कहाँ और कितना भोजन करना चाहिए ?
- (च) कब और कितनी देर तक विश्राम करना और सोना चाहिए ?
- (छ) बड़े-बूढ़ों, छांटों तथा अतिथियों का किस प्रकार अभिवादन करना चाहिए ?
- (ज) सभा में कैसे खड़ा होना, बैठना और बातें करनी चाहिए ?
- (झ) वयू प्रथा (क्रमवद्धता) का अभ्यास करना ।
- (ञ) किसी की कमजोरी से लाभ नहीं उठाना चाहिए ।
- (ट) सभाओं तथा मोद-मंडलियों का संगठन करना ।
- (ठ) ग्रामीण पुस्तकालय, ग्रामीण औषधालय, सहयोग-समिति की दुकान तथा बैंक और ग्राम-पंचायत के संगठन में भाग लेना ।

५. इतिहास तथा संक्षिप्त कहानियाँ

धार्मिक, राष्ट्रिय तथा स्थानीय उत्सव-त्योहारों के आयोजन द्वारा, व्यावसायिक कार्य-कलाप के प्रदर्शन द्वारा, समाचार-पत्रों के अध्ययन द्वारा तथा अभिनयकरण द्वारा गाँव, जिले, राज्य तथा भारत के इतिहास से संबंधित मरल तथा संक्षिप्त कहानियाँ ।

१. गाँव—किस प्रकार इसकी स्थापना हुई; इसके मस्थापक का संक्षिप्त जीवन ।
२. गाँव में आसपास के भग्नावशेष, प्राचीन मूर्तिया तथा उनका ऐतिहासिक महत्त्व ।
३. मिल के कपड़े के क्रमिक विकास की कहानी ।
४. खादी के जन्म की कथा ।
५. रामायण के विभिन्न पहलुओं से संबंधित कहानियाँ ।
६. कुरुक्षेत्र का युद्ध ।
७. हमारे धार्मिक सुधारक और साहित्य-महारथी :—
 - (क) भगवान बुद्ध ।
 - (ख) भगवान महावीर ।
 - (ग) यीसु मसीह ।
 - (घ) इस्लाम के पैगम्बर ।
 - (ङ) महात्मा कबीर

(च) गुरु नानक ।

(छ) मीरा, सूर और तुलसी ।

८. महान् अशोक ।
९. विक्रमादित्य ।
१०. शेरशाह और ग्रैंड ट्रंक रोड ।
११. अकबर और दीन इलाही ।
१२. अंग्रेज कैसे भारत आये ?
१३. भारत में अंग्रेजी शासन की कथा ।
१४. लॉर्ड विलियम बेंटिक तथा सती-प्रथा का अंत ।
१५. किस प्रकार कांग्रेस की स्थापना हुई ?
१६. हमारे स्वातंत्र्य-संग्राम की कथा ।
१७. हमारे राष्ट्रपिता—महात्मा गांधी ।
१८. हमारे राष्ट्रपति ।
१९. हमारे प्रधान मंत्री ।
२०. भारत में प्रचलित मुख्य पर्व और ऐतिहासिक आधार ।^२

६. प्रारम्भिक भूगोल

१. चार दिशाएँ—दिन तथा रात के समय उनका ज्ञान ।
२. तीन स्पष्ट ऋतुएँ और जीवन पर उनका प्रभाव ।
३. आर्थिक दृष्टिकोण से गाँव का भूगोल—स्थिति, जमीन की सतह, मिट्टी तथा गाँव के साधन । हम गाँव में क्या, कैसे, कब और क्यों पैदा करते हैं ? हमारे आयात-निर्यात । हमारा पशुधन ।
४. हमारा देश और इसके मुख्य भौगोलिक क्षेत्र ।
५. भारत—समृद्धियों तथा साधनों की भूमि ।
६. हमारे देश के विभिन्न भागों में लोगों की जीविका और निवास के नियंत्रण में भौगोलिक तथ्य ।
७. तीर्थस्थान और उनका भौगोलिक महत्त्व ।
८. हम एक स्थान से दूसरे स्थान तक कैसे जाते हैं ? यातायात के साधन और उनका विकास ।
९. हमारी दुनिया ।

२. यह सूची निदर्शनमात्र है; इच्छानुसार परिवर्द्धन किया जा सकता है ।

१०. दुनिया के प्रमुख देशों के नाम का साधारण परिचय । उन देशों के निवासी और उनके विभिन्न रहन-सहन के नियंत्रण में भौगोलिक तथ्य ।
११. देश के प्राकृतिक साधन और मुख्य नगर आदि ।
१२. मानचित्रों का व्यावहारिक तथा जीवन्त उपयोग ।

७. कृषि, पशुपालन तथा उद्योग

१. कृषि तथा भारत-जैसे देश में इसका महत्त्व ।
२. 'अधिक अन्न उपजाओ'-आन्दोलन ।
३. हमारे पौधों की क्या जरूरत है ? स्थानीय मिट्टी का विश्लेषण ।
४. बीज का चुनाव ।
५. खाद तथा इसके काम ।
६. फसलों का प्रत्यावर्तन ।
७. कृषि के कीटाणु और इनसे होनेवाली हानियाँ । इन्हें कैसे नियंत्रित किया जा सकता है ?
८. कंपोस्ट खाद, सोनखाद तथा हीरक खाद और पानी-मोख (सोक-पिट) खाइयों का निर्माण ।
९. भूमि-सिचाई के तरीके ।
१०. बीजों को रखना ।
११. उपयुक्त पशुओं का चुनाव । पशुओं और चिड़ियों का नस्ल-मुधार ।
१२. पशुओं के रोग और उनकी चिकित्सा ।
१३. सहयोग की खेती ।
१४. दुग्धशाला या डेयरी फार्म ।
१५. भारत की नहर-प्रणाली ।
१६. भारत की कृषि की विशेषताएँ—(क) सिचाई की प्रणाली, (ख) फसल, (ग) पशु ।
१७. देश के बड़े-बड़े उद्योग ।
१८. देश के गृह-उद्योग ।
१९. स्थानीय गृह-उद्योग और उनके संगठन तथा संभावित विस्तार की योजनाएँ ।

८. नैतिक और आध्यात्मिक कथाएँ

१. राम—आज्ञाकारी पुत्र, स्नेहालु भाई और आदर्श राजा ।
२. भरत राज्य ठुकरा देते हैं ।
३. वन में लक्ष्मण ।
४. राजा हरिश्चन्द्र ।
५. राजा दधीचि ।
६. रामभक्त हनुमान ।
७. भगवान शिव ।
८. राजा शिवि ।
९. महर्षि वाल्मीकि ।
१०. वशिष्ठ और विश्वामित्र ।
११. विदेह जनक ।
१२. राजा दिलीप और नंदिनी ।
१३. ऋषि दुर्वासा ।
१४. भक्त प्रह्लाद ।
१५. भक्त-प्रवर ध्रुव ।
१६. परशुराम ।
१७. सती अनसूया ।
१८. सती सावित्री ।
१९. माता सीता ।
२०. भगवान् कृष्ण ।
२१. हलधर बलराम ।
२२. देवव्रत भीष्म ।
२३. भक्त विदुर ।
२४. दानी कर्ण ।
२५. वीर अभिमन्यु ।
२६. देवी दमयन्ती ।
२७. कपिल मुनि ।
२८. एकलव्य ।
२९. गौतम बुद्ध ।
३०. राजा भागीरथ ।

३१. महात्मा गांधी ।^३

६. प्रारंभिक चिकित्सा

१. प्रारम्भिक चिकित्सा तथा सामान्यतः प्रचलित औषधियों का ज्ञान ।

१०. हस्तोद्योग

२. कम-से-कम एक हस्तोद्योग (Craft) का व्यावहारिक अभ्यास ।

३ इस सूची में यथावसर पर्याप्त परिवर्द्धन अपेक्ष्य है । कार्यकर्त्ता तथा अध्यापक का कर्त्तव्य है कि भिन्न-भिन्न विषयों पर अपने नोट या संलापबिन्दु (talking points) तैयार करें । संलाप बिन्दुओं के नमूनों के लिए देखिए परिशिष्ट ।



परिच्छेद पन्द्रह

खण्ड एक

समाजशिक्षा तथा समाजसेवा का प्रशिक्षण : सिद्धान्तपक्ष

इण्डियन ऐडल्ट एडुकेशन एसोसियेशन (Indian Adult Education Association) के तत्वावधान में बिहार (विक्रम) में होनेवाले चतुर्थ सेमिनार (Seminar) में “समाजशिक्षा कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण क्यों ? प्रशिक्षण (Training of Social Education विशेषज्ञता की Workers)” पर विस्तृत विचार किया गया है । इसके आवश्यकता पहले कि सेमिनार के निष्कर्षों को प्रस्तुत किया जाय, एक मौलिक प्रश्न यह उठता है कि क्या वस्तुतः समाजशिक्षा के कार्य करने अथवा समाजसेवक बनने के लिए विधिवत् प्रशिक्षण की आवश्यकता है ? उत्तर में हम यह कहेंगे कि यद्यपि ऐसे उदाहरण मिल सकेंगे कि बिना प्रशिक्षण के भी कुछ व्यक्ति समाज-शिक्षा अथवा समाजसेवा कार्य में कुशलता और निपुणता प्राप्त कर सके हैं; किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि समाज-शिक्षण और समाजसेवा एक कला है, और किसी भी कला में निपुणता प्राप्त करने के लिए विशिष्ट अध्ययन तथा विशिष्ट प्रयोगों की आवश्यकता होती है । इसके अतिरिक्त आज का युग विशेषज्ञता (Specialization) का युग है । जब विज्ञान के इतने अधिक आविष्कार नहीं हुए थे जितने कि आज हमारे सामने हैं,

तब लोगों की प्रवृत्ति बहुज्ञता (Versatility) की ओर थी। किन्तु अब वह स्थिति नहीं रही। अब तो अमेरिका और जापान आदि देशों में इस प्रकार की व्यवस्था है कि यदि किसी मोटरगाड़ी अथवा अन्य वस्तु का उत्पादन करना है, तो उसके अलग-अलग पुर्जों के उत्पादन में निपुणता प्राप्त की जाय। जिसको हम पहले 'बहुज्ञ' कहकर गौरवान्वित करते थे, आज पल्लवग्राही (Jack of all trades, master of none) कहकर हम उसकी विडम्बना करते हैं। इसलिए यदि कोई व्यक्ति समाजसेवा और समाजशिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहता है तो उसे इन विषयों का विशेषज्ञ होना आवश्यक है; और यह विशेषज्ञता बिना प्रशिक्षण के सम्भव नहीं।

प्रशिक्षण की आवश्यकता के अन्य कारण भी हैं। प्रत्येक कला (Art) के साथ विज्ञान (Science) भी होना चाहिए; प्रत्येक व्यवहार के साथ सिद्धान्तपक्ष का होना भी आवश्यक है। यदि कला समाजसेवा हाथ और पैर है, तो विज्ञान आँख है। विज्ञान के एक बिना कला अधी है। यदि हम एक अपढ किन्तु कलाकुशल कला हैं बढई के साथ समझदार तथा पढ़े-लिखे बढई की तुलना करे, तो हम यह अच्छी तरह समझ सकेंगे कि किसी कला के सिद्धांत को जानना और बात है, निरी कारीगरी और बात है। यदि बढई सामान्य गणित और ज्यामिति के सिद्धांतों को नहीं जानता है, तो भले वह कोई सुन्दर टेबुल या कुर्सी बना ले, परन्तु वह अपनी ही कला की सृष्टि की व्याख्या आप नहीं कर सकता, और न उसकी सुन्दरता, तथा उसकी विशेषताओं का विश्लेषणात्मक प्रनिपादन ही कर सकता है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रत्येक कलाकार को अपनी कला के आधारभूत सिद्धांत से परिचित होना चाहिए। समाजसेवा अथवा समाजशिक्षा का संगठन भी एक ऐसी कला है, जिसको सूचारुरूप से सम्पन्न करना तबतक संभव नहीं है जबतक सामाजशास्त्र के सामान्य नियमों, वयस्क मनोविज्ञान, स्वास्थ्य तथा सफाई संबंधी आवश्यक बातों, वयस्कों को पढ़ाने-लिखाने की विशेष पद्धति, वयस्कोपयोगी साहित्य की विशेषता जन-सम्पर्क-संस्थापन, भारतीय संविधान, गाँवों की आर्थिक स्थिति, संस्कृति और मनोरंजन के साधनों आदि का कम से कम सामान्य ज्ञान न हो।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि जब से देश में सम्यता का विकास हुआ तब से ही अनेकानेक व्यक्ति समाजसेवक और समाज-सुधारक के रूप में

प्रकट होते रहे हैं; बुद्ध, महावीर, शंकर, रामानुज, रामानन्द, मध्व, वल्लभ दयानन्द, रामकृष्ण, विवेकानन्द । इन सबों ने समाज की सेवा की; — क्या इन्हें कोई प्रशिक्षण मिला था ?.. ठीक है, कि इन्हें किसी व्यावहारिक प्रकार का प्रशिक्षण नहीं मिला था, परन्तु विशिष्ट तथा कार्यकर्त्ताओं की विभूतिमान् व्यक्तियों के आधार पर किसी सामान्य सिद्धांत आवश्यकता का खंडन-मंडन नहीं किया जा सकता । इसके अतिरिक्त एक बात ध्यान में रखने योग्य है । जिन विचार-प्रवर्तकों और समाजसेवियों के नाम ऊपर गिनाये गये हैं, वे वस्तुतः विचारक और प्रचारक थे । उनका प्रथम लक्ष्य था अध्यात्म, और विचारों में क्रान्ति । उन्होंने किसी विशिष्ट पद्धति का अनुसरण नहीं किया, और न विचार-क्षेत्र को व्यवहार-क्षेत्र से अलग रखने की चेष्टा की । आज जिस युग से हम गुजर रहे हैं उसमें विचार अथवा प्रचार की उतनी अपेक्षा नहीं है, जितनी व्यवहार की । अतः हम ऐसे लोगों को चुनना हैं और उनसे काम लेना हैं, जो गाँवों में बैठे और अपने जीवन के आदर्श द्वारा जनता का नेतृत्व कर सकें । इस प्रकार के व्यक्तियों को हम बिना प्रशिक्षण के पर्याप्त मात्रा में नियोजित नहीं कर सकते ।

अब हमें यह विचारना है कि समाजशिक्षा तथा समाजसेवा के क्षेत्र में मुख्यतः किस प्रकार के कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है ? इंडियन ऐडल्ट एजुकेशन एसोसियेशन (Indian Adult Education Association) द्वारा प्रकाशित “ट्रेनिंग के प्रकार आफ सोशल एजुकेशन वर्कर्स” (Training of Social Education Workers) नामक ग्रंथ में निम्न प्रकार के कार्यकर्त्ताओं का निर्देश किया गया है:—

१. संगठनकर्त्ता अथवा व्यवस्थापक ।
२. ग्राम स्तर पर समाजशिक्षा का संगठन करनेवाला ।
३. समाजशिक्षा-केन्द्रों का प्रथम-स्तर-का शिक्षक ।
४. समाजशिक्षा-केन्द्रों का उच्चतर-स्तर-का शिक्षक ।
५. छात्र एवं स्वयंसेवक ।
६. समाजसेवा-शिविर-व्यवस्थापक ।
७. बहुमुख ग्रामस्तर-कार्यकर्त्ता (Multipurpose Village Level Worker) अथवा समाज-केन्द्रों का संचालक ।

८. ग्रामीण युवक कल्याण - व्यवस्थापक (Youth Welfare Organiser) ।

सम्भवतः विश्लेषण तथा वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से उपर्युक्त कोटि-विभाजन भले ही उपादेय हो, किन्तु सुविधा तथा सरलता की दृष्टि से हम समाजशिक्षा तथा समाजसेवा के क्षेत्र के कार्य करनेवालों को मुख्यतः दो कोटियों में विभक्त कर सकते हैं:—

(१) व्यवस्थापक अथवा संगठनकर्त्ता (Organiser or Administrator) और

(२) कार्यकर्त्ता (Worker-cum-Teacher) ।

ये दोनों प्रकार के समाजसेवी वृत्तनिक भी हो सकते हैं और अवैतनिक भी । हमने केन्द्रों के शिक्षक को अलग कोटि में इसलिए विभाजित नहीं किया है, कि हमारा यह विश्वास है कि प्रत्येक कार्यकर्त्ता में वयस्कों को शिक्षित करने और उन्हें साक्षरता प्रदान करने की योग्यता होनी चाहिए । मान लीजिए चार-पाँच गाँवों में समाजशिक्षा का कार्य संचालित करना है । यदि सब गाँवों के लिए एक संगठनकर्त्ता और व्यवस्थापक हो, और उसके अतिरिक्त प्रत्येक गाँव में अलग-अलग कार्यकर्त्ता हों, तो इस प्रकार की व्यवस्था सरल भी है और बोधगम्य भी; किन्तु यदि यह कहा जाय कि प्रत्येक गाँव में केन्द्र-शिक्षक के अतिरिक्त एक संगठनकर्त्ता भी हो, तो न केवल पेचीदापन आयगा, अपितु यह व्यवस्था लट्ठड़ और व्यवसाय भी होगी ।

मान लिया कि कार्यकर्त्ताओं और व्यवस्थापकों के लिए प्रशिक्षण अनिवार्य है, तो प्रशिक्षण की अवधि क्या होनी चाहिए ? समाजशिक्षा तथा समाजसेवा के क्षेत्र में अनुभव रखनेवाले विशेषज्ञों का इसमें प्रायः एकमत प्रशिक्षण की है कि प्रशिक्षण की कोई भी अवधि तीन महीने से कम की नहीं होनी चाहिए, क्योंकि इससे कम में समाजशिक्षा का सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक ज्ञान सन्तोषजनक रूप से नहीं दिया जा सकता । यह बात हम सामान्य नियम के रूप में स्वीकार करते हैं । किन्तु हमारे देश के सामने जितनी व्यापक समस्याएँ हैं और उनके लिए जितने अधिक व्यक्तियों के सहयोग की आवश्यकता है,—इन बातों को ध्यान में रखते हुए हमें मानना होगा कि परिस्थिति-विशेष में, और विशेष प्रकार के व्यक्तियों के लिए, तीन महीने से कम का प्रशिक्षण यदि उपादेय नहीं, तो अगत्या

अनिवार्य अवश्य होगा। उदाहरणतः समाजशिक्षा की प्रायः जितनी योजनाएँ इस समय चालू हैं, उनमें हम स्कूलों के अध्यापकों का सहयोग चाहते हैं, और वस्तुतः इनके सहयोग के बिना कोई भी योजना व्यापक रूप में कार्यान्वित हो भी नहीं सकती। अब यदि अनुल्लघनीय नियम बना दिया जाय कि प्रशिक्षण की अवधि किसी भी दशा में तीन महीने से कम की नहीं हो सकती, तो इतनी लम्बी अवधि के लिए अध्यापकों का अपने स्कूल से अनुपस्थित होना, और वह भी बहुत बड़ी संख्या में, किस प्रकार सम्भव होगा? यदि एक महीने अथवा उससे कम का प्रशिक्षण हो, तब तो बिना किसी को स्थानापन्न बनाए भी काम चल सकता है। तात्पर्य यह, कि ऐसे अध्यापकों के लिए तीन महीने से कम के प्रशिक्षण का विधान करना ही होगा। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अध्यापक होंगे जो पहले से ही समाज-शिक्षा की योजना में सक्रिय भाग ले रहे हों और जिनका शिक्षणसंबन्धी प्रशिक्षण ऐसा रहा हो जिसमें समाजशिक्षा के व्यावहारिक प्रयोग को महत्त्व दिया गया हो; उदाहरणतः बुनियादी प्रशिक्षणशालाओं से निकले हुए स्नातक। उनके लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि तीन महीने का प्रशिक्षण दिया जाय, क्योंकि अल्पतरकालीन प्रशिक्षण से भी उनका लक्ष्य पूरा हो जायगा।

एक यह भी बात है कि हमारे प्रशिक्षण की योजना इतनी व्यापक होनी चाहिए कि उससे ऐसे लोग भी लाभ उठा सकें जो स्वयं-सेवक, केन्द्र-संचालक, संगठनकर्ता अथवा शिक्षा-अल्पकालीन व्यवस्थापक न भी हों, किन्तु जिन्हें समाज के प्रति प्रशिक्षण की स्वाभाविक आकर्षण हो। ऐसे के लिए एक महीने उपादेयता अथवा उससे कम का भी प्रशिक्षण और शिदिर-जीवन उपयोगी हो सकता है। एक और बहुत बड़ा जन-समुदाय जिसके लिए अल्पतरकालीन प्रशिक्षण की अनिवार्यता है, वह है स्कूल-कालेजों का छात्र-समूह। छात्रों को हम लम्बी छुट्टियों में ही प्रशिक्षण दे सकते हैं, और स्कूलों की छुट्टियाँ तो प्रायः एक डेढ़ महीने से ज्यादा कभी नहीं होती, और कालेजों की छुट्टियाँ भी अधिक से अधिक दो-ढाई महीने की होती हैं। इन छात्रों को छात्र-जीवन के साथ-साथ समाजशिक्षा का व्यावहारिक प्रशिक्षण आवश्यक है; किन्तु यह संभव नहीं है कि इन्हें स्कूलों तथा कालेजों से अलग कर कम से कम तीन महीने के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय। अनुभव से यह सिद्ध है कि

छात्रों ने अलकालीन प्रशिक्षण से भी ठोस लाभ उठाया है। इंडियन ऐडल्ट एडुकेशन एसोसियेशन द्वारा प्रकाशित 'ट्रेनिंग ऑफ सोशल एडुकेशन वर्कर्स' में उन्नीस संस्थाओं^१ के प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त एम० सी० नानावत्ती की पुस्तक "ट्रेनिंग ऑफ सोशल एडुकेशन" में कुछ चुने हुए पाठ्यक्रमों का विस्तृत निर्देश किया गया है। इन सबों को ध्यान में रखते हुए एक महीने, तीन महीने तथा एक वर्ष के पाठ्यक्रमों की रूपरेखाएं तैयार की गई हैं जो अगले परिच्छेद में दी जा रही हैं।^२

१. (१) Community Project Administration, Planning Commission, Govt. of India. (२) Delhi State Adult Education, Association. (३) Maharashtra Regional Social Education Committee. (४) Social Education Officer, Poona District. (५) Bombay City Social Education Committee. (६) Education Department, Government of Madras. (७) District Education Officer, Guntur (North). (८) Social Education Department, Travancore Cochin. (९) Vishwabharati Shantiniketan, Social Science Department. (१०) Social Education Department Bihar. (११) Janta College (Udaipur). (१२) Vidyapith, Mysore. (१३) Rajasthan Vishwa Vidyapith, Udaipur. (१४) Social Education League, Bombay. (१५) Tata School of Social Science, Bombay. (१६) University of Patna, Social Science Dept. (१७) University of Baroda, Faculty of Social Work (१८) Delhi School of Social Work, Delhi University (१९) Government Extension Training Centre, Antre.

२. हिन्दुस्तानी तालीमी मंत्र से प्रकाशित 'A Picture and Programme of Adult Education' में तीन वर्षों का जो पाठ्यक्रम दिया हुआ है उसे भी ध्यान में रखा गया है।



परिच्छेद पन्द्रह^१

खण्ड दो

एक मास वा पन्द्रह दिनों का प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम बौद्धिक

१. समाजशिक्षा के सिद्धांत, समाजशिक्षा का इतिहास, दूसरे देशों में समाजशिक्षा का महत्त्व, अपने देश में चलनेवाली समाजशिक्षा की विभिन्न योजनाएँ तथा उनकी प्रगति। इस दिशा में संयुक्त-राष्ट्र-संघ की देन, भारत की समाजसेवा तथा समाजशिक्षा संबंधी संस्थाओं, साहित्य तथा उनकी प्रगति का साधारण ज्ञान।
२. समाजसेवा के विभिन्न पहलू।
३. अभिनय, संगीत-नृत्य, कला-प्रधान तथा मनोरंजन-प्रधान कार्यक्रमों का समाजशिक्षा में स्थान।
४. सरकारी महकमों तथा उनके कार्यों का ज्ञान। उनके साहाय्य तथा सहयोग से जन-समाज की योजनाओं को कार्यान्वित करने की विधि।
५. वयस्कों के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम का पूरा ज्ञान। तद्विषयक विभिन्न विषयों का स्वाध्याय तथा उनका आलेख।
६. मनोविज्ञान—व्यक्ति, समूह, वयस्क मनोविज्ञान। वयस्क शिक्षण-पद्धति।
१. इस परिच्छेद से संबंधित ग्रन्थों के लिए देखिए परिशिष्ट—“साहित्य-संकेत”।

७. गाँवों की आर्थिक समस्याओं का ज्ञान । उद्योग—मुख्यतः घरेलू उद्योगों का ज्ञान । आधुनिक यांत्रिक तथा वैज्ञानिक युग में ग्रामोद्योग की उपादेयता—विशेषतः भारत की दृष्टि से । साथ-साथ खेती, पशुपालन, मधुमक्खी-पालन, चर्खा, तालगुड—उद्योगों का सामान्य ज्ञान । चर्खा और खादी के आर्थिक और नैतिक आधार ।
८. भारतीय आकर-साहित्य तथा उसके विषयों का और कथाओं का सामान्य ज्ञान ।
९. सामान्य नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र और समाज-शास्त्र का ज्ञान ।
१०. प्राथमिक विज्ञान का ज्ञान ।
११. शरीर-शास्त्र, स्वास्थ्य-विज्ञान तथा भोजन-विज्ञान का साधारण ज्ञान । प्राथमिक चिकित्सा आदि का सामान्य ज्ञान ।
१२. समाजशिक्षा के उपयोग में आनेवाली विभिन्न रजिस्ट्रों, फार्मों तथा उनके आलेखों का विस्तृत ज्ञान ।
१३. सूतिका-गृह-सेवा, शिशुपालन, पाक-विज्ञान तथा अन्यान्य महिलोपयोगी विषयों का ज्ञान—विशेषतः महिला-कार्यकर्त्रियों के लिए ।

व्यावहारिक कार्यक्रम

१. स्वास्थ्य तथा चिकित्सा के लिए—
 - (क) खाईदार पाखाना बनाना ।
 - (ख) सोख गड्ढे बनाना ।
 - (ग) सोख पेशाबखाना ।
 - (घ) खाद-गड्ढा ।
 - (ङ) कुएँ की सफाई तथा उनमें कीटाणु-नाशक दवाएँ डालना ।
 - (च) व्यक्तिगत तथा सामूहिक सफाई ।
 - (छ) रोग-सेवा तथा रोग-चिकित्सा ।
 - (ज) खेल तथा व्यायामशाला-संचालन ।
२. साक्षरता के लिए —
 - (क) पुस्तकालय की व्यवस्था ।
 - (ख) अभ्यास-पाठ देना ।
 - (ग) वाचनालय-प्रबन्ध, समाचार-संग्रह तथा प्रसार ।

(घ) साक्षरता-वर्ग का संगठन तथा संचालन (इन वर्गों में बाल तथा वयस्क सभी लिये जायँ, किंतु यथामाध्य दोनों के लिए अलग व्यवस्था की जाय) ।

(ङ) हाट तथा मेले आदि में प्रचार का प्रदर्शन ।

(च) प्रदर्शनियों का आयोजन ।

३. आर्थिक स्वावलम्बन के लिए—

(क) कताई ।

(ख) कमर-कर्घे तथा आसामी-कर्घे पर बुनाई का अभ्यास ।

(ग) साबुनसाजी ।

(घ) मुर्गी-पालन ।

(ङ) ताल-गुड ।

(च) मधुमक्खी-पालन ।

(छ) रेशम के कीड़े का पालन तथा अन्य घरेलू धन्ये जिनका चुनाव स्थान तथा अवसर पर निर्भर रहेगा ।

(ज) ईधन तथा शीघ्र फल देनेवाले पेड़ों का लगाना ।

(झ) भेड़ और बकरी का पालन ।

४. सांस्कृतिक विकास के लिए—

(क) प्रार्थना का अभ्यास ।

(ख) प्रभातफेरी करना ।

(ग) सांस्कृतिक प्रदर्शन (संगीत, वाद्य, नृत्य, अभिनय, लोकगीत आदि) ।

(घ) गाँवों में सामूहिक भोजन की व्यवस्था ।

(ङ) कथा-वाचन ।

(च) सभाओं में भाषण देना ।

५. सहयोग-समिति और सहयोग-भंडार का संगठन और संचालन । गाँवों की विशिष्ट उपजों के संबंध में सहयोग, क्रय-विक्रय का प्रबंध ।

६. ग्राम-पंचायत तथा उसकी विभिन्न समितियों का संगठन तथा संचालन ।

७. गाँवों के लिए वार्षिक योजनाएँ बनाना तथा उन्हें कार्यान्वित करना ।

८. ग्रामीण आँकड़ों को इकट्ठा करना—चार्ट, चित्र आदि की व्यवस्था करना ।

परिच्छेद पन्द्रह

खण्ड तीन

समाजशिक्षा और समाजसेवा का प्रशिक्षण

त्रैमासिक प्रमाणपत्र का पाठ्यक्रम^१

Certificate in Social Education (C.S.E.)

संक्षिप्त रूपरेखा

प्रथम भाग : सैद्धान्तिक (Theoretical)

पूर्णांक.....३००

पत्र-संख्या १—खंड (१) समाजशास्त्र (Sociology) के सिद्धांत तथा समाज-शिक्षा के प्रतिपाद्य विषय ।

खंड (२) समाज-शिक्षा का इतिहास ।

पत्र-संख्या २—खंड (१) शिक्षण-मनोविज्ञान ।

खंड (२) समाज-शिक्षा की प्रणालियाँ (Methods) ।

पत्र-संख्या ३—खंड (१) समाज-शिक्षा और समाज-सेवा का संगठन तथा व्यवस्था ।

खंड (२) स्वास्थ्य-शिक्षा ।

१ यह पाठ्यक्रम निदर्शनमात्र है । आवश्यक परिवर्तन परिवर्धन अपेक्षित होगा ।

त्र-संख्या ४—खंड (१) कृषि और गृह-उद्योग या घरेलू धंधे (Cottage Industries) ।

खंड (२) ग्रामीण अर्थशास्त्र (Rural Economics) और ग्राम-परिगणन (Rural Survey) ।

त्र-संख्या ५—खंड (१) श्रव्य-दृश्य-शिक्षा (Audio-Visual Education)
खंड (२) लोक-साहित्य और लोक-कला ।

त्र-संख्या ६—ग्रामपंचायत, सहकार अथवा सहयोग-संस्थाएँ (Co-operatives), सामुदायिक विकास-योजना (Community Project), पंचवर्षीय योजना ।

त्र-संख्या ७—सामान्य जानकारी (General Information) ।
(मौखिक) (Viva voce)

द्वितीय भाग : व्यावहारिक (Practical) पूर्णंक.....२००
* * * *

विवरण

प्रथमभाग : सैद्धान्तिक (Theoretical)^१

त्र संख्या १—खंड (१) समाजशास्त्र के सिद्धांत तथा समाजशिक्षा का विषय

(१) व्यक्ति और समाज की शिक्षा ।

(२) सामाजिक संस्था (Social Institution) ।

(३) समाज-शिक्षा की नवीन धारणा ।

(४) सामाज-शिक्षा के उद्देश्य ।

(५) समाज-शिक्षा और विधिविहित शिक्षा (Formal Education) ।

(६) प्रसार-शिक्षा के सिद्धांत ।

(७) समाज-शिक्षा और समाज-सेवा का व्यापक कार्यक्रम ।

१ पूर्ण अंक ३००, जिसमें २५ अंक मौखिक के लिए, और शेष २७५ अंक उपर्युक्त छः पत्रों के ग्यारह विषयों पर समान रूप से बँटे होंगे उत्तीर्णता के लिए अंक-व्यवस्था:—प्रथम श्रेणी ६०% या अधिक

द्वितीय श्रेणी ४५% ” ”

तृतीय श्रेणी ३३% ” ”

पत्र-संख्या १—खंड (२) समाज-शिक्षा का इतिहास

- (१) प्राचीन भारत में समाजशिक्षा ।
- (२) भारत में स्वतंत्रता के पहले और बाद की सामाज-शिक्षा ।
- (३) प्रान्त में समाजशिक्षा की प्रगति ।
- (४) भारतीय-वयस्क-शिक्षा-परिषद् (Indian Adult Education Association) के संगठन और उसकी कार्य-प्रणाली का सामान्य ज्ञान ।
- (५) संयुक्त-राष्ट्र-शिक्षा-विज्ञान-संस्कृति-संघ (UNESCO) के कार्य ।
- (६) ससार के अन्य देशों में समाज-शिक्षा की विशिष्ट ज्ञानविधि (Approach) ।

पत्र-संख्या २—खंड (१) शिक्षण मनोविज्ञान

- (१) वैयक्तिक विभिन्नताएँ और समूह-मनोविज्ञान ।
- (२) अन्तर्वृत्तियाँ (Instincts) ।
- (३) भावनाएँ (Sentiments) और चरित्र-निर्माण ।
- (४) किशोर-मनोविज्ञान (Psychology of Adolescence) ।
- (५) शिक्षण-प्रक्रिया के साधन ।
- (६) जन्मगत संस्कार और वातावरण (Heredity and Environments) ।

पत्र-संख्या २—खंड (२) समाजशिक्षा की प्रणाली ।

- (१) वयस्कों को साक्षर बनाने की प्रणालियाँ ।
- (२) सामूहिक विचार-विमर्श ।
- (३) भाषण और वाद-विवाद ।
- (४) श्रव्य-दृश्य पद्धति ।
- (५) सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यों में भाग लेनेवालों को आकर्षित करने की विधियाँ ।
- (६) वयस्कों के लिए विशिष्ट पाठ्य-क्रम ।

पत्र-संख्या ३—खंड (१) समाज-शिक्षा और समाजसेवा का संगठन तथा व्यवस्था

- (१) ऋजु-सम्पर्क (Direct Contact) और व्यक्तिगत अभिरुचि (Personal Interest) ।

- (२) सामाजिक कार्यों के संगठन में ग्राम-पंचायत और सहयोगी संस्थाओं के माध्यम से जनतन्त्रवादी पद्धतियों (Democratic Methods) का प्रयोग ।
- (३) कर्त्तव्यगत नेतृत्व (Functional Leadership) का विकास ।
- (४) सांस्कृतिक संस्थाओं के संगठन की विधियाँ ।
- (५) बहिर्गत (Outdoor) मनोरंजन; यथा पर्यटन (Excursions and Trips) आदि के संगठन की विधियाँ ।
- (६) अभिलेखों (Records), रजिस्ट्रों, साप्ताहिक और त्रैमासिक विवरणों आदि का समुचित सरक्षण ।
- (७) सार्वजनिक कोष के उपयोग की विधि ।
- (८) समाज-शिक्षा-कार्य के मूल्यांकन की पद्धति ।

पत्र-संख्या ३—खंड (२) स्वास्थ्य शिक्षा

- (१) व्यक्तिगत और सार्वजनिक स्वास्थ्य ।
- (२) सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए जल और आहार के नियमों का प्राथमिक ज्ञान ।
- (३) संक्रामक रोगों का नियंत्रण; खाने-पीने की वस्तुओं को विधिवत् रखने के उपाय; स्वदेशी औषधियों का सामान्य ज्ञान; स्वच्छ और सुखमय जीवन; रोगों से बचाव और उनके उपचार के नियम; व्यायाम; स्वस्थ शरीर के लिए मनोरंजन और विश्राम ।

पत्र-संख्या ४—खंड (१) कृषि और गृह उद्योग (Agriculture and Cottage Industries)

- (१) बीजों का चुनाव ।
- (२) खाद बनाने की क्रिया और उसका उपयोग ।
- (३) साग-सब्जी की बाड़ियाँ लगाना ।
- (४) दुग्धशालाओं के सिद्धांत और ढंग ।
- (५) सहकारी कृषि के सिद्धांत ।
- (६) गृहोद्योगों का ज्ञान ।

पत्र-संख्या ४—खंड (२) ग्रामीण अर्थव्यवस्था और ग्रामपरिगणन
(Rural Economics and Rural Survey)

- (१) गाँवों की आर्थिक समस्याएँ ।

(२) गाँवों का ऋण-भार, इसके कारण और निराकरण के उपाय ।

(३) सहकारिता-आन्दोलन ।

(४) भूमि का खण्डीकरण ।

(५) विभिन्न ऋतुओं में बेकारी ।

(६) अतिरिक्त व्यवसाय ।

(७) भूमि की बन्दोबस्ती ।

(८) गाँवों का सर्वेक्षण Rural Survey) ।

पत्र-संख्या ५—खंड (१) श्रव्य-दृश्य शिक्षा

(१) नाट्यकला का सामान्य इतिहास ।

(२) नाटक—शिक्षा का शक्तिशाली माध्यम ।

(३) लोक रंग-मंच ।

(४) गाँवों, पाठशालाओं और कालेजों में नाट्याभिनय ।

(५) नाट्यकला का ज्ञान ।

(६) नाटक, चौपाल, छायाभिनय (Shadow-play),

पुतली नाट्य (Puppetry), नृत्य, लोकगीत और लोकप्रदर्शन
(Pageantry) का संक्षिप्त अध्ययन ।

(७) प्रवचन (Talk), वादविवाद (Debate), कहानी-
कला (Story-telling), प्रश्नोत्तर (Dialogue) और
संभाषण (Conversation) की कलाएँ ।

(८) समाज-शिक्षा में “माइक्रोफोन”, “ग्रामोफोन”, “रेडियो”, “रिकार्डर”, “चित्र”, “मैजिक-लैण्डर्न”, “फिल्म”, “फिल्मस्ट्रिप” इत्यादि
का महत्त्व ।

(९) श्रव्य-दृश्य-शिक्षा में पुस्तकालयों का स्थान ।

पत्र-संख्या ५—खंड २ लोक-साहित्य

(१) स्थानीय भाषा का शब्दकाव्य ।

(२) स्थानीय परम्पराएँ और प्रथाएँ ।

(३) कथाओं, भजनों, कीर्तनों, लोकगीतों, लोक-कथाओं का संग्रह ।

(४) स्थानीय कलाओं का अध्ययन ।

पत्र-संख्या ६—ग्राम पंचायत, सहकारी संस्था और सामुदायिक विकास-
योजना

(१) नागरिक अधिकार; वयस्क मताधिकार ।

- (२) ग्राम पंचायत बनाने का ढंग तथा कानून, ग्रामपंचायत के अधिकारियों का कर्तव्य ।
- (३) सहकारी संस्थाओं के संगठन की विधि; सहकारिता-कानून ।
- (४) सामुदायिक विकास-योजना की स्थापना और उसका इतिहास; भारत में उसकी प्रगति ।
- (५) समाज-शिक्षा के संगठनकर्ताओं का कर्तव्य और उनकी व्यवस्था ।

पत्र-संख्या ७—मौखिक (Viva-Voce) : सामान्य जानकारी

- (१) ग्राम-जीवन—आचरण और प्रथाएँ ।
- (२) अंध-विश्वास और अंध-अविश्वास ।
- (३) सामुदायिक जीवन में धर्म का स्थान ।
- (४) धार्मिक त्योहार; उनका उद्गम, महत्त्व तथा परिष्कार ।
- (५) भारतीय संविधान के मूल सिद्धान्त ।
- (६) राष्ट्रसंघ (U. N. O.) का गठन और काम ।

द्वितीय भाग : व्यावहारिक (Practical)

- (१) सामूहिक जीवन का अभ्यास ।
- (२) गाँव का सर्वेक्षण (Village Survey) ।
- (३) लोकगीतों तथा स्थानीय कथाओं आदि का संग्रह ।
- (४) साक्षरता-वर्गों में शिक्षण का व्यावहारिक अभ्यास ।
- (५) चार्ट, तस्वीर आदि सहायक वस्तुओं का बनाना ।
- (६) श्रव्य-दृश्य यंत्रों के प्रयोग का प्रशिक्षण ।
- (७) सांस्कृतिक संस्थाओं में भाग लेने और उन्हें संगठित करने का प्रशिक्षण ।
- (८) ग्रामोफोन, रेडियो, प्रक्षेपक (Projector) आदि को प्रयुक्त करने का अभ्यास तथा कम-से-कम एक वाद्य-यंत्र बजाने का अभ्यास ।
- (९) प्रदर्शनी (Exhibition), संग्रहालय, (Museums), मेला आदि का संगठन तथा स्थानीय कला (Craft) की वस्तुओं का संग्रह ।
- (१०) उत्सवों तथा त्योहारों का संगठन ।
- (११) पुस्तकालयों तथा वाचनालयों का संगठन ।

(१२) शारीरिक कार्यक्रमों का संगठन ।

(१३) निम्नलिखित विषयों का प्रशिक्षण:—

- (अ) नागरिक आन्दोलन (Civic Campaigns) ।
- (आ) सफाई आन्दोलन (Sanitation Campaigns) ।
- (इ) कुओं की सफाई (Disinfection of Wells)
- (ई) कम्पोस्ट (खाद) बनाना ।
- (उ) सोख गड्ढे (Soak Pits) बनाना ।
- (ऊ) खाई पाखाने, सोखपाखाने, पेशाबखाने आदि का निर्माण ।
- (ओ) औषधि का वितरण ।
- (औ) सूई और पाछ देने की विधि ।
- (अं) खेती-बारी का अभ्यास और भिन्न ऋतुओं में साग-सब्जी, फूल-पत्ती उपजाने का अभ्यास ।
- (अः) कताई का अभ्यास ।
- (क) किन्ही घरेलू धंधों का प्राथमिक अभ्यास ।^२

२ व्यावहारिक विषयों को सुविधानुसार चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है और प्रत्येक वर्ग के लिए पूर्णांक ५० हो ।



परिच्छेद पन्द्रह

खण्ड चार

समाज-शिक्षा और समाजसेवा का प्रशिक्षण

एकवार्षिक उपाधि का (Diploma) पाठ्यक्रम^१

Diploma in Social Education (Dip.S.E.)

संक्षिप्त रूपरेखा

प्रथम भाग : सैद्धान्तिक (Theoretical)

पूर्णांक.....६००

पत्र-संख्या १—खंड (१) समाजशास्त्र (Sociology) के सिद्धान्त तथा समाजशिक्षा के प्रतिपाद्य विषय ।

खंड (२) समाज-शिक्षा का इतिहास ।

पत्र-संख्या २—खंड (१) शिक्षण-मनोविज्ञान ।

खंड (२) समाज-शिक्षा की प्रणालियाँ (Methods) ।

पत्र-संख्या ३—खंड (१) समाज-शिक्षा और समाज-सेवा का संगठन तथा व्यवस्था ।

खंड (२) स्वास्थ्य-शिक्षा ।

^१ पाठ्यक्रम निदर्शनमात्र है । त्रैमासिक प्रमाणपत्र के पाठ्यक्रम से कुछ अधिक विस्तृत है ।

पत्र-संख्या ४—खंड (१) कृषि और गृह-उद्योग या घरेलू धंधे (Cottage Industries) ।

खंड (२) ग्रामीण अर्थशास्त्र (Rural Economics) तथा ग्राम-परिगणन (Rural Survey) ।

पत्र-संख्या ५—खंड (१) श्रव्य-दृश्य-शिक्षा (Audio-Visual Education) ।

खंड (२) लोक-साहित्य और लोक-कला ।

पत्र-संख्या ६— ग्राम-पंचायत, सहकार अथवा सहयोग संस्थाएँ (Co-operatives), सामुदायिक विकास-योजना (Community Project), पंचवर्षीय योजना ।

पत्र-संख्या ७— सामान्य जानकारी (General Information) (मौखिक)

द्वितीय भाग : व्यावहारिक (Practical)

पूर्णांक.....४००

* * * *

विवरण

प्रथम भाग : सैद्धान्तिक (Theoretical)^२

पत्र-संख्या १—खंड १. समाजशास्त्र (Sociology) के सिद्धान्त तथा समाजशिक्षा के प्रतिपाद्य विषय

(१) व्यक्ति और समाज ।

(२) समाज का विकास ।

(३) सामाजिक संस्थाएँ—उनका विकास; यथा धर्म, परिवार, विवाह आदि संस्थाएँ ।

२—(१) पूर्ण अंक ६००, जिसमें ५० अंक मौखिक के लिए; ५५० अंक उपर्युक्त छः पत्रों के ग्यारह विषयों पर समान रूप से बँटे होंगे ।

उत्तीर्णता के लिए अंक-व्यवस्था:—प्रथम श्रेणी ६०% या अधिक

द्वितीय श्रेणी ४५%

तृतीय श्रेणी ३३%

(२) पठनीय ग्रन्थों की सूची ग्रन्थ के अन्त में देखिए ।

- (४) समाजशिक्षा की धारणा (Concept), उसमें साधरता का स्थान ।
- (५) समाजशिक्षा और समाजसेवा का व्यापक कार्यक्रम ।
- (६) सामाजिक कार्य (Social work), समाज-सेवा और समाज-शिक्षा का विश्लेषण ।
- (७) समाज-शिक्षा और विधिविहित शिक्षा (Formal Education) ।
- (८) सामाजिक प्रथाएँ, सामाजिक अनुसन्धान कार्य और सामाजिक सर्वेक्षण (Survey) ।
- (९) समाजशिक्षा में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का स्थान ।
- (१०) समाजशिक्षा में प्रसार-कार्य (Extension) और उसके सिद्धान्त ।
- (११) ग्रामीण-समाज का विकास और उसकी रूप-रेखा । ग्रामीण-समाज में स्थानीय संस्थाओं का संगठन और उनके कार्य ।

पत्र-संख्या १—खंड २ समाजशिक्षा का इतिहास

- (१) प्राचीन भारत में समाज-शिक्षा की गति-विधि ।
- (२) भारत में स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात् की समाजशिक्षा की रूपरेखा ।
- (३) राज्यों में समाज-शिक्षा की प्रगति ।
- (४) भारत सरकार के शिक्षा-मन्त्रालय की केन्द्रीय पारामर्शदातृ-समिति (Central Advisory Board) का गठन और कार्य प्रणाली ।
- (५) भारतीय वयस्क शिक्षा-परिषद् (Indian Adult Education Association) और भारतीय समाज-कार्य परिषद् (Indian Conference of Social Work) के संगठन तथा कार्यप्रणाली का साधारण ज्ञान ।
- (६) संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, चीन, स्वीडन, डेनमार्क, रूस और न्यूजीलैंड आदि देशों की वयस्कशिक्षा की विशेषताएँ ।
- (७) युनेस्को (UNESCO) के अन्तर्गत जनशिक्षा-अनुविभाग (Fundamental Education Section) के संबंध में विशेष जानकारी ।

पत्र-संख्या २—खंड १ शिक्षण-मनोविज्ञान

- (१) सीखने की विधियाँ (Methods of Learning),
चेतना (Sensation), कौतूहल (Curiosity), अभि-
रुचि (Interest), स्मरण-शक्ति (Memory), अनु-
करण (Imitation) और अनुबन्धन (Association)
आदि विषयों सहित मनोविज्ञान का सामान्य बोध ।
- (२) अंतर्बृत्ति (Instincts) तथा आवेग (Emotions) ।
- (३) वंशपरम्परा (Heredity) तथा वातावरण ।
- (४) बालको की आवश्यकताएँ और उनकी पूर्ति ।
- (५) भावनाएँ (Sentiments) और चरित्र-निर्माण ।
- (६) व्यक्तित्व (Personality) का विकास ।
- (७) समूह (Group) मनोविज्ञान ।
- (८) पूर्व-यौवन (Pre-adolescence) और किशोर-काल
(Adolescence) का मनोविज्ञान ।
- (९) व्यक्तित्व की सामान्य परीक्षा-विधियाँ (Common
Personality Tests) ।
- (१०) बुद्धि-परीक्षा (Intelligence Tests) ।

पत्र-संख्या २—खंड २. समाज-शिक्षा की प्रणाली (Methods)

(अ) शिशु-संबंधी :—

- (१) क्रियाशीलता, कर्मप्रणाली (Activity Method) ।
- (२) योजना-प्रणाली (Project Method) ।
- (३) इन्द्रिय-ज्ञान सवधी (Sensuary) और मान्टेसरी
(Montessori) प्रणाली का ढंग ।
- (४) गिलौने और खेल इत्यादि द्वारा शिक्षण-प्रणाली
(Kindergarten Method and Playway
Method) ।
- (५) बच्चों के शिक्षण में श्रव्यदृश्य यंत्रों, साधनों तथा मनो-
रंजन का स्थान ।
- (६) वर्ग संचालन (Class Management) और अभिरुचि-
संरक्षण (Maintaining Interest of Partici-
pants) की प्रणाली ।

(आ) वयस्क संबंधी :—

- (१) समूहगत विचारविमर्श (Group discussion) प्रणाली ।
- (२) भाषण और वादविवाद प्रणाली ।
- (३) श्रव्यदृश्य प्रणाली ।
- (४) उपयोगी क्रिया और योजना (Useful Activity and Project) की प्रणाली ।
- (५) सामाजिक तथा सांस्कृतिक कामों में भाग लेनेवालों को आकर्षित करने का ढंग ।
- (६) वयस्कों को साक्षर बनाने की प्रणाली के साधन:—
 - (१) ऋजु प्रणाली (Direct Method) ।
 - (२) वर्णमालागत प्रणाली (Phonic Method or Alphabet Method) ।
 - (३) शब्द-से-वाक्य (Word to Sentence) प्रणाली ।
 - (४) वाक्य प्रणाली (Sentence Method) ।
 - (५) चित्र प्रणाली ।
 - (६) लबाख (Laubach) और दूसरे विशेषज्ञों की प्रणालियाँ ।
 - (७) खेल द्वारा अक्षरबोध ।
 - (८) कृष्णपट्ट (Black-board) का व्यवहार ।
 - (९) चाट और मानचित्र (Diagrams) का व्यवहार ।
 - (१०) पाठ्यपुस्तक, रीडिंग-कार्ड, समाचारपृष्ठ (Newsheets) का व्यवहार ।
 - (११) भित्ति चार्ट (Wall charts) तथा एकपृष्ठ-पुस्तकों (Single-page books) का व्यवहार ।
 - (१२) फिल्म, फिल्मस्ट्रिप, स्लाइड और रिकार्ड का व्यवहार ।

पत्र-संख्या ३—खंड १. समाज-शिक्षा तथा समाजसेवा का संगठन और व्यवस्था : सामान्य :—

- (१) विशेषाभिरुचि-केन्द्रित (Interest-centred) समुदाय (Group) तथा सूचक (Informant), अन्तरंग एवं स्वेच्छाकृत (Voluntary) समुदायों का संगठन ।

- (२) योजनागत (Project-centred) के साथ-साथ व्यक्तिगत (Individual centred) कार्य—व्यक्ति की अभिरुचि, वृद्धि और सम्पर्क—संस्थापन ।
- (३) सामाजिक क्रियाकलाप (Social activities) के संगठन में ग्राम-पंचायत, सहकारी संस्था आदि विभिन्न गणतंत्रवादी माध्यमों का प्रयोग ।
- (४) भाग लेनेवालों (Participants) में कर्मविशेषगत नेतृत्व (Functional leadership) का विकास—स्थानीय नेताओं (Indigenous leaders) का कार्य ।
- (५) वार्ता (Talks), भाषण, वादविवाद, प्रश्नोत्तरी, प्रदर्शनी आदि द्वारा शिक्षण-कार्यक्रमों का संगठन ।
- (६) अखाड़ा, खेलकूद, स्पोर्ट, ड्रिल आदि का सांस्कृतिक या मनोरंजन-प्रधान दृष्टि से संगठन ।
- (७) शिक्षणात्मक यात्राओं (Outdoor excursions and picnics), शिविरों (Camps) आदि का संगठन ।
- (८) श्रव्य-दृश्य माध्यमों (Audio-visual Aids) का समाज-शिक्षा में उपयोग और श्रवण-गोष्ठियों (Listening groups) का संगठन ।
- (९) युवकसंघ (Youth Club), बालक संघ (Children's Association), पितृसंघ (Parent's Association), नारी संघ (Women's Club) इत्यादि का संगठन ।
- (१०) विशेष कार्यगत दलों (Functional groups) का संगठन—व्यस्क कार्यकर्ताओं का कार्य—स्थानीय नेताओं का कार्य—भाग लेनेवालों का कार्य ।
- (११) अवकाश के समय की प्रगतियों का संगठन ।
- (१२) त्योहार, मेला, प्रदर्शनी आदि का संगठन ।
- (१३) पुस्तकालय, वाचनालय, नाटक आदि संयुक्त समाज-केन्द्रों (Community Centres) का संगठन ।
- (१४) सहकारिता के आधार पर स्थानीय कला-कौशल (Crafts) और गृहउद्योगों का संगठन ।

व्यवस्था संबंधी:—

- (१) व्यवस्था सबधी रेकर्ड, यथा—रजिस्टर, कार्रवाई बही, साप्ताहिक रिपोर्ट, गणना-बही आदि रखने का ढग ।
- (२) जनकोष (Public funds) का संचालन, सामान की खरीद, हिमाब-किताब का रखना और जांच ।
- (३) प्रचार—योजना और कार्यक्रम का प्रचार कैसे हो । प्रचार के साधनो, यथा—पोस्टर, हैडबिल, फिल्म आदि का व्यवहार ।
- (४) समाजशिक्षा के काम के मूल्यांकन की विधियाँ ।
- (५) चार्ट और गणना पत्रकों (Statistical tables) को तैयार करना ।
- (६) समाजशिक्षा के कार्यों का निरीक्षण ।

पत्र-संख्या ३—खंड २. स्वास्थ्य शिक्षा (Health Education)

- (१) व्यक्तिगत और सामाजिक स्वास्थ्य के नियमों का पालन और ज्ञान ।
- (२) व्यक्तिगत स्वास्थ्य विज्ञान ।
- (३) सामाजिक स्वास्थ्य-विज्ञान ।
- (४) पथ्य ज्ञान ।
- (५) अवरोधक उपाय (Preventive measures)—सूई या पाछ देना, हवा का यातनिर्यात (Ventilation), कूड़ा आदि फेंकना ।
- (६) महामारियों (Epidemics) को रोकना ।
- (७) पीने का पानी ।
- (८) साधारण रोगों का उपचार और अवरोध (Prevention) ।
- (९) व्यायाम, मनोरजन और विश्राम ।
- (१०) भोजन तथा पानी (Food and drink) को विशुद्ध रखने के उपाय ।
- (११) मातृत्व (Maternity) और शिशु-कल्याण ।
- (१२) परिवार योजना (Family planning) ।
- (१३) असमर्थ व्यक्तियों की देखरेख ।

- (१४) प्रचलित और स्वदेशी औषधियों का प्रयोग और ज्ञान ।
- (१५) भारत की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का अध्ययन ।
- (१६) भारत तथा विदेशों में स्वास्थ्य के नियमों तथा स्वास्थ्य-सेवादलों की व्यवस्था की रूपरेखा ।
- (१७) शरीर-विज्ञान का अध्ययन,—विशेषतया निम्नविषयों का—
श्वासप्रणाली (Respiratory system), पाचन-प्रणाली,
रक्तसंचालन प्रणाली और मलत्यागन प्रणाली (Excretory system) ।

पत्र-संख्या ४—खंड १. कृषि और गृह-उद्योग (Agriculture and Cottage Industries)

(अ) मिट्टी:—

- (१) मिट्टी की बनावट (Structure and Texture) :—
मिट्टी को उन्नत और मुलायम बनाने में उद्भिज्ज पदार्थों (Organic matters) का महत्त्व ।
- (२) मिट्टी की व्यवस्था (Soil management) :—
क. उर्वराशक्ति की रक्षा (Fertility management) ।
ख. हरी खाद ।
ग. फसलों को चक्रक ढग (Rotation) से उपजाना ।
घ. बजर-भूमि की खेती ।
ङ. जमीन की सिंचाई तथा उसका प्रबन्ध ।
च. जमीन की जुताई तथा अन्य कृषिगत सुधारों का उपयोग ।
- (३) भूमि की सुरक्षा (Conservation) ।
- (४) भूमि की उर्वरा शक्ति, और उपज तथा पशुधन और जनता के स्वास्थ्य से इसका संबंध

(आ) फसल:—

- (१) प्रधान फसलों को उपजाने की विभिन्न अवस्थाएँ (Phases) ।
- (२) बीज की ब्यारियाँ (Seed beds) तैयार करना ।
- (३) बीजों के प्रकार ।
- (४) बीजों का चुनाव—उनका संचयन तथा उपचार ।

- (५) पौधों की रोपाई (Seed planting) ।
- (६) कर्षण (Cultivation) विधियाँ ।
- (७) फसल के कीड़ों तथा रोगों का नियंत्रण ।
- (८) फसल तैयार कर काटना (Harvesting) ।
- (९) फसलों की कटाई सबंधी अनुसंधान ।
- (१०) संचयन (Storing) ।
- (११) फसलों के उपजाने का लागत-खर्च ।
- (१२) कृषिपरक उद्योग ।
- (१३) सहकारी (Co-operative) खेती ।

(इ) घास-पात (Weeds):—

- (१) उसका नियंत्रण ।
- (२) चारागाह तथा उनका सुधार ।

(ई) उद्यान-विद्या :—

- (१) तरकारियों की खेती ।
- (२) अनाज की खेती ।
- (३) उद्यानों और पार्कों का निर्माण ।

(उ) वन-विद्या (Forestry):—

- (१) राष्ट्रिय अर्थ-योजना में वन का महत्त्व ।

(ऊ) पशु पालन:—

- (१) पशुपालन की ग्रामीण अर्थनीति (Rural Economy) से संबंध ।
- (२) समाज (Community) तथा कार्यक्षेत्र में पशु-धन के विकास की संभावनाओं का अध्ययन ।
- (३) चारा, दाना-खल्ली—इनके नियम—चारे तथा चारागाहों के वर्तमान साधनों का अध्ययन और उनके सुधार की संभावनाएँ ।
- (४) कृत्रिम प्रजनन (Insemination) तथा पशु-धन की वृद्धि में इसका महत्त्व ।
- (५) दुग्धशाला-निर्माण (Dairying) के सिद्धान्त तथा तरीके ।
- (६) पशुओं के प्रचलित रोग तथा उनका निदान ।
- (७) विभिन्न प्रकार के पशुओं के संतुलित भोजन ।

(ए) कुटीर-उद्योग (Cottage Industries):—

निम्नलिखित विषयों का ज्ञान और कुशलता:—

- (१) कताई ।
- (२) बुनाई ।
- (३) मधु-पालन (Bee-Keeping) ।
- (४) रगाई ।
- (५) चित्रकारी (Painting) ।
- (६) मुर्गी-मुर्गी पालन (Poultry) ।
- (७) नेवार और फीता बनाना ।
- (८) साबुन बनाना ।
- (९) कागज बनाना ।
- (१०) फलों की सुरक्षा और उनका मुरब्बा अँचार आदि बनाना (Fruit Preservation) ।
- (११) इसी प्रकार के अन्य उद्योग-धंधे ।

पत्र-संख्या ४—खंड २. ग्रामीण अर्थव्यवस्था और ग्राम-सर्वेक्षण (Rural Economics and Rural Survey):—

- (१) भारतीय गाँवों की हालत । ग्रामीण और उसकी समस्याएँ ।
- (२) ग्रामीण अर्थव्यवस्था—भूमि, जनसंख्या, रहन-सहन का स्तर ।
- (३) भूमि-संबंधी अर्थनीति (Land Economics)—भूमि की बन्दोबस्ती और तत्संबंधी कानून ।
- (४) ऋण संबंधी कानून ।
- (५) कृषकों की बेकारी तथा आंशिक बेकारी के कारणों का अध्ययन तथा निवारण ।
- (६) पंचवर्षीय योजना — गाँवों के संबंध की विभिन्न योजनाएँ ।
- (७) सहकारिता के सिद्धान्त—उपकी अर्थनीति तथा महत्त्व ।
- (८) विभिन्न सहकारी कार्यक्रम ।
- (९) सहकारी कृषि तथा बहुधर्मी (Multipurpose) सहकारी संस्थाएँ ।

- (१०) जनसंख्या की समस्या ।
- (११) भूमि के टुकड़ों में विभाजन ।
- (१२) भूदान आन्दोलन का अर्थ तथा महत्त्व ।
- (१४) ग्राम-सर्वेक्षण या ग्रामाकण ।

पत्र-संख्या ५—खंड १. श्रव्यदृश्य शिक्षा :—

- (१) नाटक—शिक्षण का शक्तिशाली माध्यम ।
- (२) ग्रामीण और शहर के क्षेत्रों में शिक्षा के लिए नाटक का उपयोग ।
- (३) संसार में नाट्यकला के विकास की रूपरेखा ।
- (४) वैदिक युग से आज तक भारत में नाट्यकला के विकास का विस्तृत इतिहास ।
- (५) निम्न नाट्यों की विशेषता :- १. बंगाली, २. पारसी, ३. मराठी, ४. गुजराती, और ५. हिन्दी ।
- (६) नाटक में रस : ललितकलाओं में नाटक का स्थान ।
- (७) स्कूलों, गांवों और कालिजों में नाटक का अभिनय ।
- (८) नाट्याभिनय कला (Techniques) का ध्यान और उसकी प्रशिक्षा ।
- (९) निम्न विषयों का मगठन तथा विशेषताओं का आलोच-
नात्मक अध्ययन :—
१. नाटक, २. चौपाल, ३. छाया-चित्र (Shadow play),
४. गुड़ियों का खेल (Puppets), ५. नृत्य, ६. गान,
७. ग्रामीण-लोकगीत, ८. बिरहागीत (Ballad), ९.
नृत्यगानमय अभिनय (Ballet), १०. संगीत-नाटक
(Opera), ११. प्रदर्शन (Pageantry), १२. स्वाग
(Pantomime) ।
- (१०) वार्ता (talk), अलंकार (Rhetoric), वादविवाद,
कहानी-कथन, स्वरताल, प्रश्नोत्तरी और बातचीत करने
की कलाओं का ज्ञान ।
- (११) माइक्रोफोन, ग्रामोफोन, रेडियो, रिकार्ड करने की मशीन
(Recorder), चित्रांकन, प्रक्षेपक (Epidiascope),

मॅजिक-लैन्टर्न (Magic lantern), फिल्मस्ट्रिप, फिल्म आदि यंत्रों और साधनों का समाजशिक्षा में स्थान और महत्त्व ।

(१२) दीवाल-पट (Wall-board) बुलेटिन, स्तंभ-बोर्ड (Pillar-board) समाचार-पृष्ठ आदि का उपयोग ।

(१३) श्रव्य-दृश्य-शिक्षा में पुस्तकालय का स्थान ।

(१४) चार्ट, मानचित्र आदि का शिक्षण के साधन के रूप में स्थान ।

लोक-साहित्य (Folk Literature) और लोक-कला (Folk Art) :—

(१) स्थानीय भाषा, स्थानीय परम्परा, रिवाजों और त्योहारों का अध्ययन और आलोचना ।

(२) जनप्रिय कथाओं, भजनों, कीर्तनों और लोकगीतों का आलोचनात्मक अध्ययन और संग्रह ।

(३) लोक नाटक और उसके देशी साधनों और वाद्य-यंत्रों का ज्ञान ।

(४) जनसाधारण के लिए लोक - साहित्य तैयार करने की विधि—लेखन - कला—समुचित शब्दावली का प्रयोग—प्रतिपाद्य विषय—शैली—प्रेस के लिए प्रतिलिपि तैयार करना इत्यादि ।

(५) मुद्रणकला, सामान्य आकार-प्रकार (Make-up) प्रूफरीडिंग, टाइपविज्ञान, चित्र मजाने और सुझाव देने आदि के विषयों का सामान्य ज्ञान ।

(६) स्थानीय कलाओं और हस्तकौशल, देशी चित्रांकणों (Indigenous painting) आदि को उन्नत करने और उनके उपयोग करने का अध्ययन ।

पत्र-संख्या ६—ग्रामपंचायत, सहकारी-संस्था और सामूहिक विकास योजनाएँ:—

(१) नागरिक अधिकार ।

(२) राज्य और समाज ।

- (३) प्राचीन भारत में ग्राम-पंचायत ।
- (४) ग्राम-पंचायतों की वर्तमान पद्धति और राज्यों के “ग्राम पंचायत-राज-कानून” की प्रमुख बातें ।
- (५) ग्रामपंचायतों को संगठित करने का विधि ।
- (६) राज्य (State) और केन्द्रीय सरकार से ग्रामपंचायत का संबंध ।
- (७) ग्रामपंचायत और उसके अधिकारियों का कार्यभार ।
- (८) भारतीय संविधान के मूलभूत सिद्धांत ।
- (९) सहकारिता और उसका महत्त्व ।
- (१०) सहकारी समितियों के संघटन का ढग ।
- (११) सहकारी-कानून ।
- (१२) समुदाय-योजना-क्षेत्रों (Community projects) और राष्ट्रिय-प्रसार-सेवा खंडों (National Extension Services Blocks) की संगठन-व्यवस्था ।
- (१३) समुदाय-योजना की व्यवस्था में सामज-शिक्षा के संगठन-कर्त्ताओं का कर्त्तव्य ।

पत्र-संख्या ७—सामान्य सूचना (General Information)

(केवल मौखिक) :—

- (१) ग्रामीण जीवन, संस्कृति और रीति-रिवाज ।
- (२) अधिविश्वास और अंध-अविश्वास (Superstition and taboos) ।
- (३) सामूहिक जीवन में धर्म का स्थान ।
- (४) धर्मों की तुलना तथा आधारभूत समता की धारणा ।
- (५) धार्मिक त्योहार—उनका मौलिक महत्त्व—उनका नवीन रूप से संगठन—उनका सांस्कृतिक महत्त्व ।
- (६) भारत के विभिन्न राज्यों और विश्व के विभिन्न देशों की परस्पर अन्योन्याश्रयता का महत्त्व ।
- (७) संयुक्त राष्ट्रसंघ (U. N. O.) और इसकी विभिन्न शाखाओं का काम ।
- (८) धर्म और धर्मान्धता (Religiosity) ।

- (९) सरकारी संस्थाएँ, राज्य और म्युनिसिपैलिटी ।
- (१०) स्थानीय संगठन (Local Bodies) और ग्राम पंचायत ।
- (११) भारतीय संविधान की रूप-रेखा ।
- (१२) वयस्क मताधिकार का महत्व और अर्थ ।
- (१३) भारत तथा संसार की प्रमुख सामाजिक संस्थाएँ (Social Organizations) ।
- (१४) भारत की प्रमुख उद्योग-संस्थाएँ (Industrial Concerns) ।
- (१५) पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विकास योजनाओं (Development Projects) का महत्व ।
- (१६) भारतीय तथा अन्तराष्ट्रीय विषयों का आधुनिक सामान्य ज्ञान ।

द्वितीय भाग : व्यावहारिक (Practical)

(१) सामूहिक जीवन का अभ्यास ।

(२) व्यावहारिक प्रयोग (Field work) :—

(१) शिक्षा सबधी :—

(अ) गाँव का सर्वेक्षण (Survey) ।

(आ) साक्षरता वर्गों में व्यावहारिक शिक्षा (Lessons) ।

(इ) साक्षरता केन्द्रों, वाचनालय, पुस्तकालय इत्यादि का संगठन ।

(ई) पढाई के सामान बनाना :— चार्ट, दिवालों पर चिपकाने वाले समाचार पत्र (Wall News sheets), ग्राफ, पोस्टर, आँकड़ों के मानचित्र (Pratical statistics), मानचित्र (फ्लैट नक्शा, रिलीफ नक्शा, प्रोजेक्शन नक्शा, ग्लोब चित्र) ।

(२) श्रव्यदृश्य यंत्रों के संचालन की विधि का अभ्यास और सांस्कृतिक कार्यक्रम :—

(अ) निम्न विषयों में भाग लेना एवं उनका अभ्यास :—
वार्ता (Talk), कवितापाठ (Rhetoric), वाद-विवाद कहानी-कथन ।

ध्वनि-संगीत ।

वाद्य-संगीत ।

(आ) नाटक खेलना और तत्संबंधी कार्यों में भाग लेना:—
नाटक, चौपाल, गाना, लोक-गीत, छाया-चित्र (Shadow-play), गुड़ियों का खेल, नृत्य, बिरहा गीत (Ballad), संगीत नाटक (Opera), कौतुक (Pageantry), स्वांग (Pantomime), देहाती नाट्य (Indigenous stagecraft) ।

(३) यांत्रिक प्रयाग:—

निम्न यंत्रों की चालन-विधि सीखना:—माइक्रोफोन, ग्रामोफोन, रेडियो रेकार्डर, एपिडायस्कोप (Epidiascope), लैन्टर्न स्लाइड, फिल्म-स्ट्रिप और फिल्म ।

(४) संगठन:—

(अ) प्रदर्शनी, मेला और संग्रहालय का संगठन ।

(आ) सामाजिक, सामयिक, राष्ट्रीय और धार्मिक त्योहारों तथा वर्षगांठों का संगठन ।

(इ) कवि-सम्मेलन, मोशायरा इत्यादि का आयोजन ।

(५) प्रेस रिपोर्टों तथा बुलेटिनों की कतरनों का संग्रह करना ।

(६) लोक-साहित्य की रचना और उसका अध्ययन:—

(अ) समाज-सेवकों के लिए ।

(आ) नव-साक्षरों (Neo-literates) के लिए ।

(इ) जनप्रिय कथाओं, भजन, कीर्तन, बिरहा, लोरिकाई और चाँचर आदि का संग्रह करना ।

(७) लेखन कला:—

(१) शब्दावली (Vocabulary), विषय (Contents), शैली (Style) तथा प्रेस के लिए प्रतिलिपि तैयार करना ।

(८) शारीरिक व्यायामों तथा खेलकूदों (Physical activities) का संगठन और शिक्षण:—

भीतरी खेल (Indoor games), बाहरी खेल (Out-

door games) प्रकृति-प्रेम, परिभ्रमण (Hiking), शिविर-जीवन, साइकिल चढ़ना, आखाड़ा और देशी खेल ।

(९) ग्रामीण सस्थाओं के सचालन में सहयोग :—

समाज-केन्द्र (Community Centres), पचायत, युवक-संघ, बाल-क्रीड़ा-स्थल (Children's Park) इत्यादि ।

(१०) कला-कौशल का प्रदर्शन और व्यावसायिक (Vocational) शिक्षा का संगठन :—

(अ) सहकारिता (Co-operatives) का व्यावहारिक अध्ययन ।

(आ) निम्न में से किन्हीं दो का व्यावसायिक प्रदर्शन (Vocational demonstration) तथा शिक्षण :—
बुनाई, (Knitting), सूत कटाई, आसनी बनाई, फीता बनाई, घरेलू चिड़ियों का पालन (Poultry), पाकविज्ञान, उद्यान-कला, वनस्पति-शास्त्र, रेशम के कीड़े पालना, साबुन बनाना इत्यादि ।

(११) व्यावहारिक कृषि का कार्यक्रम ।

(१२) समाज सेवा :—

नागरिक आन्दोलन (Civic Campaign), सफाई (Sanitation) कार्यक्रम, गंदे मुहल्लों की सफाई, खाद बनाना, सोखखाई (Soakpits), मूत्रालय, खाई (Trench) पाखाने इत्यादि का निर्माण तथा प्रचार ।

(१३) मनुष्यों और पशुओं के लिए औषधि का वितरण तथा स्वास्थ्य-केन्द्रों का प्रदर्शन ।

(१४) सूई देने तथा पाछ देने की विधियों के प्रथम उपचार की व्यवस्था ।

(१५) स्वास्थ्य-परीक्षा की व्यवस्था तथा इस संबंध में रजिस्टर और बही-खाते रखना ।

(१६) फसल की समस्याएं तथा फसल-संबंधी प्रयोग :—धान, पटसन, आलू, ईख, तरकारियों और दलहन की फसलों के संबंध में निम्नलिखित बातें सीखनी होंगी :—

(अ) अच्छे बीज कैसे चुने और प्राप्त किये जायें ।

(आ) प्रधान फसलों के लिए उपयुक्त भूमि और मिट्टी का चुनाव किस प्रकार किया जाय ।

- (इ) प्रधान फसलों (Major crops) के रोपने के हेतु भूमि को किस प्रकार जोत-चास करके तैयार किया जाय ।
- (ई) प्रधान फसलों के बीज बोने तथा बीज के पौधे लगाने की ठीक विधि ।
- (उ) खेत कंसे| निराए (Weeding) और कमाए (Inter culture) जायें ।
- (ऊ) फसलों के रोगों और कीड़ों का प्रशमन ।
- (ए) विभिन्न फसलों में हरी खाद देना ।
- (ऐ) प्रधान फसलों को उचित ढंग से सींचना ।
- (ओ) प्रधान फसलों को काटना और तैयार करना ।
- (औ) फसलों को सुरक्षित रखना ।
- (अ) शुद्ध-बीज तैयार करना ।
- (अः) विभिन्न फसलों को एक अच्छी चक्रवृत्ति (Rotation system) ढंग से उपजाने की योजना ।
- (क) अच्छे बीज, खाद और उन्नत ढंग की कार्यप्रणाली का परिणाम दर्शाने के लिए फसलों की प्रभावपूर्ण प्रदर्शनी (Effective demonstration) का आयोजन ।
- (ख) नई रीति से खेत जोतने और अन्य समुन्नत पद्धतियों की प्रभावपूर्ण प्रदर्शनी का आयोजन ।
- (ग) जमीन के कटाव (Erosion) के निवारण के उपाय



परिच्छेद सोलह

शिक्षणसंस्थाओं द्वारा समाजसेवा-कार्य

Institutional Approach to Social Education

इस परिच्छेद में समाजशिक्षा और समाजसेवा के उस विशिष्ट रूप की चर्चा की जायगी जिसे हम प्राथमिक पाठशालाओं, माध्यमिक तथा उच्च-वर्गीय विद्यालयों और विश्वविद्यालयान्तर्गत कालेजों के शिक्षा-संस्थाओं द्वारा चरितार्थ होते देखना चाहते हैं। कुछ प्रान्त ऐसे हैं जिनमें स्कूल की पढ़ाई के विशेष स्तरों में माध्यम से समाजशिक्षा और उसके व्यावहारिक प्रयोगों को अनिवार्य विषय बना दिया गया है। उदाहरणतः बिहार के बोर्ड आफ सेकेन्डरी एडुकेशन (Board of Secondary Education)की अंतिम अर्थात् मैट्रिक्युलेशन की समकक्ष परीक्षा देनेवाले सभी परीक्षार्थियों के लिए सामाजिक अध्ययन के रूप में समाजशिक्षा (Social Studies) एक अनिवार्य विषय है। जिन राज्यों ने समाजशिक्षा को स्कूलों के पाठ्यक्रम में अनिवार्य पत्र के रूप में सामाविष्ट किया है, उन्होंने वस्तुतः शिक्षा-प्रणाली की वर्तमान परिस्थिति में एक क्रान्तिकारी कदम उठाया है, और यह आशा की जाती है कि शीघ्र ही सभी राज्यों में विद्यालयों की सभी कक्षाओं के लिए समाजशिक्षा अनिवार्य विषय बना दी जायगी।

किन्तु समाजशिक्षा अनिवार्य विषय हो या न हो, प्रत्येक शिक्षणसंस्था में समाजशिक्षा और समाजसेवा का ज्ञान तथा व्यावहारिक प्रयोग अनिवार्य होना चाहिए। कोई भी स्कूल हो, उसे आसपास के गाँवों और गाँवों और मुहल्लों को अपना एक अंग मान लेना चाहिए और प्रारम्भ से ही छात्रों को ऐसी प्रेरणा मिलनी चाहिए कि वे उन गाँवों और मुहल्लों के नैतिक तथा सामाजिक जीवन को उन्नत बनाने में हाथ बँटावे और लोगों की विपत्तियों और मुसीबतों में सहारा बनें।

अनुमान कीजिए कि प्राइमरी वर्ग का कोई छात्र अपने घर से स्कूल चला। वह यह देखता है कि सड़क पर एक घोड़े की नाल अथवा शीशे का टुकड़ा पड़ा हुआ है। उसका कर्त्तव्य होता है कि वह उस घोड़े की नाल अथवा शीशे के टुकड़े को उठाकर सड़क से अलग उपयुक्त स्थान में गाड़ दे, ताकि किसी मोटर के 'टायर' में 'पम्पचर' न हो और न किसी असावधान राही का पैर कट जाय और उसे भयानक कष्ट में पड़ना पड़े। प्रत्येक शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह छोटे-से-छोटे बच्चे को भी जागरूक सामाजिक चेतना के साथ काम करने का न केवल ज्ञान दे, बल्कि उसका अभ्यास कराए। दूसरा उदाहरण लीजिए। हाईस्कूल के दो-तीन छात्र कुछ बस्तियों से होकर अपने स्कूल चले जा रहे हैं। रास्ते में उन्हें एक करुणक्रन्दन की आर्तध्वनि सुनाई पड़ती है। उन्हें पता चलता है कि गाँव में हैजा फैल गया है और किसी बूढ़ी असहाय माँ का एकमात्र जवान कमानेवाला बेटा हैजे का शिकार हो गया है तथा सिर्फ कुछ घंटों का मेहमान है। छात्रों का यह कर्त्तव्य होता है कि तत्काल उस रोगी को गाँववालों और कुल-परिवार की सहायता से, अथवा स्वयं किसी न किसी तरह, जल्दी से जल्दी, पास के अस्पताल में पहुँचा दें ताकि उसकी उचित सेवा-शुश्रूषा हो; इसके बाद वे अपने मुख्य अध्यापक से मिलकर जनस्वास्थ्य-विभाग के स्थानीय अधिकारी के सहयोग से अविलम्ब कुओं और तालाबों की सफाई, औषधि-वितरण आदि की व्यवस्था करें। स्कूल के प्रत्येक छात्र को इतना व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिए कि इस प्रकार की आकस्मिक परिस्थितियों में लोगों की सहायता और रक्षा कर सके तथा स्वयं भी इस प्रकार के उपायों का अवलंबन करें जिनसे सेवा-शुश्रूषा करते हुए भी संक्रामक रोगों के आक्रमण से बच सकें।

किसी जिले या सबडिवीजन में एक कालेज है। आए दिन भारतवर्ष में आकस्मिक दुर्घटनाएँ हुआ करती ही हैं; अकस्मात् इस जिले में भी भयंकर बाढ़ आ गई है। सैकड़ों-हजारों वर्गमील की फसले पानी आकस्मिक में डूब गई हैं, घरों में पानी घुम गया है, कुओं के पानी परिस्थितियों बाढ़ के पानी से दूषित हो गये हैं, मिट्टी के मकान धराशायी होने लगे हैं, भयंकर विपत्तिले सर्प अशरण होकर जमीन से निकल पड़े हैं और पानी के बहाव से बचने के लिए पेड़ों से लिपट गये हैं,—घरों और घरों के छप्परो में भी घुम गए हैं, मजदूर मजदूरी न मिलने के कारण भूखो मरने लगे हैं, लोग यातायात के अभाव में सड़क में पड़कर त्राहि-त्राहि करने लगे हैं। और इधर ! कालेज में शांति तथा अविचल गति से वेदो और उपनिषदों का ब्रह्मज्ञान सिखाया जा रहा है; शंकर, कांट (Kant) और हेगेल (Hegel) के दर्शनशास्त्र पढ़ाए जा रहे हैं, तुरा यह कि समाज-विज्ञान और समाजशास्त्र के भी गहन-मे-गहन सिद्धांतों के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विश्लेषण हो रहे हैं। अध्यापक-वर्ग अपने सूटबूट में—कुछ पान खाये हुए, कुछ सिगरेट पीते हुए—‘पुष्करपलाशवत्’ निर्लिप्त मुद्रा में क्लासों में आ-जा रहे हैं; और छात्र तथा छात्राएँ बगुले के पख जैसे स्वच्छ तथा इन्द्रधनुष जैसे सतरंगी वस्त्रों में विभूषित होकर घर से कालेज आते हैं और जाते हैं, तथा शाम को सिनेमा भी देखते हैं। क्या यह दृश्य बर्बरता का दृश्य नहीं ? क्या ये छात्र तथा अध्यापक मानव की भूमिका में दानव नहीं ? क्या इनके हृदय पत्थर के नहीं ? क्या ये फिर भी मांस-शोणित के पुतले कहे जायेंगे ? यदि इन्द्र भगवान प्रलयकालीन वर्षा के द्वारा अध्यापकों और छात्रों सहित उक्त कालेज को क्षणभर में जलमग्न कर देते, और सब-के-सब पाताल में विलीन हो जाते, तो शायद कुछ भी अनुचित न होता ! हर एक कालेज के अध्यापकों और छात्रों को सर्वदा इसके लिए तैयार रहना चाहिए कि वे इस प्रकार की आकस्मिक परिस्थितियों में पढ़ना-लिखना छोड़कर मानवता की सहायता में निकल पड़ें, स्थानीय अधिकारियों और सार्वजनिक-संस्थाओं के सहयोग से अनाज बाँटने, दवा-दारू का प्रबन्ध करने, पानी को दोष रहित करने के तरीके अपनाने आदि सेवा (Relief) कार्यों में लग जायँ

किन्तु समाजशिक्षा अनिवार्य विषय हो या न हो, प्रत्येक शिक्षणसंस्था में समाजशिक्षा और समाजसेवा का ज्ञान तथा व्यावहारिक प्रयोग अनिवार्य होना चाहिए। कोई भी स्कूल हो, उसे आसपास के गाँवों और गाँवों और मुहल्लों को अपना एक अंग मान लेना मुहल्ले में चाहिए और प्रारम्भ से ही छात्रों को ऐसी प्रेरणा मिलनी सेवाकार्य : चाहिए कि वे उन गाँवों और मुहल्लों के नैतिक तथा कुछ निदर्शन सामाजिक जीवन को उन्नत बनाने में हाथ बँटावे और लोगों की विपत्तियों और मुसीबतों में सहारा बनें।

अनुमान कीजिए कि प्राइमरी वर्ग का कोई छात्र अपने घर से स्कूल चला। वह यह देखता है कि सड़क पर एक घोड़े की नाल अथवा शीशे का टुकड़ा पड़ा हुआ है। उसका कर्तव्य होता है कि वह उस घोड़े की नाल अथवा शीशे के टुकड़े को उठाकर सड़क से अलग उपयुक्त स्थान में गाड़ दे, ताकि किसी मोटर के 'टायर' में 'पम्पचर' न हो और न किसी असावधान राही का पैर कट जाय और उसे भयानक कष्ट में पड़ना पड़े। प्रत्येक शिक्षक का कर्तव्य है कि वह छोटे-से-छोटे बच्चे को भी जागरूक सामाजिक चेतना के साथ काम करने का न केवल ज्ञान दे, बल्कि उसका अभ्यास कराए। दूसरा उदाहरण लीजिए। हाईस्कूल के दो-तीन छात्र कुछ बस्तियों से होकर अपने स्कूल चले जा रहे हैं। रास्ते में उन्हें एक करुणक्रन्दन की आर्तध्वनि सुनाई पड़ती है। उन्हें पता चलता है कि गाँव में हैजा फैल गया है और किसी बूढ़ी असहाय माँ का एकमात्र जवान कमानेवाला बेटा हैजे का शिकार हो गया है तथा सिर्फ कुछ घंटों का मेहमान है। छात्रों का यह कर्तव्य होता है कि तत्काल उस रोगी को गाँववालों और कुल-परिवार की सहायता से, अथवा स्वयं किसी न किसी तरह, जल्दी से जल्दी, पास के अस्पताल में पहुँचा दें ताकि उसकी उचित सेवा-शुश्रूषा हो; इसके बाद वे अपने मुख्य अध्यापक से मिलकर जनस्वास्थ्य-विभाग के स्थानीय अधिकारी के सहयोग से अविलम्ब कुओं और तालाबों की सफाई, औषधि-वितरण आदि की व्यवस्था करें। स्कूल के प्रत्येक छात्र को इतना व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिए कि इस प्रकार की आकस्मिक परिस्थितियों में लोगों की सहायता और रक्षा कर सके तथा स्वयं भी इस प्रकार के उपायों का अवलंबन करें जिनसे सेवा-शुश्रूषा करते हुए भी संक्रामक रोगों के आक्रमण से बच सकें।

किसी जिले या सबडिवीजन में एक कालेज है। आए दिन भारतवर्ष में आकस्मिक दुर्घटनाएँ हुआ करती ही हैं; अकस्मात् इस जिले में भी भयंकर बाढ़ आ गई है। सैकड़ों-हजारों वर्गमील की फसले पानी आकस्मिक में डूब गई है, घरों में पानी घुम गया है, कुओं के पानी परिस्थितियाँ बाढ़ के पानी से दूषित हो गये हैं, मिट्टी के मकान धराशायी होने लगे हैं, भयंकर विपैले सर्प अशरण होकर जमीन से निकल पड़े हैं और पानी के बहाव से बचने के लिए पेड़ों से लिपट गये हैं—घरों और घरों के छप्परो में भी घुम गए हैं, मजदूर मजदूरी न मिलने के कारण भूखों मरने लगे हैं, लोग यातायात के अभाव में सड़क में पड़कर त्राहि-त्राहि करने लगे हैं। और इधर ! कालेज में शांति तथा अविचल गति से वेदों और उपनिषदों का ब्रह्मज्ञान सिखाया जा रहा है, शंकर, कांट (Kant) और हेगेल (Hegel) के दर्शनशास्त्र पढ़ाए जा रहे हैं; तुरा यह कि समाज-विज्ञान और समाजशास्त्र के भी गहन-से-गहन सिद्धांतों के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विश्लेषण हो रहे हैं। अध्यापक-वर्ग अपने सूटबूट में—कुछ पान खाये हुए, कुछ सिगरेट पीते हुए—‘पुष्करपलाशवत्’ निर्लिप्त मुद्रा में क्लासों में आ-जा रहे हैं; और छात्र तथा छात्राएँ बगुले के पख जैसे स्वच्छ तथा इन्द्रधनुष जैसे सतरंगी वस्त्रों में विभूषित होकर घर से कालेज आते हैं और जाते हैं, तथा शाम को सिनेमा भी देखते हैं। क्या यह दृश्य बर्बरता का दृश्य नहीं ? क्या ये छात्र तथा अध्यापक मानव की भूमिका में दानव नहीं ? क्या इनके हृदय पत्थर के नहीं ? क्या ये फिर भी मांस-शोणित के पुतले कहे जायेंगे ? यदि इन्द्र भगवान प्रलयकालीन वर्षा के द्वारा अध्यापकों और छात्रों सहित उक्त कालेज को क्षणभर में जलमग्न कर देते, और सब-के-सब पाताल में विलीन हो जाते, तो शायद कुछ भी अनुचित न होता ! हर एक कालेज के अध्यापकों और छात्रों को सर्वदा इसके लिए तैयार रहना चाहिए कि वे इस प्रकार की आकस्मिक परिस्थितियों में पढ़ना-लिखना छोड़कर मानवता की सहायता में निकल पड़ें, स्थानीय अधिकारियों और सार्वजनिक-संस्थाओं के सहयोग से अनाज बांटने, दवा-दारू का प्रबन्ध करने, पानी को दोष रहित करने के तरीके अपनाने आदि सेवा (Relief) कार्यों में लग जायँ

यह तो हुई आकस्मिक परिस्थितियों की चर्चा । किन्तु प्रत्येक छात्र और अध्यापक के जीवन की दैनिक चर्चा में भी समाज-शिक्षा और समाजसेवा के प्रयोगों का समावेश होना चाहिए, और संस्था दैनन्दिन तथा की ओर से उनकी योजना चलनी तथा उसकी देखरेख नियमित सेवाकार्य होनी चाहिए । नियमित कार्यक्रम के रूप में जिन कार्यों को अपनाया जा सकता है उनका कुछ निर्देश किया जा रहा है:—

(अ) गाँवों या मूहल्ले के शिक्षितों-अशिक्षितों, बच्चों-युवकों-बूढ़ों, नर-नारियों, पशुओं, खेतों, फसलों, व्यवसायों, उद्योगों आदि का सर्वेक्षण (survey) ।

(आ) उपर्युक्त सर्वेक्षण के आधार पर व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं को समझना, और उनके निराकरण के लिए लोगों के साथ मिलकर, और लोगों के सहयोग से, योजनाएँ बनाना तथा उन्हें कार्यान्वित करना ।

(इ) शिक्षण-संस्था के कमरों तथा अहातों की सफाई और समय-समय पर उनकी सजावट ।

(ई) स्थानीय पुस्तकालयों, वाचनालयों, अखाड़ों, संगीत-वाद्य-समितियों आदि का सम्यक् संगठन ।

(उ) सांस्कृतिक मनोरंजन के लिए लोक-रंगमंच के निर्माण में योगदान ।

(ऊ) प्रभातफेरी और गाँव तथा मूहल्ले की सामूहिक सफाई—सप्ताह में कम से कम एक बार ।

(ए) लोगों के मिलने-जुलने, विचार-विमर्श करने आदि के लिए समाज-भवन के निर्माण और स्थापना करने में साहाय्य-प्रदान ।

(ऐ) नियमित माक्षरता-वर्ग तथा समाज-शिक्षा-केन्द्र का संचालन ।

(ओ) समय-समय पर ऐसे समारोहों का आयोजन जिनके द्वारा सामाजिक चेतना में अभिवृद्धि तथा परिष्कृति हो ।

(औ) शिक्षण संस्थाओं में स्काउटों, गर्ल-गाइडों, एन० सी० सी० मदस्यों, किशोर-कुलों (Children's Clubs), तरुण सभों (Youth Clubs) आदि का संगठन और उनके द्वारा नियमित रूप से सेवाकार्य ।

(अ) गांव और मुहल्ले में सुरक्षा-दलों (Defence Volunteers Cops) के संगठन की प्रेरणा—आदि ।

(अ:) स्कूल आदि सार्वजनिक सस्थाओं की मरम्मत, यातायात की असुविधा को दूर करने के लिए सड़क का निर्माण, पुरानी सड़को का नवनिर्माण, कुओं की मरम्मत—आदि सार्वजनिक कल्याण की योजनाएँ तैयार करना और महीने, तीन महीने, छः महीने अथवा सालभर में पूर्व निश्चित प्रोग्राम के अनुसार उन्हें कार्यान्वित करना ।

नियमित सेवा-कार्य के अतिरिक्त वर्ष में कम से कम एक बार प्रत्येक स्कूल, गांव, नगर, सबडिवीजन, जिले और प्रान्त में बड़े समारोह के साथ 'शिक्षा-सप्ताह' का आयोजन होना चाहिए, और इस शिक्षा सप्ताह शिक्षा-सप्ताह में एक दिन—जिसे सभवतः केन्द्रीय सरकार की ओर से निश्चित किया जाता है—'समाजशिक्षा-दिवस' (Social Education Day) मनाया जाय । शिक्षा-सप्ताह में कौन-कौन-सी प्रगतियाँ होनी चाहिए, इनकी एक तालिका नीचे दी जा रही है, और प्रत्येक शिक्षा सस्था तथा अन्य प्रकार की सार्वजनिक संस्था का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह परिस्थिति तथा साधनों के अनुसार उन्हें कार्य-रूप में परिणत करे ।

(१) उद्घाटनोत्सव ।

(२) बौद्धिक:—

(क) निबंध-प्रतियोगिता ।

• (ख) भाषण तथा वाद-विवाद प्रतियोगिता ।

(३) उद्योग तथा हस्तकला सबधी:—

(क) चित्रकला-प्रतियोगिता ।

(ख) हस्तकला-प्रतियोगिताएँ (लकड़ी का काम, लोहे का काम, कताई और बुनाई आदि आदि) ।

(ग) सिलाई, कसीदा आदि की प्रतियोगिता—(विशेष कर छात्राओं के लिए)

(घ) खेती और फसल की प्रतियोगिताएँ ।

(ङ) गिल्प तथा उद्योग की प्रदर्शनी ।

- (४) शिक्षा-समस्याओं से संबंधित भाषण, निबंध, वाद-विवाद, सम्मिलित चर्चा (Symposium) आदि ।
- (५) सांस्कृतिक तथा मनोरजनात्मक :—
- (क) संगीत (मौखिक तथा वाद्य) ।
 - (ख) नृत्य (मुख्यतः छात्राओं के लिए—अभिभावकों की अनुमति आवश्यक है) ।
 - (ग) नाटक (Drama) ।
 - (घ) कवि-सम्मेलन और 'मोजायरा' ।
 - (ङ) छात्र-संसद (Students' Parliament) ।
 - (च) शिक्षणात्मक फिल्मों और स्लाइडों का प्रदर्शन ।
- (६) खेल-कूद और सामूहिक प्रदर्शन :—
- (क) विशेषवस्त्रो (Uniforms), विशेषपत्रनों (Badges or Insignia) में सामूहिक ड्रिल ।
 - (ख) १० सी० सी० तथा एन० सी० सी० पैरड ।
 - (ग) रकाउटों और गाइडों का सम्मेलन (Rally) ।
 - (घ) फुटबॉल आदि तथा देशी खेलों के मैच ।
- (७) समाज-कल्याण संबंधी प्रगतियाँ अथवा योजनाएँ :—
- (क) प्रतिदिन प्रातः प्रभातफेरी ।
 - (ख) साक्षरता-वर्गों की परीक्षाएँ और उनके आधार पर वयस्कों को पारितोषिक-वितरण ।
 - (ग) प्रतिदिन कुछ न कुछ व्यावहारिक सामाजिक सेवा के कार्य (Field work)—सामूहिक सफाई, कुएँ की सफाई, गली और सड़क की मरम्मत आदि ।
 - (घ) स्वाश्रयिता के कार्यक्रम—यथा विद्यालय-भवन की वार्षिक मरम्मत और सजावट, स्कूल के अहाते को घेरना, खाई-पाखानो, सोख-पेशाबखानों, खाद-गढों का निर्माण, पुष्पोद्यान अथवा पार्क को बनाना और सजाना आदि ।
 - (ङ) वृक्ष-रोपण—अच्छे-अच्छे बीज की तरकारियों और अनाजों को रोपना और उनका प्रचार ।

(च) स्वास्थ्य-प्रदर्शनी—इसमें स्वास्थ्य विभाग, म्युनिसिपैलिटी आदि का सहयोग होना चाहिए और स्वस्थतम बच्चों को पारितोषिक मिलना चाहिए ।

(छ) सप्ताह में किसी एक दिन कम-से-कम एक शाम का भोजन त्याग ('Miss a meal') और इसके फलस्वरूप जो भी अनाज की बचत हो उसे स्थानीय एम० डी० ओ० आदि अधिकारियों के पास जमा करना जिससे दुष्काल में काम आवे ।

(ज) खेती आदि के बीजों और यंत्रों की प्रदर्शनी (खेती-विभाग की सहायता से); अच्छी नरल के पशु-पक्षियों की प्रदर्शनी; मधुमक्खी-पालन; माबुन बनाने, चटाई तथा टोकरी बनाने आदि के आदर्श प्रयोगों की प्रदर्शनी ।

(झ) भाषणों, लेखों और समाचारपत्रों—सूचनाओं द्वारा प्रचार (जन-सम्पर्क विभाग की सहायता अपेक्षित होगी) ।

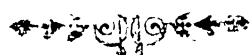
(ञ) सामूहिक प्रीति-भोज तथा प्रीति-यात्राएँ । (Picnics and Excursions) ।

(८) समाप्ति-समारोह :—इस अवसर पर आसपास के गाँवों की जनता और अभिभावकों की वृहत् सभा होनी चाहिए; इसका उद्घाटन तथा सभापतित्व कोई विशिष्ट जनप्रिय समाजसेवी व्यक्ति करे; इस अवसर पर भिन्न-भिन्न प्रतियोगिताओं के आधार पर छात्रों तथा साक्षरता-वर्ग में सफल होनेवाले वयस्कों को उचित पुरस्कार दिये जायँ ।

इस परिच्छेद को समाप्त करने के पहले हम दो बातों की ओर संकेत करेंगे । प्रथम तो यह कि शिक्षणसंस्थाओं द्वारा जो समाज-शिक्षा तथा समाजसेवा का कार्य हो, उसका निरीक्षण-परीक्षण बहुत विशिष्ट प्रश्न्य अच्छी तरह होना चाहिए; और जहाँ यह अनिवार्य विषय के रूप में नहीं हो, वहाँ अलग से प्रमाणपत्र (Certificate) देने की व्यवस्था होनी चाहिए । कालेजों में भी जबतक समाजशिक्षा तथा समाजसेवा पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से समाविष्ट न कर ली जाय, तबतक उसे ऐच्छिक अथवा अतिरिक्त (Optional

or Additional) विषय के रूप में मान्यता देनी चाहिए, और छात्र की प्रगति के परिणाम का विश्वविद्यालय के प्रमाणपत्र तथा उपाधिपत्र में विशिष्ट उल्लेख होना चाहिए । दूसरी बात यह कि युनिवर्सिटी तथा सरकार को यह भी चेष्टा करनी चाहिए कि सरकारी अथवा गैर-सरकारी नियुक्तियों के समय आवेदक के समाज-सेवा संबंधी रेकार्ड को ध्यान में रखा जाय; और यदि अन्य योग्यताएँ बराबर हों, तो समाजसेवा की विशिष्ट योग्यता पर विशिष्ट रूप से विचार किया जाय और नियुक्ति में समाजसेवी व्यक्ति को प्रथम (Preference) दिया जाय ।^१

-
१. लम्बी छुट्टियों में छात्रों द्वारा समाज-शिक्षा-शिविर का संगठन कैसा होना चाहिए, इस संबंध में स्वतंत्र रूप से अन्य परिच्छेद में विचार किया जायगा ।



परिच्छेद सत्रह प्रसार और प्रदर्शन

Extension & Demonstration

पिछले परिच्छेद में शिक्षण-संस्थाओं द्वारा समाजसेवा कार्य की जो रूपरेखा दी गई है उसका बहुत कुछ अंश 'प्रसार-कार्य' (Extension Work) के अन्तर्गत आ जाता है। किन्तु "प्रसार" एक प्रसार की ऐसा शब्द है जिसका कि पश्चिमीय देशों में अधिकाधिक व्याख्या प्रयोग हो रहा है, और यह एक प्रकार का पारिभाषिक शब्द बन गया है। अतः यह उचित होगा कि इसकी कुछ व्याख्या की जाय। समाजशिक्षा-क्षेत्र के एक विख्यात कार्यकर्त्ता डी० स्पेन्सर हैच (D. Spencer Hatch) के शब्दों में "विद्यालय, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय के अध्ययन-अध्यापन एवं अनुशीलन के फलस्वरूप हमें जो व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है उससे ऐसी ग्रामीण जनता को लाभान्वित करना जिसने मुख्यांश में पाठशाला की शिक्षा प्राप्त नहीं की है, प्रसार-कार्य का मुख्य उद्देश्य है।" प्रसार सेवा कार्य के द्वारा हम जनता के जीवन के स्तर को इस प्रकार उन्नत करने की चेष्टा करते हैं जिसमें लोगों के मकान और रहन-सहन में उन्नति हो, वे अपने सामाजिक तथा धार्मिक जीवन को उन्नत बनावें,

अपने स्वास्थ्य में सुधार करें, आर्थिक रूप से अपने को उन्नत करे और सभी दिशाओं में प्रगति के पथ पर आगे बढ़े” ।^१

इस प्रसार के कार्य के सिलसिले में हमारा सबसे पहला लक्ष्य यह होना चाहिए कि हम प्रत्येक गाँव में एक केन्द्रीय संगठन करें । यह कोई आवश्यक नहीं कि हम किसी नए संगठन या संस्था को जन्म दे । केन्द्रीय संगठन यदि किसी गाँव में पहले से ही पचायत स्थापित हो चुकी और समितियाँ हो तो हम उस पचायत को ही केन्द्रीय संस्था के रूप में संगठित करना चाहेंगे और उसके तत्वावधान में भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न समितियों का निर्माण करेंगे; — यथा शिक्षा-समिति, सहयोग-समिति, कृषि-सुधार-समिति, उद्योग-विकास-समिति, यातायात सुधार-समिति, सांस्कृतिक-मनोरंजन-समिति, महिला-समिति, बाल-समिति, सेवादल तथा रक्षादल, पुस्तकालय-समिति, विचार-गोष्ठी, कुरीति-निवारण-समिति, मादक-द्रव्य-निषेध-समिति, दुग्ध संग्रहाल (Dairy), संग्रहालय अथवा प्रदर्शनी समिति, कीर्तन-मंडल, संगीत-समिति, व्यायाम तथा खेल-कूद समिति, आदि । हमारी बात जो प्रसार-कार्य की सफलता के लिए हमें ध्यान में रखनी चाहिए वह यह है कि हम गाँववालों में इस प्रकार की चेतना उत्पन्न करनी चाहिए कि वे अपनी कमी तथा अभाव का तीव्रता से अनुभव करने लगे और उनके हृदय में इस प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो

१. “Taking the advantages of the practical knowledge resulting from college teaching and from research to the rural Indian villager, who may never have been in even a primary school, is our extension task and privilege....In general the extension service aims to foster and develop those lines of endeavour which make for better homes, better social and religious life, better health, better income and better rural living in every sense”. *D. Spencer Hatch*—*Toward Freedom From Want*, Oxford University Press, Bombay.

जाय कि वे जबतक इस कमी अथवा अभाव की पूर्ति नहीं करते तबतक मुखी नहीं हो सकेंगे और उनका गाँव विकास की दौड़ में पीछे पड़ा रहेगा। सच पूछिए तो 'अनुभूत अभाव' (Felt need) हमारी सभी योजना का आधार होना चाहिए। डॉ० हैच ने प्रसार-मेवा-कार्य को आकर्षक पम्प (Suction pump) की उपमा दी है।^२ आकर्षक पम्प हवा के सहारे किसी पदार्थ को अपनी ओर अंदर खींचता है; इसके विपरीत विकर्षक पम्प (Force pump) हवा के सहारे किसी पदार्थ को झोके से अपने से दूर बाहर फेंकता है। तात्पर्य यह कि गांववाले हमारे प्रसार-कार्य के आदर्शों और प्रयोगों को ग्रहण करने के लिए पहले से व्याकुल हो—ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करनी चाहिए। न कि ऐसा प्रतीत हो कि भूख हो या न हो, हम गले में जबर्दस्ती सुन्दर-से-सुन्दर और स्वादिष्ट पदार्थ ठूमते चले जाते हैं।

एक तीसरी बात जिसकी ओर हमारा ध्यान रहना चाहिए, वह यह है कि प्रसार-कार्य के कार्यकर्त्ताओं को गाँववालों के साथ इस तरह से हिलमिल जाना चाहिए कि उनमें किसी तरह का भेद-भाव न रहे।

सम्पर्क और सहकारिता इसके अतिरिक्त जो गाँव हमारा कार्यक्षेत्र रहेगा वहाँ भी हमें ऐसा वातावरण तैयार करना होगा कि लोग ऊँच-नीच, जात-पाँत और सम्प्रदाय, अमीर-गरीब आदि के कृत्रिम भेद-भावों को त्याग कर मानवता के सार्वभौम स्तर पर एक दूसरे से मिलजुल सकें। डॉ० हैच ने इस मेल-जोल और सम्पर्क को अंग्रेजी में Socialization कहा है। सम्पर्क और सहकारिता—ये दो ऐसे आधारभूत मिद्धान्त हैं जिनके बिना हमारा प्रसार-कार्य खोखला बना रहेगा।

प्रसार-कार्य की सफलता में चलते-फिरते पुस्तकालय और साप्ताहिक अथवा पाल्तिक पत्रिका (Bulletin) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जहाँ पुस्तकालय के द्वारा हम जनसाधारण के मानसिक स्तर को प्रसार कार्य के उन्नत और ज्ञान को विवृद्ध करेंगे, वहाँ साथ-ही-साथ सहायक साधन पत्रिका द्वारा उन सभी योजनाओं तथा आवश्यक सूचनाओं को हम जनता के सामने रखते चलेंगे जिनके द्वारा वह दिन-प्रतिदिन प्रगति के पथ पर अग्रसर होगी। प्रसार-कार्य के रचना-त्मक कार्यक्रम में वे सभी साधन और सभी उपाय सम्मिलित हैं जिनके द्वारा

अपने स्वास्थ्य में सुधार करें, आर्थिक रूप से अपने को उन्नत करे और सभी दिशाओं में प्रगति के पथ पर आगे बढ़े” ।^१

इस प्रसार के कार्य के सिलसिले में हमारा सबसे पहला लक्ष्य यह होना चाहिए कि हम प्रत्येक गाँव में एक केन्द्रीय संगठन करें। यह कोई आवश्यक नहीं कि हम किसी नए संगठन या संस्था को जन्म दें। केन्द्रीय संगठन यदि किसी गाँव में पहले से ही पचायत स्थापित हो चुकी और समितियाँ हो तो हम उस पचायत को ही केन्द्रीय संस्था के रूप में संगठित करना चाहेंगे और उसके तत्वावधान में भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न समितियों का निर्माण करेंगे;—यथा शिक्षा-समिति, सहयोग-समिति, कृषि-सुधार-समिति, उद्योग-विकास-समिति, यातायात सुधार-समिति, सांस्कृतिक-मनोरंजन-समिति, महिला-समिति, बाल-समिति, सेवादल तथा रक्षादल, पुस्तकालय-समिति, विचार-गोष्ठी, कुरीति-निवारण-समिति, मादक-द्रव्य-निषेध-समिति, दुग्ध गृहशाला (Dairy), संग्रहालय अथवा प्रदर्शनी समिति, कीर्तन-मंडल, संगीत-समिति, व्यायाम तथा खेल-कूद समिति, आदि। हमारी बात जो प्रसार-कार्य की सफलता के लिए हमें ध्यान में रखनी चाहिए वह यह है कि हम गाँववालों में इस प्रकार की चेतना उत्पन्न करनी चाहिए कि वे अपनी कमी तथा अभाव का तीव्रता से अनुभव करने लगे और उनके हृदय में इस प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो

१. “Taking the advantages of the practical knowledge resulting from college teaching and from research to the rural Indian villager, who may never have been in even a primary school, is our extension task and privilege....In general the extension service aims to foster and develop those lines of endeavour which make for better homes, better social and religious life, better health, better income and better rural living in every sense”. *D. Spencer Hatch*—*Toward Freedom From Want*, Oxford University Press, Bombay.

जाय कि वे जबतक इस कमी अथवा अभाव की पूर्ति नहीं करते तबतक मुखी नहीं हो सकेंगे और उनका गाँव विकास की दौड़ में पीछे पड़ा रहेगा। सच पूछिए तो 'अनुभूत अभाव' (Felt need) हमारी सभी योजना का आधार होना चाहिए। डॉ० हैच ने प्रसार-सेवा-कार्य को आकर्षक पम्प (Suction pump) की उपमा दी है। आकर्षक पम्प हवा के सहारे किसी पदार्थ को अपनी ओर अदर खींचता है; इसके विपरीत विकर्षक पम्प (Force pump) हवा के सहारे किसी पदार्थ को झोके से अपने से दूर बाहर फेंकता है। तात्पर्य यह कि गांववाले हमारे प्रसार-कार्य के आदर्शों और प्रयोगों को ग्रहण करने के लिए पहले से व्याकुल हो—ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करनी चाहिए, न कि ऐसा प्रतीत हो कि भूख हो या न हो, हम गले में जबर्दस्ती सुन्दर-ने-सुन्दर और स्वादिष्ट पदार्थ ठूमते चले जाते हैं।

एक तीसरी बात जिसकी ओर हमारा ध्यान रहना चाहिए, वह यह है कि प्रसार-कार्य के कार्यकर्त्ताओं को गाँववालों के साथ इस तरह से हिलमिल जाना चाहिए कि उनमें किसी तरह का भेद-भाव न रहे।

सम्पर्क और सहकारिता इसके अतिरिक्त जो गाँव हमारा कार्यक्षेत्र रहेगा वहाँ भी हमें ऐसा वातावरण तैयार करना होगा कि लोग ऊँच-नीच, जात-पाँत और सम्प्रदाय, अमीर-गरीब आदि के कृत्रिम भेद-भावों को त्याग कर मानवता के सार्वभौम स्तर पर एक दूसरे से मिलजुल सकें। डॉ० हैच ने इस मेल-जोल और सम्पर्क को अंग्रेजी में Socialization कहा है। सम्पर्क और सहकारिता—ये दो ऐसे आधारभूत सिद्धान्त हैं जिनके बिना हमारा प्रसार-कार्य खोखला बना रहेगा।

प्रसार-कार्य की सफलता में चलते-फिरते पुस्तकालय और साप्ताहिक अथवा पाल्ति पत्रिका (Bulletin) का महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ पुस्तकालय के द्वारा हम जनसाधारण के मानसिक स्तर को प्रसार कार्य के उन्नत और ज्ञान को विवृद्ध करेंगे, वहाँ साथ-ही-साथ सहायक साधन पत्रिका द्वारा उन सभी योजनाओं तथा आवश्यक सूचनाओं को हम जनता के सामने रखते चलेंगे जिनके द्वारा वह दिन-प्रतिदिन प्रगति के पथ पर अग्रसर होगी। प्रसार-कार्य के रचना-त्मक कार्यक्रम में वे सभी साधन और सभी उपाय सम्मिलित हैं जिनके द्वारा

हम लोगों की समाजिक, नैतिक तथा आर्थिक स्थिति को सुधारना चाहेंगे । उदाहरणतः, अच्छे ढंग के चर्खे, गोंयठा-लकड़ी जलानेवाले खुले चूल्हे के बदले भूसी जलानेवाले धुआँकस चूल्हे, लकड़ी और लोहे के काम के सस्ते किन्तु वैज्ञानिक ढंग के यन्त्र, अच्छे हँडलूम, प्रयोग के आधार पर प्रमाणित उन्नत मॉडल के हल, अच्छे और सुपुष्ट बीज, अच्छी-अच्छी नस्लों के पशु, मुर्गी आदि, सहयोग के आधार पर माल तैयार करने और उन्हें बेचने के लिए दूकान—ये और इस प्रकार के अनेकानेक ऐसे पदार्थ हैं जिनसे हमें गाँव-वालों को परिचित कराना होगा और इस प्रकार उन्नत तथा व्यावहारिक ज्ञान को पहुँचाना (extend) होगा ।

प्रसार से मिलता-जुलता और उसके अनिवार्य अंग के रूप में जो दूसरा कार्य है उसे हम प्रदर्शन (Demonstration) कहेंगे । प्रदर्शन की योजना के अन्तर्गत हमको अपनी शिक्षण-संस्थाओं और उनसे संबद्ध प्रदर्शन गाँवों में भिन्न-भिन्न केन्द्र, कारखाने, प्रयोगों के लिए खेत (Farm) स्थापित करने होंगे जिसमें उन सभी उन्नत ढंग के पदार्थों, यंत्रों आदि का व्यावहारिक प्रयोग किया जाय जो जनसाधारण के लिए प्रदर्शन का काम करें । कहावत प्रसिद्ध है कि “उपदेश से उदाहरण उत्तम है” (Example is better than Precept) । यह कोई जरूरी नहीं कि सभी प्रदर्शन और प्रयोग शिक्षण-संस्थाओं में ही हो । हम तो जनता में ही से ऐसे लोगों को तैयार करना होगा जो अपने-अपने खेतों, अपने घरों और कारखानों में, हमारे बताये हुए बीजों, अनाजों और यंत्रों का प्रयोग करें; और गाँववाले स्वयं अपने गाँववालों के लिए प्रदर्शन का माध्यम हों ।

परिच्छेद अठारह

समाज-शिक्षा-शिविर

जब कभी स्कूल-कालेज के छात्रों, शिक्षकों, शिक्षाधिकारियों, अन्य-अन्य विभागों के कर्मचारियों, गांवों के कार्यकर्त्ताओं, साधुओं-फकीरों आदि को समाजशिक्षा तथा उसके व्यावहारिक कार्यक्रम से परिचय शिक्षण-शिविर दिलाना होता है, और हमें समयाभाव आदि के कारण तीन महीने से कम, अथवा एक महीने से भी कम, का प्रशिक्षण उपयोगिता देने को बाध्य होना पड़ता है, तो विधिवत् 'प्रशिक्षण-कोर्स' के स्थान पर प्रशिक्षण-शिविर ('Training Camps) का आयोजन करना अधिक सुविधाजनक तथा श्रेयस्कर जान पड़ता है । आज के युग में जब हमारे कालेजों के तरुण छात्र अधिक-से-अधिक संख्या में परीक्षाएँ पास करते जाते हैं, और "ग्रेजुएट" बनकर "भारतेन्दु" की 'तीन बुलावें, तेरह धावें' वाली व्यंग्योक्ति को चरितार्थ करते दीख पड़ते हैं, तो हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम ऐसी योजनाएँ कार्यान्वित करें जिनके द्वारा इन उच्चवर्गीय छात्रों की मनोवृत्ति और आदतों में परिवर्तन हो; वे मिट्टी से घृणा न करें, हाथ से काम करने को अपमान न समझें, गांवों और दिहातों की दीन-हीन जनता, अर्थात् किसानों तथा मजदूरों से प्रेम करना सीखें, और उनके साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर

उनकी तथा देश की स्थिति सुधारने की चेष्टा करे। आज जो वे अनेकानेक राजनीतिक मतवादों और “इज्मों” (isms) में पड़कर रचनात्मक प्रवृत्ति के बदले ध्वसात्मक प्रवृत्ति को ग्रहण करते दीख पड़ते हैं, उससे उन्हें बचाने के लिए भी हमें उचित उपायों का अवलम्बन करना है। इस प्रकार की योजनाओं और उपायों में सर्वप्रमुख स्थान है अवकाशकालीन समाजशिक्षा-प्रशिक्षण शिविरों का। ये शिविर न केवल तह्णों की मनोवृत्ति और क्रियाशक्ति को उचित दिशा में प्रेरित करते हैं, अपितु उनके गतिमान् मस्तिष्क को “शैतान का कारखाना” (Devil's workshop) बनने से रोकते हैं, और सही अर्थ में उपयोगी नागरिक बनने की ओर उन्मुख करते हैं। प्रायः सभी राज्यों अथवा प्रान्तों में अल्पकालीन प्रशिक्षण-शिविर की योजना कार्यान्वित हो रही है। व्यावहारिक अनुभव के आधार पर इन शिविरों के संवाहन, उद्देश्य, प्रशिक्षण-क्रम, रचनात्मक प्रयोग आदि के सबंध में जिन बातों की जानकारी अपेक्षित है, उनका संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

१. (क) जनता और जन-जीवन के साथ तादात्म्य-सम्पादन तथा प्रत्येक के हृदय में समाजसेवा की भावना का समावेश।

(ख) व्यक्ति और समाज के परस्पर संबंध और एक के शिविर-जीवन के प्रति दूसरे के उत्तरदायित्व का बौद्धिक एवं उद्देश्य व्यावहारिक ज्ञान।

(ग) जन-जीवन—विशेषतः ग्रामीण जन-जीवन—के नव-निर्माण, सर्वोदय अथवा सर्वांगीण विकास के रचनात्मक कार्यक्रम का ज्ञान एवं उसमें सक्रिय सहयोग।

(घ) वर्ग एवं वर्णजन्य विषमताओं से विरहित स्वस्थ समाज का संगठन।

२. इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लगभग चार सप्ताह तक शिविर का कार्यक्रम चलना चाहिए। प्रथम सप्ताह में परीक्षार्थी शिविर में प्रविष्ट होंगे तथा समाज-शिक्षा के उद्देश्य, उसके रचनात्मक कार्यक्रम तथा अन्यान्य बौद्धिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करेंगे। द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ सप्ताहों में वे अपने-अपने क्षेत्रों में जायेंगे, वहाँ की समस्याओं का अध्ययन करेंगे तथा वहाँ रचनात्मक समाजसेवा को कार्यान्वित करेंगे। अन्त में वे फिर एकत्र शिविर में लौट आएँगे, अपने-अपने क्षेत्र के कार्यों और उनकी पद्धतियों पर परस्पर विचार विमर्श

करेंगे और व्यावहारिक अनुभूतियों के आधार पर भावी प्रशिक्षण-शिविर के संगठन तथा समाज-सेवा-कार्य के संचालन एवं सम्पादन की रूपरेखा तैयार करेंगे ।

समाज के सामने मुख्यतः प्रायः सात प्रकार की समस्याएँ वर्तमान हैं और उनके निराकरण के सात तरीके हैं । इन्हीं को सप्त-सूत्री योजना कह सकते हैं जो इस प्रकार हैं :—

समाज शिक्षा की १. स्वच्छता, सफाई तथा औषधि वितरण—गाँवों की व्यापक सप्त-सूत्री सफाई, गन्दगी दूर करने के लिए कम्पोस्ट पिट, मूत्रालय, योजना की रूपरेखा खाई पाखाने और सोख गढ़े आदि की व्यवस्था तथा रोगियों के लिए औषधिवितरण की व्यवस्था; स्वास्थ्य स्थायी रखने के लिए अखाड़े तथा विभिन्न प्रकार के खेल-कूद की व्यवस्था ।

२. शिक्षा—छोटे-छोटे बच्चों, युवकों एवं वयस्कों की शिक्षा का प्रबन्ध, वाचनालय, पुस्तकालय एवं रात्रि पाठशाला की व्यवस्था ।

३. आर्थिक उत्थान—अवकाश के समय में तरकारी, मवेशी-पालन एवं अन्यान्य गृह-उद्योगों की व्यवस्था; प्रतिदिन कुछ समय अर्थोत्पादन में लगाना, समाज को नित्य प्रति अन्न और वस्त्र की समस्या मुलज्ञाने की ओर मोड़ना, गाँवों में श्रमालय की व्यवस्था आदि ।

४. संगठनात्मक-कार्यक्रम—ग्राम-पचायत, ग्राम-मन्त्रि-मण्डल, समाज-सदन, ग्राम-रक्षा-दल आदि की व्यवस्था ।

५. सांस्कृतिक कार्यक्रम—संगीत, नाटक, कीर्तन, कला, साप्ताहिक-सभा एवं अन्यान्य स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था ।

६. सामाजिक कुरीतियों का सुधार—प्रचार, प्रहसन एवं व्याख्यान आदि द्वारा भेद-भाव, जातीयता, तिलक-दहेज, बाल-विवाह, मद्य-सेवन आदि के विरुद्ध प्रचार करना एवं अपने चरित्र से आदर्श उपस्थित करना ।

७. प्रचार—पत्रिका, चलचित्र, मैजिक लैन्टर्न, विशेषज्ञों के भाषण, समाचार-पत्र, पुस्तक-प्रकाशन आदि द्वारा समाज के मानस-स्तर को ऊँचा उठाना ।

(१) सबसे पहले शिविर सदस्यों को चाहिए कि वे अपने नाम शिविर की प्रवेश-पुस्तिका में लिखा लें।

(२) शिविर-नायक से पूछकर अपने आवास में जायें। शिविर-प्रवेशार्थियों (३) आते ही शौचागार, स्नानागार, मूत्रालय, कुआँ, पाक-के लिए शाला, आफिस, आफिस-कार्यकर्त्ता एवं अन्यान्य आवश्यक आवश्यक सूचनाएँ बातों की जानकारी प्राप्त कर लें।

(४) भोजन-व्यवस्था के लिए भोजनाध्यक्ष के पास रुपए अति-शीघ्र जमाकर दें।

(५) दस व्यक्तियों की टोली बन जानी चाहिए। प्रथम दिन ही मन्त्रि-मण्डल का गठन हो जाना चाहिए, जिसमें निम्नांकित पदाधिकारी सदस्यों द्वारा चुने जायेंगे और उनके निम्नलिखित कार्य होंगे:—

(क) प्रधान मन्त्री—सभी विभागों की देख-भाल, मन्त्रि-मण्डल की बैठक एवं मासिक योजना बनाना आदि।

(ख) गृह-मन्त्री—शिविर की सुरक्षा, समय पर घटी बजाना और वर्ग की व्यवस्था।

(ग) उद्योग-मन्त्री—गृह उद्योगों का संचालन, सूत्र-यज्ञ की व्यवस्था करना, सूत्र-यज्ञ के सामानों का हिसाब-किताब रखना।

(घ) सस्कृति-मन्त्री—सास्कृतिक बैठक बुलाना, प्रार्थना, प्रभातफेरी आदि का प्रबन्ध करना, केन्द्र में तथा गाँवों में सप्ताह में दो बार बैठक बुलाना आदि।

(ङ) शिक्षा-मन्त्री—अपने साथियों के लिए पुस्तकों की व्यवस्था करना तथा रात्रि-पाठशाला-संचालन करना।

(च) समाज-सेवा मन्त्री—समाज में रचनात्मक कार्य करना और अपने साथियों से कराना तथा उसका आलेख रखना।

(छ) प्रकाशन-मन्त्री—प्रति-दिन होनेवाले कार्यों का व्यौरा लिखना तथा दैनिक पत्रिका का प्रकाशन करना।

(ज) खाद्य-मन्त्री—भोजन, जल तथा जलावन की व्यवस्था करना, समय पर अपनी टोलियों से भोजन बनवाना तथा साथियों को खिलाना, दैनिक आय-व्यय का आँकड़ा रखना।

(झ) स्वास्थ्य-सफाई मन्त्री—केन्द्र तथा गाँव की सफाई की व्यवस्था करना तथा रुग्ण व्यक्तियों की सेवा एवं चिकित्सा का प्रबन्ध करना।

६. साथ का सामान—प्रत्येक व्यक्ति के पास निम्नांकित सामान रहना उचित है :—

- (क) धोती या पाजामा तथा कुर्ता ।
- (ख) बिछावन तथा ओढ़ने के लिए चादर ।
- (ग) जूते ।
- (घ) लोटा ।
- (ङ) बाल्टी ।
- (च) थाली ।
- (छ) गिलास ।
- (ज) डोरी ।
- (झ) लाठी ।
- (ञ) लालटेन ।
- (ट) झाड़ू ।
- (ठ) तकली तथा अटेरन ।
- (ड) नोटबुक, कलम एवं दावात ।

७. निम्नांकित रेकर्ड अथवा लेखा प्रत्येक व्यक्ति को रखना है—

- (क) डायरी । (ख) अभ्यास पाठ-पुस्तिका । (ग) सिलेब्रम (पाठ्यक्रम) । (घ) उद्योग-पुस्तिका । (ङ) स्वाध्याय-पुस्तिका । (च) निबन्ध-पुस्तिका । (छ) ग्राम-सर्वे-पत्रक । (ज) योजना तथा प्रगतिपुस्तिका । (झ) संगीत पुस्तिका । (ञ) ग्राम-अध्ययन पुस्तिका ।

ज्ञातव्य बौद्धिक विषय

(क) समाज-शिक्षा के सिद्धान्त ।

(ख) समाज-शिक्षा का इतिहास ।

शिविर-जीवन (ग) शरीर शास्त्र तथा स्वास्थ्य-विज्ञान ।

के (घ) अध्यापन-कला ।

विषय और कार्य (ङ) नाट्य-शास्त्र ।

(च) ग्रामीण-अर्थ-शास्त्र ।

(छ) नागरिक शास्त्र ।

(ज) समाज-शिक्षा के रेकार्डों का ज्ञान ।

(झ) सरकारी महकमे तथा उनका समाज-सेवा से संबंध ।

व्यावहारिक कार्य

(क) केन्द्र तथा ग्राम सफाई ।

एक बार गाँव में सामूहिक भोजन करना ।

(ग) सप्ताह में दो बार सांस्कृतिक बैठक करना ।

(घ) कम्पोस्ट पिट, खाई पाखाना, सोख पेशाबखाना, सोख गढ़े, सूत कातना ।

(ङ) सामूहिक रूप से एक गाँव की समस्याओं का अध्ययन करना ।

(च) रात्रि-पाठशाला संचालन करना ।

(छ) एक अभ्यास-पाठ देना ।

दिनचर्या

१. प्रार्थना तथा प्रभानफेरी ।

२. सामूहिक तथा व्यक्तिगत सफाई ।

३. ग्रामीण समस्याओं का अध्ययन तथा विभिन्न प्रकार का सर्वे करना ।

४. विचार-गोष्ठी तथा मूत्र-यज्ञ ।

५. भोजन तथा विश्राम ।

६. स्वाध्याय ।

७. समाज-सेवा-कार्य ।

८. सायंकालीन प्रार्थना तथा दैनिक प्रगति का सिंहावलोकन ।

९. रात्रि-पाठशाला संचालन या संस्कृति-सभा ।

१०. सुरक्षा तथा विश्राम ।

व्यावहारिक कार्यों की पाक्षिक योजना

१. ग्राम-सर्वेक्षण अथवा परिसंकलन (Survey) ।

२. पारिवारिक परिसंकलन ।

३. अपने कार्य-क्षेत्र की विकास योजना तैयार करना ।

४. प्रत्येक व्यक्ति के लिए निर्धारित कार्य :—

२ खाई पाखाना बनाना ।

२ पेशाबखाना बनाना ।

२ कम्पोस्ट पिट बनाना ।

१ सोख पिट बनाना ।

२ गुंडी सूत कातना ।

- १२ पाठ रात्रि-पाठशाला में देना ।
- १ परिवार को लेकर उसे उन्नत बनाना ।
५. सामूहिक रूप से अपने कार्य-क्षेत्र की सड़कों की मरम्मत करना
६. दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखना ।
७. अपने क्षेत्र में कुओं की सफाई ।
८. सप्ताह में कम से कम एक दिन सांस्कृतिक बैठक करना ।
९. सप्ताह में एक बार ग्राम-गोष्ठी करना ।
१०. अपनी कार्यावधि में एक नाटक खेलना ।
११. एक अखाड़े का निर्माण तथा उसे लोकप्रिय बनाना ।
१२. ग्राम-सेवा-संघ का निर्माण करना ।
१३. प्रति सप्ताह एक बार गाँवों में प्रदर्शनार्थ सामूहिक भोजन करना ।
१४. सप्ताह में एक बार गाँवों की सामूहिक सफाई करना ।
१५. ग्राम-मन्त्रि-मण्डल की स्थापना करना ।
१६. समय तथा परिस्थिति के अनुकूल अन्य रचनात्मक उपायों का अवलम्बन ।

पारिवारिक विवरण-पत्रक^१

१. क्रमांक—
२. गाँव का नाम—
३. कुल घर—
- पारिवारिक ४. परिवार के कुल व्यक्ति—स्त्री और पुरुष—
- विवरण-पत्रक ५. ५ वर्ष के बच्चे—
- (Form for ६. ६ से १४ वर्ष के व्यक्ति—
- Family ७. १४ ले २५ वर्ष के व्यक्ति—
- Survey ८. २५ से ऊपर के व्यक्ति—
९. साक्षर स्त्री और पुरुष—
१०. निरक्षर स्त्री और पुरुष —
११. नौकरी करनेवालों की संख्या—
१२. लूल्हे, लंगड़ों की संख्या—
१३. अंधों की संख्या—
१४. कष्टग्रस्त व्यक्तियों की संख्या—

१. शहरों के मुहल्लों के भी विवरण इस परिच्छेद में दिये गए विवरणों के आधार पर तैयार किए जा सकते हैं ।

१५. रोगियों की संख्या—
१६. गत पाँच वर्षों में हुई मृत्यु-संख्या—
१७. किस-किस रोग से मृत्यु हुई—
१८. कमानेवालों की संख्या—
१९. कुल जमीन—
२०. वार्षिक आय—
 - (क) अनाज (किस्म)
 - (ख) किस्म कपड़ा और आय—
 - (ग) अन्य उद्योग—
२१. कुल वार्षिक खर्च—
 - (क) भोजन—
 - (ख) गृह—
 - (ग) वस्त्र—
 - (घ) निमंत्रण—
 - (ङ) अन्य व्यय—
२२. श्राद्ध की औसत संख्या—
२३. विवाह की औसत संख्या—
२४. मवेशी—
२५. दूध का वजन प्रतिदिन—
२६. बगीचे के पेड़ों की संख्या—
 - (क) बगीचे का क्षेत्रफल—
 - (ख) पेड़ों के प्रकार—
२७. घरों का क्षेत्रफल—
२८. पास का पैसा या गल्ला—
२९. कुल स्थायी सामान —
३०. आभूषण (क) किस्म— (ख) तौल— (ग) लागत—
३१. सालाना बचत या घाटा—

ग्राम विवरण पत्रक

१. ग्राम का नाम—
२. डाकघर—
- ग्राम विवरण- ३. डाकघर से दूरी—
- पत्रक ४. थाना—
- (Village ५. बीट नम्बर—
- Survey Form) ६. तौजी नम्बर—
७. थाना नम्बर—

८. सबडिवीजन—
९. जिला—
१०. कमिश्नरी—
११. राज्य —
१२. रेलवे स्टेशन—
१३. रेलवे स्टेशन से दूरी तथा दिशा—
१४. तार आफिस—
१५. तार आफिस से दूरी—
१६. रजिस्ट्री आफिस—
१७. रजिस्ट्री आफिस से दूरी—
१८. चौहद्दी—
१९. गाँव का क्षेत्रफल—
२०. जोत की जमीन—
२१. बस्ती की जमीन—
२२. बगीचे की जमीन —
२३. गोचर भूमि—
२४. सड़क की जमीन—
२५. नदी की जमीन—
२६. परती, कदीम या श्मशान—
२७. गैर आबाद जमीन—
२८. चौर की जमीन—
२९. कुल जमीन—
३०. मालिक का नाम—
३१. उनके जिम्मे की जमीन का क्षेत्रफल—
३२. उनके जिम्मे पाई जानेवाली मालगुजारी की रकम—
३३. ग्राम की मालगुजारी—
३४. जमीन का प्रकार और क्षेत्रफल—
३५. कुल जनसंख्या—
३६. स्कूल का पता जहाँ वहाँ के लड़के पढ़ते हैं—
३७. औषधालय का पता—
३८. मन्दिरों की संख्या और प्रकार—

३९. मस्जिदों की संख्या और किस्म—
४०. गिर्जा और किस्म—
४१. अन्य धार्मिक स्थानों की संख्या—
४२. पुस्तकालयों की संख्या—
४३. पुस्तक-संख्या—
४४. ऐतिहासिक स्थान—
४५. मेला स्थान—
४६. हाट स्थान—
४७. कुँओं की संख्या—पक्के तथा कच्चे—
४८. पोखरो की संख्या—
४९. पोखरो का क्षेत्रफल तथा उनकी दशा—
५०. ग्राम-पंचायत की स्थापना तिथि—
५१. बहुधर्मी सहयोग-समिति की स्थापना तिथि—
५२. सहयोग भंडार तथा सहयोगी बैंक की स्थापना तिथि—
५३. पुस्तकालय की संख्या तथा स्थापना तिथि—
५४. ग्राम-रक्षा-दल की स्थापना तिथि—

(?) सफाई, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा संबंधी समस्याएँ^२

(क) गाँव का नाम—

ग्रामीण समस्याओं (ख) गाँव की आवादी—

का अध्ययन (ग) जमीन प्रति परिवार—

(घ) गाँव की सफाई का क्या प्रबन्ध है ?

(ङ) गाँव में कम्पोस्ट-पिट का प्रबन्ध है या नहीं ?

(च) ग्रामीणों के पेशाब-खाने तथा पाखाने का क्या प्रबन्ध है ?

(छ) गाँव के कच्चे तथा पक्के कुओं की संख्या—

(ज) गाँव में होनेवाले सक्रामक रोगों के नाम—

(झ) गाँव में जड़ी बूटी का उद्यान है या नहीं ?—

(ञ) गाँव में चिकित्सा की क्या व्यवस्था है ?—

(ट) गाँव में ट्रेण्ड दाई है या नहीं ?—

२. इन समस्याओं का अध्ययन शिविर-जीवन का प्रमुख अंग होगा ।

- (ठ) खेल-कूद का क्या प्रबन्ध है ? —
 (ड) प्राथमिक चिकित्सा की क्या व्यवस्था है ? —
 (ढ) गाव के पानी के निकास का क्या प्रबन्ध है ? —
 (ण) कितने कुओं पर लाटा कुड़ा का प्रबन्ध है ? —
 (त) ग्रामीणों का साधारण भोजन क्या है ? —
 (थ) समतोल भोजन पानेवाले का अनुपात प्रतिशत —
 (द) असमतोल भोजन पानेवाले का अनुपात प्रतिशत —
 (घ) औसत दैनिक दूध खर्च —
 (न) नशा पीने वालों की संख्या—
 (प) वयस्क या बच्चों की संख्या—
 (अ) जिन्हें सुखण्डी है —
 (आ) जिन्हें रतौधी रोग है—
 (इ) जिन्हें गुप्त रोग है —
 (ई) जिन्हें कुष्ठ रोग है—
 (उ) जिन्हें यक्ष्मा है —
 (ऊ) जिन्हें उन्माद है—
 (ए) जिन्हें मानसिक कमजोरी है—
 (ऐ) जो अंधे हैं—
 (फ) विवाह की औसत उम्र (क) मर्दों की—(ख) औरतों की—
 (ब) प्रथम मन्तान होने की औसत उम्र—
 (भ) दूध छोड़नेवाले बच्चों की उम्र—
 (म) बच्चों की मृत्यु संख्या—
 (य) माताओं की मृत्यु संख्या—

(२) सांस्कृतिक समस्याएँ

- (क) गायकों की संख्या—
 (ख) ढोलक बजानेवालों की संख्या—
 (ग) झाल „ „ „ —
 (घ) हारमोनियम „ „ „ —
 (ङ) तार के बाजे „ „ „ —

- (च) अन्य बाजा बजानेवालों की संख्या—
 (छ) खंजरी " " "
 (ज) कविता करनेवालों की संख्या—
 (झ) प्रहसन करनेवालों की संख्या—
 (ञ) नाटक में भाग लेनेवालों की संख्या—
 (ट) लेखकों की संख्या—
 (ठ) कलाकारों की संख्या—
 (ड) अन्य प्रदर्शन करनेवालों की संख्या—
 (ढ) ग्रामीणों के मनोरंजन का क्या प्रबन्ध है ?—
 (ण) गांव में भजन कीर्तन का क्या प्रबन्ध है ?—
 (त) गांव में कथा कहनेवालों की संख्या—
 (थ) कौन-कौन से सार्वजनिक स्थान हैं ?—
 (द) कौन-कौन से पर्व सामूहिक रूप में मनाये जाते हैं ?—
 (ध) वहां के बच्चे या कृषक किस प्रकार के गाने गाते हैं ?—
 (न) किस प्रकार के प्रदर्शन को वहाँ के वयस्क पसन्द करते हैं ?—
 (प) वहाँ की साधारण वेश-भूषा क्या है ?—

(३) शिक्षा तथा साक्षरता-संबंधी समस्याएँ

- (क) गांव की कुल आवादी—
 (ख) ३ से ५ वर्ष के बच्चों की संख्या—
 (ग) ६ से १४ वर्ष के किशोरों की संख्या—
 (घ) १४ से २५ वर्ष के युवकों की संख्या—
 (ङ) २५ से ४० वर्ष के व्यक्तियों की संख्या—
 (च) ४० वर्ष से अधिक उम्र के व्यक्तियों की संख्या—
 (छ) बालवाड़ी की संख्या—
 शिक्षकों की संख्या— ट्रेन्ड— अनट्रेन्ड—
 (ज) प्राइमरी या बेसिक स्कूलों की संख्या—
 शिक्षकों की संख्या— ” ”
 (झ) मिडिल स्कूल या सीनियर बेसिक स्कूलों की संख्या—
 शिक्षकों की संख्या— ट्रेन्ड— ”

(अ) हाई स्कूलों की संख्या—

शिक्षकों की संख्या— ट्रेन्ड—अन्ट्रेन्ड—

(ट) शिक्षा से वंचित बच्चों की संख्या—

(ठ) " " नवयुवकों की संख्या—

(ड) " " युवकों की संख्या—

(ढ) " " वयस्कों की संख्या—

(ण) वाचनालयों की संख्या—

(त) पुस्तकालयों की संख्या—

(थ) क्लबों की संख्या—

(४). आर्थिक समस्याएँ

(क) गांव की आबादी—

(अ) परिवारों की संख्या— (आ) परिवारों में औसत सदस्य—

(ख) जमीन प्रति परिवार—

(ग) खरीद-बिक्री की क्या व्यवस्था है ?—

(घ) जमीन के बड़े टुकड़े तथा छोटे टुकड़े की माप—

(ङ) गाँव में कौन-कौन से गृह-उद्योग चलते हैं ?—

(च) किस उद्योग में कितने व्यक्ति लगे हुए हैं ?—

(छ) परती जमीन या बेकार पड़ी जमीन का क्या उपयोग होता है ?—

(ज) क्या प्रत्येक परिवार को साग-सब्जी अपने खेतों से मिल जाती है ?—

(झ) प्रत्येक परिवार को कितना फल के पेड़ हैं ?—

(ञ) अवकाश काल में वहाँ के युवक क्या करते हैं ?—

(ट) कितने परिवार स्वावलम्बी हैं ?—

(अ) अन्न से— (आ) वस्त्र से— (इ) आवास से—

(ठ) क्या वहाँ बहुधनी सहयोग समितियों की व्यवस्था हो चुकी है ?—

(ड) गाँव पर कितना कर्ज है ?—

(ढ) इन मदों में कितना अव्यय प्रति परिवार प्रति वर्ष होता है ?

(अ) मादक द्रव्य में— (आ) श्राद्ध में—

(इ) विवाह में— (ई) मुकदमेबाजी में—

(ण) प्रति एकड़ खेती उत्पादन क्या है ?

- (त) बेकार बंठे व्यक्तियों की संख्या—(अ) साक्षर— (आ) निरक्षर—
 (थ) एक परिवार पर कितनी जमीन पड़ती है ?—
 (द) भूमिहीन व्यक्तियों का क्या पेशा है ?—
 (ध) कौन-कौन से उद्योग वहाँ चलाये जा सकते हैं ?

(५) संगठन, कुरीतियों तथा प्रचार से संबंधित समस्याएँ

- (क) क्या गाँव में पंचायत की व्यवस्था है ?—
 (ख) क्या वहाँ ग्राम-रक्षादल का प्रबन्ध है ?—
 (ग) वहाँ की सार्वजनिक संस्थाओं का प्रबन्ध कैसे होता है ?—
 (घ) क्या गाँव में मिलन-मंदिर है ?—
 (ङ) वहाँ कौन-कौन सी सामाजिक कुरीतियाँ हैं—
 (च) वहाँ के ग्रामोण समाचार-पत्र कैसे प्राप्त करते हैं ?—
 (छ) ग्रामनेता तथा ग्रामीणों में कैसा सबंध है ?—
 (ज) क्या गाँव में समाचार-पट है ?—
 (झ) क्या गाँव में लोक-रंगमंच है ?—
 (ञ) क्या ग्राम-मन्त्रि-मण्डल का निर्माण हो चुका है ?
 (ट) क्या ग्रामीणों का संगठित जीवन चलता है ?—

१. प्रशिक्षार्थियों के द्वारा अपने कार्यों की रिपोर्ट प्रस्तुत करना ।

२. समाज की वर्तमान समस्याओं की रिपोर्ट तथा उनके समाधान के तरीकों पर निबन्ध प्रस्तुत करना ।

अन्तिम सप्ताह का कार्यक्रम ३. सप्तसूत्री योजना के आधार पर अपने स्कूल या गाँव की पंच-वार्षिक, वार्षिक, मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक योजना तैयार करना ।

४. प्रतिदिन विचार-गोष्ठी तथा विभिन्न प्रकार की समस्याओं पर विचार ।

५. अपने गाँव को आदर्श ग्राम में बदलने की योजना तैयार करना ।

६. शिविर से लिये गये सामानों को लौटाना ।

७. मूल्यांकन बोर्ड द्वारा छात्रों का मूल्यांकन होना ।

८. दीक्षान्त समारोह तथा प्रमाण-पत्र वितरण ।

९. शिविर का विघटन तथा प्रयाण ।

परिच्छेद उन्नीस

किशोर कुल तथा तरुण संघ

लगभग छः वर्ष की अवस्था से ही बालक-बालिकाओं में इस प्रकार की योग्यता उत्पन्न की जा सकती है कि वे अपने को सोद्देश्य दलों अथवा समितियों में संगठित करें। उम्र की दृष्टि से हम स्कूलों छात्रों का और कालेजों के उन छात्रों को जिनको दलों, समितियों वर्ग-विभाजन अथवा सवों में संघटित करना अपेक्षित है, तीन कोटियों में विभक्त करेंगे:—

- (१) ६ से ११ वर्ष तक के बालक और बालिकाएँ।
- (२) १२ से १८ वर्ष तक के किशोर; और

१. इस परिच्छेद के विषय में 'नेशनल एसोसियेशन ऑफ गर्ल्स क्लब्स ऐन्ड मिक्स्ड क्लब्स' (National Association of Girls Clubs and Mixed Clubs) लन्दन द्वारा प्रकाशित 'क्लब्स ऐण्ड क्लब-मेकिंग' (Clubs and Club-making) नामक पुस्तक से सहायता ली गई है।

(३) १९ से २४ वर्ष तक के तरुण ।

इन बालक, किशोर और तरुणों में मिल-जुलकर किसी संगठन में सम्मिलित होकर कार्य करने की प्रवृत्ति स्वतः रहती है, और शिक्षकों, अभिभावकों तथा सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं का यह कर्त्तव्य होता है कि उन्हें अपने को स्वस्थ तथा सही तरीके से संगठित करने में सहायता दें ।

प्रस्तुत परिच्छेद में हम उन समितियों अथवा दलों की चर्चा नहीं करना चाहते, जिनका संगठन स्कूलों और कालेजों में वहीं के छात्रों तक सीमित है । स्कूलों-कालेजों की सीमा के बाहर हजारों-
 अवकाश के लाखों ऐसे बालक, किशोर और तरुण मिलेंगे जो कोई न
 सदुपयोग का कोई जीविका उपार्जन करते हैं, या यों ही पड़े हुए हैं, और
 अभाव दोनों स्थितियों में जिन्हें प्रतिदिन, विशेषतः सायंकाल,
 इतना अवकाश अथवा समय मिलता है जिसको वे या तो
 आलस्य में बिताते हैं या, सदुपयोग के अवसर के अभाव में, दुरुपयुक्त करते
 हैं । स्कूलों और कालेजों में पढ़नेवाले भी वे बालक-तरुण-किशोर, जो छात्रा-
 वासों में नहीं रहते हैं, अपने को ऐसी परिस्थिति में पाते हैं जिसमें उन्हें
 आलस्य और बुरी आदतों में फँसने के लिए खुला वातावरण मिलता है ।

यह आवश्यक है कि इनके लिए स्कूल-कालेजों की सीमा और अनुशासन के बाहर भी दलों और सभा-समितियों का संगठन हो, ताकि जो भी उनका
 अवकाश का समय मिले उसका वे अच्छी तरह उपयोग कर
 सभा-समितियों सकें । अतः प्रत्येक समाजसेवक का यह कर्त्तव्य होगा कि
 का वह इस प्रकार की संस्थाओं का संगठन करने में लोगों को
 संगठन प्रोत्साहित करे और उनके संचालन के लिए उचित मार्ग-
 निर्देशन करे । ये संस्थाएँ उन संस्थाओं से भिन्न होंगी जो
 हम स्कूलों-कालेजों में पाते हैं, यथा-‘स्काउट्’, ‘गाइड्स्’ या ‘एन० सी० सी०’ ।
 यह नहीं कि इन संस्थाओं के सदस्यों के लिए कोई विहित वस्त्र या युनिफार्म
 नहीं होगा । सेवा-समिति, सुरक्षा-दल आदि ऐसे संगठन होंगे जिनमें
 युनिफार्म होना आवश्यक है, किन्तु इस प्रकार की भी अनेकानेक प्रगतियाँ
 होंगी जिनके लिए वस्त्र-विशेष की आवश्यकता नहीं होगी । संस्थाओं अथवा
 दलों के संगठन में जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात ध्यान में रखनी होगी वह यह
 है कि उम्र के हिसाब से उनका विभाजन सामान्यतः वैसा ही होगा जिसका
 कि उल्लेख ऊपर किया जा चुका है; अर्थात् बालकों, किशोरों और तरुणों का

अलग-अलग दल और संगठन होना अधिक अच्छा होगा । विशेष परिस्थितियों में सभी प्रकार के दल सम्मिलित कार्यक्रम की योजना बना सकते हैं और उसे कार्यान्वित कर सकते हैं; किन्तु सामान्यतः उम्र-संबंधी सीमान्त रेखाओं का पालन होना चाहिए, क्योंकि ये सीमान्त रेखाएँ प्रायः व्यक्तित्व के विकास की दिशा और मनोविज्ञान के आधार पर निर्धारित की गई हैं ।

सबसे प्रचलित दल—जिसका कि प्रचार विदेशों में भी बहुत अधिक संख्या में है—होना चाहिए सप्ताहान्त मिलन-दल (Week-end Club) ।

इस प्रकार के संगठन का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए कि संगठन की आधार-वह प्रोति-यात्राओं (Excursions), प्रीतिभोजों

भूत प्रगतियों (Picnics), मनोरंजन (Entertainment) आदि

की व्यवस्था करे, और भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रगतियों के लिए भिन्न-भिन्न दलों का संगठन करे । जिन प्रगतियों के लिए दलों का संगठन हो सकता है उनको ठीक-ठीक गिनाना सम्भव नहीं है, क्योंकि स्थान और परिस्थिति के अनुसार वे भिन्न-भिन्न होंगी । किन्तु सामान्य निर्देश के लिए निम्नलिखित प्रगतियों का उल्लेख किया जा रहा है :—

(क) वाद-विवाद और गोष्ठी ।

(ख) भाषण ।

(ग) नाटकाभिनय ।

(घ) संगीत, नृत्य और कला ।

(ङ) हस्तोद्योग ।

(च) म्यूजियम, प्रदर्शनी, ऐतिहासिक स्थान, मनोरम प्राकृतिक दृश्य आदि की सम्मिलित यात्रा ।

(छ) किसी गांव या मुहल्ले में समाजसेवा का सप्ताहान्त कार्यक्रम ।

(ज) निरुद्देश्य परिभ्रमण (Rambling) ।

(झ) साइक्लिंग ।

(ञ) तैरना ।

(ट) खेलकूद ।

सप्ताहान्त संगठनों के अतिरिक्त इस प्रकार के संगठन भी होंगे जिनका संचालन स्थायित्व के आधार पर होगा । उदाहरणतः सेवासमिति, सुरक्षा-दल, साहित्य-गोष्ठी, संगीत-समिति, नाटक समिति आदि । स्थायी संगठन कला और हस्तोद्योग (Hobbies and Handicrafts)

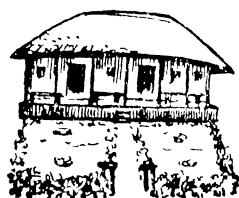
के लिए भी भिन्न-भिन्न प्रकार की समितियों का संगठन होना चाहिए, जिसमें जिसकी जंसी रुचि हो वह उसी प्रकार का काम-धंधा अपने अवकाश के समय में सीखे और उससे कुछ उपाजन भी कर ले। आजकल स्थान-स्थान पर पत्र-मित्र-समितियों (Pen-friends' Clubs) का भी प्रचार हो रहा है। उक्त समितियों के सदस्य भिन्न-भिन्न राज्यों और विश्व के भिन्न-भिन्न भागों के समवस्थक मित्रों के साथ पहले पत्र द्वारा नाता जोड़ते हैं, और फिर क्रमशः ऐसी भी व्यवस्था की जाती है कि वे एक दूसरे के यहाँ जाकर उनसे मिलें, उनका आतिथ्य स्वीकार करें और अपने अनुभव तथा ज्ञान का विस्तार तथा विनिमय करें। इसी प्रकार तरुण-छात्रावास-संघों (Youth Hostels Associations) का भी प्रचार हो रहा है। ऐसे संघों के छात्रावासों में रहनेवाले छात्र एक राज्य से दूसरे राज्य या एक देश से दूसरे देश में जाकर सत्र से सबद्ध छात्रावासों में सुविधापूर्वक रह सकते हैं। समाजसभा के क्षेत्र में कार्यकर्त्ता को इस प्रकार की संस्थाओं और संगठनों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

बालकों, किशोरों और तरुणों की संस्थाओं में जो भी व्यवस्था होनी चाहिए वह स्वावलम्बन और स्वशासन (Selfhelp and Self-government) के आधार पर। ऐसा होना इसलिए स्वावलम्बन और आवश्यक है कि वे प्रारम्भ से ही अपने आपको स्वशासन सम्हालने और अपने पैरों पर खड़ा होने की प्रवृत्ति अर्जन करें।

इंग्लैंड, अमेरिका आदि जिन देशों में तरुण-समितियों और युवक-संघों का संगठन बहुत व्यापक रूप से हुआ है वहाँ पर विधिवत् प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की गई है। यह प्रशिक्षण मुख्यतः नेतृत्व का प्रशिक्षण (Training in Leadership) होता है, और एक दिन से लेकर पन्द्रह दिन अथवा एक महीने तक के कोर्स दिये जाते हैं। इन कोर्सों में अध्यापकों, सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं और तरुण तथा युवक-दलों के नेताओं को संगठन-संबंधी मुख्य बातों का ज्ञान कराया जाता है। उन्हें यह बनलाया जाता है कि आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की भावना किस प्रकार लानी चाहिए; भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में शिष्टता और भद्रतापूर्वक व्यव-

हार कैसे करना चाहिए; तथा नेतृत्व के लिए जिन-जिन गुणों की आवश्यकता है उनका अभ्यास कैसे हो। इस संबंध में शायद यह कहना अप्राप्तिक न होगा कि बहुत अशो में “नेता जनमता है, बनता नहीं” (A leader is born, not made)। पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है। जिस व्यक्ति में नेतृत्व की सम्भावना है उसकी उस सम्भावना को विकसित करने के लिए भी प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

अब प्रश्न यह है कि लड़के-लड़कियों का सम्मिलित संगठन होना चाहिए अथवा पृथक्। बहुत से प्रगतिशील पश्चात्य देशों में इस प्रकार के प्रश्न का अधिक महत्त्व नहीं है, क्योंकि उन देशों में सम्मिलित तरुण-तरुणियों तथा युवक-युवतियाँ में सामान्यतः संगठन इतना अधिक मिलना-जुलना होता रहता है कि सम्मिलित (mixed) संगठनों को विशेष आशंका की दृष्टि से नहीं देखा जाता। फलतः उन देशों में पृथक् सस्थाएँ जितनी अधिक प्रचलित हैं उतनी सम्मिलित सस्थाएँ भी। भारतवर्ष और उसकी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि सामान्यतः बारह वर्ष तक के बालक-बालिकाओं का सम्मिलित संगठन होना चाहिए; किन्तु उससे ऊपर के बालकों और बालिकाओं की सस्थाएँ और संगठन पृथक्-पृथक् हों तो अच्छा है। इस संबंध में कोई सार्वभौम निर्देश नहीं दिया जा सकता, क्योंकि विभिन्न और विंशप परिस्थितियों में तरुणों और तरुणियों के सम्मिलित दल वाञ्छनीय ही नहीं, अनिवार्य भी हो सकते हैं।



परिच्छद बीस

सायंकालीन विद्यालय—कार्य

Evening Continuation School

पिछले परिच्छेदों में वयस्क-साक्षरता-वर्ग (Literacy Class) की चर्चा की गई है । इस परिच्छेद में सायंकालीन विद्यालय (Evening School या Evening Continuation School)

सायंकालीन के संबंध में कुछ आवश्यक बातें बताई जायेंगी । हमारे देश विद्यालय की की जो सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति है उसको देखते आवश्यकता हुए हमें मानना पड़ेगा कि जब तक किसी स्तर अथवा उम्र

तक अनिवार्य शिक्षा का कानून देश में जारी नहीं होता,

तब तक, और उसके जारी होने पर भी कुछ वर्षों तक, सायंकालीन विद्यालय की आवश्यकता बनी रहेगी । जो छोटे-छोटे बच्चे परिवार की सीमित आर्थिक आय में हाथ बंटाने के लिए गाय, बैल, भैंस चराने, खेतों पर मजदूरी करने तथा माता पिता के काम में सहायता पहुँचाने के लिए दिन में बाध्य किये जाते हैं, उनके लिए सायंकालीन विद्यालय की व्यवस्था करनी ही होगी ।

ये सायंकालीन विद्यालय दो प्रकार के होंगे । एक होगा किसी दिन के विद्यालय से संबद्ध प्रसृत विद्यालय (Continuation School); और दूसरा होगा विधिविहित स्वतंत्र सायंकालीन विद्यालय । सायंकालीन प्रसृत विद्यालय कोई स्वतंत्र विद्यालय नहीं होगा; अपितु विद्यालय के जो प्राइमरी स्कूल, वेसिक स्कूल, मिडल स्कूल अथवा हाई प्रकार स्कूल पहले से चल रहा हो, उसी की सायंकालीन संस्थिति (Evening Shift) होगी; और पढ़ाई का सिलसिला, पाठ्यक्रम, परीक्षाविधि आदि सभी ठीक उस दिन-वाले स्कूल की तरह ही होंगे । संभव है पढ़ाई के घंटे कुछ कम करने पड़ें । इस प्रकार की सायंकालीन सस्थितियाँ (Sessions) कई जगह अभी भी चल रही हैं । उदाहरणतः जमशेदपुर में जो के० एम० पी० एम० हाई स्कूल है वह विधिवत् दिन में भी, और रात में भी चलता है । वही विधि, वही व्यवस्था । इतना तो निश्चित है कि चाहे विधि-व्यवस्था कितनी भी सुन्दर हो, सायंकालीन सस्थितियों में कुछ त्रुटियाँ अवश्य रह जायँगी, विशेषतः खेलकूद, शारीरिक व्यायाम आदि की दिशा में । किन्तु जहाँ आबादी की वृद्धि साधारण अनुपात से अधिक हो, या जमशेदपुर-जैसे उद्योग प्रधान सघन शहरों में, मिडल तथा हाई स्कूलों की सायंकालीन सस्थितियों को एक अनिवार्य युगधर्म अथवा परिस्थिति-धर्म मानना होगा । प्राइमरी स्कूलों और वेसिक स्कूलों के सत्र में तो हम यह कहेंगे कि इस प्रकार के प्रत्येक स्कूल की सायंकालीन सस्थिति होनी चाहिए, क्योंकि जब तक ऐसा नहीं होगा हम हजारों-हजार ऐसे बालक-बालिकाओं की विधिवत् पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था नहीं कर सकेंगे जो दिन में परिवार की आर्थिक परिस्थिति के कारण अर्जन करने को बाध्य होते हैं, और दिन के स्कूलों में पढ़ने से लाचार होते हैं ।

अब प्रश्न यह है कि जो विद्यालय स्वतंत्र रूप से सायंकाल में ही चले उनकी क्या रूपरेखा होगी । इस प्रकार के विद्यालयों को हम तीन कोटियों में विभाजित कर सकते हैं । (क) प्राइमरी स्कूल, (ख) हाई स्वतंत्र सायंकालीन स्कूल (जिसमें मिडल स्कूल की कक्षाएँ भी सम्मिलित विद्यालय रहें) और (ग) उद्योग विद्यालय । इनका समय लगभग ५ बजे से ८ बजे तक होगा और इन्हीं तीन घंटों में इस प्रकार का पाठ्यक्रम समाविष्ट करना होगा जिसमें छात्रों और वयस्कों को

भाषा तथा साहित्य, गणित तथा सामान्य विज्ञान को योग्यता दी जा सके। योग्यता का मापदण्ड वही होगा जो उस कोटि के अन्य विधिविहित विद्यालयों में होता है; किन्तु उन विद्यालयों के सभी विषय पढ़ाने की आवश्यकता नहीं होगी। सायकालीन विद्यालयों में हस्तकला तथा भिन्न-भिन्न उद्योगों को प्रमुख स्थान देना होगा। हाइ स्कूल में ऐसी अनेक प्रकार की कलाओं तथा उद्योगों की व्यवस्था करनी होगी जिनके द्वारा छात्र अपनी जीविका अच्छी तरह अर्जित कर सकें। इनमें से कुछ के नाम प्रस्तुत किये जा रहे हैं—लोहे का काम, लकड़ी का काम, दर्जी का काम, कताई-बुनाई, न्वेती का काम (विशेषतः ग्रामीण वातावरण में), टाइपराइटिंग, प्राथमिक चिकित्सा और शुश्रूषा, गृह-विज्ञान (विशेषतः स्त्रियों के लिए), कपड़े की छपाई, मार्बल (marble) बनाना तथा जिल्दबन्दी, फोटोग्राफी, चित्रकला, संगीत, वेत का काम, चटाई, टोकरी आदि बनाने का काम, सीने-पिरोने और कसीदे का काम (विशेषतः स्त्रियों के लिए)।

ऊपर बहुकला-उद्योग-विद्यालय की चर्चा की गई है। इसे अंगरेजी में (Polytechnic) भी कहते हैं। हाइ स्कूल के हस्तकला आदि के प्रायः सभी कार्य, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका बहुकला उद्योग है, उद्योग-विद्यालय की प्रमुख विशेषता रहेंगे। अन्तर यह विद्यालय होगा कि उद्योग-विद्यालयों में भाषा, गणित आदि सैद्धांतिक विषयों को पढ़ाना आवश्यक नहीं होगा इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विशेष कलाओं—यथा, गृह-निर्माण-विज्ञान, वाणिज्य, व्यवसाय, छोटे-छोटे यंत्रों द्वारा व्यापार की वस्तुओं का निर्माण आदि का प्रशिक्षण तथा व्यावहारिक ज्ञान इन विद्यालयों में देना होगा।

दूसरी और तीसरी कोटि के विद्यालयों में पढ़नेवाले छात्रों के लिए अलग पाठ्यक्रम तथा उनमें उत्तीर्ण होनेवालों के लिए अलग प्रमाणपत्र का विधान करना होगा। चेष्टा करनी होगी कि इन पाठ्यक्रमों तथा प्रमाणपत्रों को स्थानीय सरकार स्वीकृत करे। प्रथम कोटि के विद्यालयों के जो प्रमाणपत्र होंगे, वे ठीक वही होंगे जो उस कोटि के पाठ्यक्रमों के दिन-के विद्यालयों की परीक्षाओं के लिए स्वीकृत होंगे। परीक्षार्थियों को भी सरकार की ओर से वे सारी सुविधाएँ मिलनी चाहिए जो दिन के स्कूल के परीक्षार्थियों को मिली हुई हैं।

उस परिच्छेद में जो विचार प्रकट किये गये हैं उनके आधार पर दिन के विद्यालयों के साथ-साथ यदि रायकालीन विद्यालयों का व्यापक रूप से राष्ट्र में लगठन किया जाय, तो इसमें कोई सदेह नहीं कि हम निरक्षरता को दूर करने तथा नागरिकों के बौद्धिक एवं सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ व्यावहारिक स्तर को ऊँचा उठाने में ठोस कदम बढ़ा सकेंगे। विद्यालयों की उपयोगिता पश्चिमीय उन्नत देशों में इस आधार पर अनेकानेक सस्थाएँ चुली हुई है, पुरुषों के लिए तथा स्त्रियों के लिए। इन सस्थाओं में बहुत बड़ी सख्या ऐसी सस्थाओं की है जिनमें योग्यता प्राप्त कर अनेकानेक वयस्क जीविकार्जन के साथ-साथ विश्वविद्यालय की उपाधियों के लिए तैयारियाँ करते हैं और उन्हें समयक्रम से प्राप्त भी कर लेते हैं।



परिच्छेद इकीस

पुस्तकालय, वाचनालय तथा संग्रहालय

वयस्कशिक्षा अथवा समाज-शिक्षा के इतिहास का विद्यार्थी यह अच्छी तरह जानता है कि पुस्तकालयों की प्रगति के साथ-साथ सामाजिक शिक्षा की प्रगति अन्योन्याश्रय भाव से सलग्न है। अतएव पुस्तकालय और कोई भी सामाजिक शिक्षा ऐसी नहीं हो सकती जिसमें समाजशिक्षा पुस्तकालय और वाचनालय की योजना सम्मिलित न हो। केन्द्र में यदि सिद्धांत रूप से यह कहा जाय कि कोई भी समाज-अन्योन्याश्रय शिक्षा-केन्द्र पुस्तकालय के बिना पूर्ण नहीं है, और कोई भी पुस्तकालय अथवा वाचनालय तबतक सार्थक नहीं है जबतक उसके द्वारा समाजशिक्षा-कार्य नहीं होता,—तो इसमें लेशमात्र अनौचित्य नहीं है। पुस्तकालय अथवा वाचनालय का होना कई दृष्टियों से अनिवार्य है। शिक्षक अथवा कार्यकर्त्ता को पुस्तकालय की आवश्यकता इसलिए है कि वह भिन्न-भिन्न पुस्तकों से ज्ञान एकत्र कर उसे अपने शिक्षार्थियों को दे सके; पत्र-पत्रिकाओं से समाचार का मधु-संचय करके उससे उन्हें तृप्त कर सके। इसके अतिरिक्त यदि पुस्तकालय और वाचनालय में लोग नियमित रूप से पढ़ने आते हों, तो इसका बड़ा सुन्दर प्रभाव शिक्षार्थियों पर पड़ेगा।

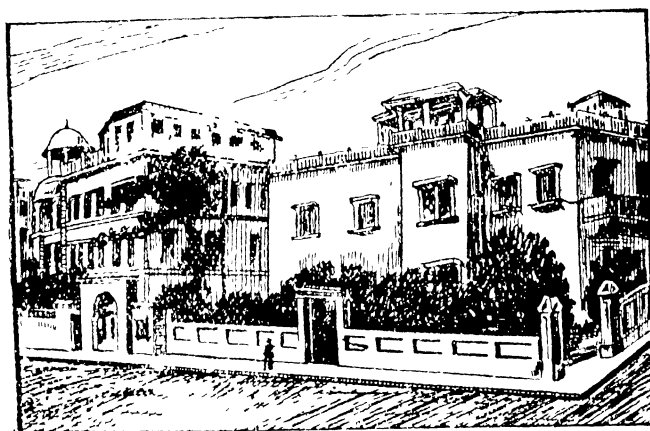
प्रत्येक पुस्तकालय के साथ न केवल उसकी प्रबन्ध-समिति होनी चाहिए, बल्कि एक विशेषज्ञों की भी समिति होनी चाहिए जो आसपास की जनता की मनोवृत्तियों का अध्ययन करती रहे। पुस्तकालयाध्यक्ष को विशेषज्ञ-समिति इस प्रकार का सामान्य ज्ञान होना चाहिए कि यदि कोई व्यक्ति किसी विशिष्ट विषय पर पुस्तक चाहता हो, तो उसे उचित निर्देश दे सके। उसमें यह क्षमता होनी चाहिए कि पुस्तकों के वैज्ञानिक पद्धति से वर्गीकरण और उनके समुचित वितरण की व्यवस्था कर सके।

प्रत्येक केन्द्र के साथ एक चलता-फिरता पुस्तकालय (Circulating Library) होना चाहिए। इस पुस्तकालय के द्वारा घर-घर पुस्तकें पहुँचाई जायँ, विशेषतः दूरस्थ स्त्रियों को, जो दूरी के कारण पुस्तकालय में नहीं आ सकती। उन निकटस्थ महिलाओं के लिए पुस्तकालय भी जो पर्दे में रहती हों चल-पुस्तकालय की आवश्यकता है। पुस्तकालय निरा पुस्तकालय नहीं होना चाहिए बल्कि उसमें कुछ मनोरंजन की सामग्री भी होनी चाहिए। यह सामग्री लोगों को स्वतः पुस्तकालय की ओर आकर्षित करेगी। प्रत्येक पुस्तकालय को नियमित रूप से मुख्य समाचारों और ज्ञातव्य विषयों को सरल तथा सुन्दर अक्षरों में ब्लैकबोर्ड आदि पर लिखवा कर रखने की व्यवस्था करनी चाहिए, और किसी व्यक्ति को नियमित रूप से उन्हें पढ़ सुनाना चाहिए, तथा आवश्यकतानुसार कुछ टीका-टिप्पणी भी करनी चाहिए। यदि चलते-फिरते पुस्तकालयों का अच्छा संगठन सघन क्षेत्र में करना हो तो उचित होगा कि मोटर वैन (Van) और साइकिलों की व्यवस्था की जाय। केन्द्रीय चलते-फिरते पुस्तकालय से मोटर वैन के द्वारा शाखा पुस्तकालयों को, और शाखा पुस्तकालयों से साइकिलों द्वारा घर-घर, पुस्तकें पहुँचाई जायँगी। तात्पर्य यह कि सामाजिक शिक्षा की योजना में पुस्तकालय और वाचनालय का अनिवार्य स्थान है।

अब रही संग्रहालयों की बात। संग्रहालयों को अंगरेजी में 'म्यूजियम' (Museum) कहेंगे। समाजशिक्षा के कार्यकर्त्ताओं को भिन्न प्रकार के संग्रहालयों का आयोजन करना चाहिए,—अच्छे बीज, अच्छे संग्रहालय अन्न, सुन्दर साग-सब्जी, पुष्ट तथा बलिष्ठ पशु, कला तथा कारीगरी के नमूने, भिन्न-भिन्न विभागों से प्रकाशित चार्ट, साहित्य आदि, स्कूलों के लड़के-लड़कियों द्वारा बनाई हुई कला की वस्तुएँ और

मौडल (Model) —ये अनेकानेक ऐसी सामग्रियाँ हैं जिनके लिए संग्रहालय अथवा प्रदर्शनी के आयोजन हो सकते हैं। इन आयोजनों को रचते समय सर्वदा यह ध्यान में रखना चाहिए कि इनका लक्ष्य शिक्षणात्मक हो। संग्रहालयों और प्रदर्शनों के विशेष अवसर पर ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि उन-उन विषयों के विशेषज्ञ वहाँ विद्यमान हों और दर्शकों को सरल भाषा में समझा-बुझा सकें। भारतवर्ष में अनेकानेक प्रदर्शनियों और मेलों का आयोजन आए दिन हुआ करता है। इनसे जनता के मस्तिष्क पर सामूहिक रूप से प्रभाव पड़ता है, नए आविष्कारों तथा उन्नत उत्पादनों का प्रचार होता है तथा उन्हें प्रोत्साहन मिलता है।

कार्यकर्त्ता को चाहिए कि वह प्रत्येक केन्द्र में, प्रत्येक शिक्षण-संस्था में, प्रत्येक पुस्तकालय में, एक छोटा-मोटा सुन्दर सजा-सजाया संग्रहालय स्थापित करे या करावे। ऐसे संग्रहालय की यह विशेषता होनी चाहिए कि वह स्थानीय कृषि, उद्योग-धंधों अथवा कला का प्रतिनिधित्व करे।



परिच्छेद बाईस

समाज-भवन या समाज सदन

पिछले परिच्छेदों में समाजशिक्षा के संमठन की जो रूपरेखा प्रस्तुत की गई है उसका समुचित स्वरूप हमारे सामने तबतक उपस्थित नहीं हो सकता, जबतक गाँव में अपना समाज-भवन न हो।

समाजभवन आरम्भ में यह समाज-भवन भले ही किसी शिक्षणसंस्था का महत्त्व या सार्वजनिक संस्था का अंग बन कर रहे, किन्तु क्रमशः इसका स्वतंत्र अस्तित्व होना आवश्यक है। जिस गाँव में जनता के सहयोग से तथा आंशिक सरकारी साहाय्य से स्वतंत्र समाज-भवन बन सके, उसको सामाजिक दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक जागरूक मानना चाहिए।

किसी भी भवन में निम्नलिखित कमरे, हॉल आदि होने चाहिए:—
एक बड़ा सभा-भवन;

समाजभवन पुस्तकालय का कमरा;

के श्रंग वाचनालय का वरामदा (परिस्थिति-विशेष में वाचनालय सभा-भवन में भी रह सकता है);

संगीत वाद्य आदि का कमरा;

उद्योग-कक्ष अथवा वरामदा (इसमें चर्खा, कर्षा, बड़ईगिरी अथवा लोहे के काम के सामान्य यंत्र, स्थानीय उद्योग-धंधे के लिए आवश्यक यंत्र तथा चित्रकला आदि के सामान उपस्थित रहने चाहिए);

महिलाओं के लिए विशेष कमरा;

साक्षरता-वर्ग के लिए वरामदा;

व्यायामशाला; कमरे के अन्दर के खेल (Indoor Games) के लिए वरामदा;

भंडारगृह;

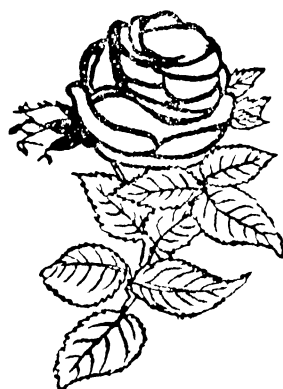
सभा-भवन का कार्यालय;

जलपानगृह;

खुला रंगमंच;

सभा-भवन के इर्द-गिर्द खुले तथा पृथक् स्थान में शौचालय, मूत्रालय आदि का रहना आवश्यक है। खेल-कूद आदि की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

अलग पृष्ठ पर हम एक मानचित्र दे रहे हैं जो निदर्शनमात्र है, और जिसके आधार पर स्थान, परिस्थिति तथा प्राप्य धनराशि के अनुकूल समाज-भवन का निर्माण और उसका विकास तथा परिवर्द्धन किया जा सकता है।



परिच्छेद तेईस

मनोरंजन तथा लोक-रङ्गमंच

उपनिषदों में ब्रह्म के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए उसे सत्, चित् आनन्द (सच्चिदानन्द) की सजा दी गई है, और अनेकानेक प्रसंगों में तो “आनन्दम् ब्रह्मोति व्यजानात्” कह कर ब्रह्म को आनन्द सौन्दर्यतत्त्व और का पर्यायवाची बताया गया है। आजकल की नवीन आनन्दानुभूति शब्दावली में ब्रह्म को ‘सत्य शिव सुन्दरम्’ कहा जाती है। वस्तुतः “सुन्दरम् ब्रह्म” और “आनन्दम् ब्रह्म” में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। यह प्रसंग सूत्ररूप में यहाँ इस उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है कि हम यह सिद्धान्त समझे कि प्रत्येक मानव—, ब्रह्म का आंशिक रूप होने के नाते, आनन्द अथवा सौन्दर्यतत्त्व से युक्त है। संसार में कोई भी ऐसा मानव नहीं है जिसमें सौंदर्य की अनुभूति अथवा आनन्द की प्राप्ति की आकांक्षा न हो। उसी प्रकार यह भी एक व्यापक सत्य है कि प्रत्येक मानव में सौंदर्यानुभूति तथा आनन्दप्राप्ति की प्रवृत्ति अन्तर्निहित है। किन्तु होता यह है कि हममें से अनेक व्यक्तियों का जीवन कुछ ऐसा असन्तुलित और व्यस्त बन जाता है कि हमारी प्रकृतिगत आनन्दानुभूति की चेतना बिना विकसित हुए ही कुण्ठित हो जाती है। परिस्थितियाँ भी कभी-कभी हमारे इस प्रकार के कुण्ठित व्यक्तित्व की प्रेरक होती हैं।

गनेरू मुसहर ज्योंही प्रातःकाल आँखें खोलता है, अपने दरवाजे पर महाजन या जमींदार के प्यादे को खड़ा पाता है। प्यादे की गालियाँ ही उसका उद्बोधन-गान बनती हैं। दिन भर महाजन के खेत में श्रानन्द के मजदूरी करता है, फावड़े चलाता है, गहरे कुएँ से ढेकुल शुष्क स्रोत चलाकर कट्टे का कट्टा खेत पटाता है। दोपहर को सूखे चबने और सत्तू खाकर ज्योंही दम मारना चाहता है, कि यमदूत-सा प्यादा फिर सिर पर सवार ! फिर वही फावड़ा और वही ढेकुल ! जब सूर्य भगवान इस नृशंसता तथा अत्याचार को देखकर न सह सकने के कारण आँखें बन्द कर लेते हैं, तो बेचारा गनेरू अपनी टूटी-फूटी झोपड़ी में पहुँचता है—दया की भीख मुट्ठी भर चना या जनेरा लेकर। यही मुट्ठी भर चना उसके बाल-बच्चों का एकमात्र सम्बल है। इस सम्बल से भूख की तृप्ति क्या होगी, भूख खूँखार बाधिन की-सी और अधिक प्रचण्ड हो जाती है। अब आप ही बताइए कि गनेरू के जीवन में आनन्द के स्रोत के प्रवाहित होने की लेशमात्र भी गुंजाइश है ? आप उसे कहते हैं कि “पढो”। गनेरू पढे तो कैसे ? उसमें क्या कोई महत्वाकांक्षा रह गई है ? वह एक निर्जीव यन्त्र के समान अपने दुर्बल जीवन का भार जो ढो रहा है !

हाँ, किन्तु इस दयनीय परिस्थिति में भी, हम गनेरू के जीवन की हरियाली के लिए, उनकी सूखी टहनियों में गरमता लाने के लिए कुछ कर सकते हैं। आप समाजशिक्षा के कार्यक्रम के मिलसिंठे मनोरंजन का में सबसे पहले लोकसंगीत, कीर्तन, लोकनृत्य अथवा महारव लोकनाट्य जैसे मनोरंजन के माधवों की व्यवस्था कीजिए। इन माधवों में गनेरू के मृतवत् प्राण फिर से कुछ देर के लिए हरे हो जायेंगे। जब उसमें कुछ उत्सुकता और आकांक्ष उत्पन्न होगी तो वह आपके पढ़ने-लिखने के कार्यक्रम में भी, सम्भव है, शामिल हो जाय।

मनोरंजन की दिशा में कार्य करनेवाले के सामने अनेकानेक माध्यम हैं जिनमें वह जनता का सहयोग पा सकता है, और मनोरंजन के जिनके द्वारा वह उनके सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठा माध्यम सकता है। कुछ प्रमुख माध्यम निम्नलिखित होंगे—

(क) संगीत (ऐकिक तथा सामूहिक);

(ख) वाद्य;

(ग) नृत्य;

(घ) स्वांग तथा शिष्ट परिहास;

(ङ) पुतली-नृत्य;

(च) नाटक (एकांकी, अनेकांकी, संगीतनाट्य, मूकनाट्य आदि) ।

मनोरजन के ये उपर्युक्त साधन या माध्यम या तो स्वतंत्ररूप से अपनाये जा सकते हैं, या गांव के चौपाल का अंग मानकर उसमें समाविष्ट किये जा सकते हैं ।

मनोरजन के साधनों की चर्चा करते समय लोक-रंगमंच की चर्चा आवश्यक है । पारसी नाटक कपतियो और शहरो में होनेवाले नाटकों की रंगविरंगे वस्त्रों से सुसज्जित बहुमूल्य रंगमंच का इतना लोक रंगमंच अधिक प्रभाव हम पर पड़ गया है कि जब गांव में भी रंगमंच-निर्माण का प्रश्न उठता है, तब हम उन्हीं बहुमूल्य साधनों अथवा प्रसाधनों की चिन्ता में पड़ जाते हैं । हम यह भूल जाते हैं कि प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में, प्रकृति की ही पृष्ठभूमि पर, किसी बड़े वटवृक्ष अथवा पीपल वृक्ष की छाँह में, गांव की सुलभ साधारण वस्तुओं के साहाय्य से, जो रंगमंच तैयार किया जा सकता है, उसमें जो आकर्षण और नैसर्गिक सुन्दरता होगी, वह कभी भी कृत्रिम और अतिरजित रंगिनियों में संभव नहीं है । गांव में मिलनेवाली चटाइयों को एक साथ सुन्दरता से सजाकर और उनमें सरल चित्रों को अंकित कर उनमें हम पृष्ठभूमि अथवा पखो (Wings) का काम ले सकते हैं । चित्रविचित्रित मंगल-कलश, उनपर जलते हुए दीप, आभ्र और अशोक के पत्तों के वन्दनवार, उन-उन स्थानों में सुलभ रंगविरंगे फूल, विविध रंगों में रंगे हुए सन तथा जूट—ये अनेकानेक ऐसे सस्ते तथा सुप्राप साधन हैं जिनके सहारे अत्यन्त सुन्दर तथा आकर्षक रंगमंच तैयार किया जा सकता है ।

बाजों के चुनाव में भी हमें शहरी मनोवृत्ति को त्यागना होगा । बहुमूल्य हारमोनियम, इसराज, सितार, तबले कोई आवश्यक नहीं । ढोल, बांसुरी,

झाल, मजीरा—ये किसी भी संगीत अथवा नृत्य का साथ
बाजों का देने के लिए पर्याप्त हैं । तारवाले बाजे भी जो बहुत
चुनाव सस्ते बन सकते थे, और जिनका उपयोग अब दिनप्रति-

दिन कम होता जा रहा है, पुनरुज्जीवित तथा प्रचलित किए जा सकते हैं। घड़े से तबले का काम लेना भी कलाकारों के लिए संभव है। आठ आने दस आने के अन्दर वास की पटरियों से बने हुए काठतरंग (काष्ठतरंग) से मधुर संगीत की ध्वनि निकाली जा सकती है। तात्पर्य यह कि जहाँ बहुमूल्य बाजों की व्यवस्था हम आसानी से कर सकें वहाँ हम उनका तिरस्कार भले न करें, किन्तु हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि ऐसे बाजों से मनोरजन का विधान करें जो मस्ते तथा मुलभ हो और जिनका ग्रामीण जीवन के साथ घनिष्ठ संबंध हो।

जो सरकार अथवा संस्था जनता के सांस्कृतिक जीवन को परिष्कृत एवं सरस बनाने की चेष्टा करे उसका यह भी कर्तव्य होगा कि वह कलाकारों के ऐसे दल का संगठन करे जो घूम-घूम कर जनता मोदमंडली के साथ सम्पर्क स्थापित करे, गाँव में छिपे हुए कलाकारों की प्रतिभा को विकसित करे, गाँव-गाँव में कीर्तन, भजन, संगीत, नाटक-मंडलियों का संगठन करे और स्वयं अपनी कला के प्रदर्शन के द्वारा संगीत, नृत्य, नाटक का अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करे। वे जहाँ जायें वहाँ खुले लोकरंगमंच के निर्माण के लिए लोगों को प्रोत्साहित करें, उन्हें दो-चार-दस संगीत सुन्दर लय-ताल के साथ सिखा दें और यदि संभव हो तो नाट्याभिनय के लिए भी कुछ सामग्री उन्हें दे दें। बिहार में समाज-शिक्षा-योजना के अन्तर्गत इस प्रकार के अनेक कलाकारों के दल नियुक्त हैं जिन्हें 'मोदमंडली' अथवा 'यात्रापाटी' कहते हैं। ये कलाकार गाँव-गाँव में घूम-घूम कर कला का प्रदर्शन करते हैं और इन प्रदर्शनों में ध्यान रखते हैं कि जहाँ शिष्ट तथा उन्नत रंगमंच की कुछ विशेषताएँ ग्रामीण रंगमंच में हों, वहाँ साथ-ही-साथ गाँव के परम्परागत लोकनृत्य, लोकगीत अथवा लोकनाट्य का जीवन्त सौंदर्य तथा भाव-भंगिमा की रंगीनी भी पूरी मात्रा में विद्यमान रहे।

बिहार के शिक्षा-सचिव श्री जगदीश चन्द्र माथुर ने अपने एक लेख में मोदमंडली के लिए निर्देश के रूप में तीन प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रम की रूपरेखा उपस्थित की है जो सारांशतः यहाँ दी जाती है।

सांस्कृतिक कार्यक्रम के तीन प्रकार: --

कार्यक्रम १

१. सम्मिलित संगीत (वाद्य सहित) ।
२. ऋतुनृत्य (प्रत्येक सदस्य किसी ऋतु की भूमिका में रगमंच पर उपस्थित होगा और नृत्य अथवा संगीत के द्वारा उस ऋतु की सूचना देगा जिसकी भूमिका में वह उपस्थित हुआ है) ।
३. लगभग ४५ मिनट अथवा १ घंटे का एक नाटक ।
४. ऐकिक संगीत (Solo) ।
५. किसी महापुरुष अथवा महाकाव्य से कथा का वाचन अथवा मूक-नाट्य द्वारा अभिनय ।
६. प्रहसन ।
७. सामूहिक संगीत (राष्ट्रिय गान अथवा अन्य प्रचलित महत्त्वपूर्ण संगीत) ।

कार्यक्रम २

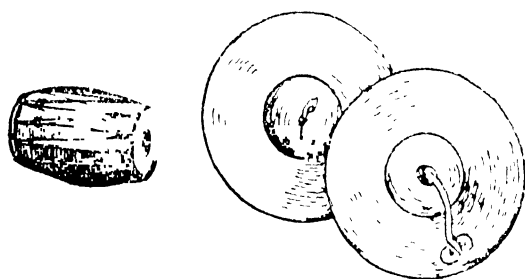
१. सामूहिक संगीत ।
२. स्थानविशेष अथवा प्रदेशविशेष का लोकनृत्य ।
३. घंटे डेढ़ घंटे का एक नाटक ।
४. किसी प्रसिद्ध ग्रंथ अथवा पत्र-पत्रिकाओं से चुने हुए विषयों के आधार पर संवाद ।
५. ललित संगीत ।
६. राष्ट्रिय संगीत (सामूहिक) ।

कार्यक्रम ३

१. सामूहिक गीत ।
२. महात्मा गांधी के जीवन से चुने हुए प्रसंगों का कथात्मक निरूपण ।
३. पचास मिनटों का एक नाटक, मूक अभिनय अथवा स्वाग ।
४. पर्वों और त्योहारों पर गाये जाने वाले संगीत ।
५. दो व्यक्तियों में परस्पर लोकोक्तियों, अन्त्याक्षरी आदि के आधार पर वाद-प्रतिवाद ।
६. राष्ट्रिय संगीत (सामूहिक)

लोकरंगमंच और उसके अभिनय का निर्देशन करनेवालों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रंगविरंगे बहुमूल्य परदों, वस्त्राभूषणों, सज्जा-
 (Make-up) प्रसाधनों के अभाव की पूर्ति के
 स्थानीय लिए कभी-कभी उन रंग-विरंगे वस्त्रों और केशविन्यासादि
 प्रसाधनों की के प्राकृतिक प्रसाधनों की आवश्यकता होगी जो ग्रामों
 उपयोगिता में पर्वों और त्योहारों के अवसर पर आमोद-प्रमोद मनाने
 के लिए व्यवहार में आते हैं। साथ ही साथ अभिनय
 करनेवाले पात्रों की भाव-भंगिमा, मुद्रा तथा चेष्टा-प्रचेष्टा में ऐसी सजीवता
 होनी चाहिए कि वे भी दर्शकों के चित्त का आकर्षण बने और उसमें
 एकरसताजन्य शिथिलता न आने दे।^१

१ इस परिच्छेद को लिखने में जनवरी १९५३ के 'बिहार थियेटर'
 में प्रकाशित श्री जगदीशचन्द्र माथुर के लेख, "Organising the
 Folk Theatre" से सहायता ली गई है।



परिच्छेद चौबीस

सेमिनार (Seminar) : क्या और क्यों

पिछली दो दशाब्दियों में अमेरिका तथा इंग्लैंड ने विचार-विमर्श के लिए सेमिनार-प्रणाली का विकास किया है। इंडियन ऐडल्ट एडुकेशन एसोसिएशन (Indian Adult Education Association) सेमिनार नामक प्रमुख समाज-शिक्षा-सबधी सस्था प्रतिवर्ष राष्ट्रीय अथवा सेमिनार करती है। अन्य-अन्य देश भी सेमिनारों का समस्या-गोष्ठी आयोजन कर रहे हैं। आये दिन राष्ट्रसंघ के तत्त्वावधान में अनेक (अन्तराष्ट्रीय) सेमिनारों का भी सगठन तथा मंचालन होता रहा है। अतः आवश्यक है कि हम इसके संबंध में कुछ जानें और सेमिनार की पद्धति अपना कर अपनी योजनाओं पर विचार करें तथा उन्हें कार्यान्वित करें। हिन्दी में सेमिनार को “समस्या-गोष्ठी” कहा जा सकता है।

अब तक विचार-विमर्श के जो जो माध्यम हमारे यहाँ प्रचलित हैं, उन्हें हम मुख्यतः दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) सम्मेलन-प्रणाली (Conference method), (२) सेमिनार-प्रणाली (Seminar method)। सम्मेलन प्रणाली में दो-चार सम्मेलन तथा इने-गिने विशिष्ट विद्वान अथवा विशिष्ट विशेषज्ञ ही अपने सेमिनार इने-गिने विशिष्ट विद्वान अथवा विशिष्ट विशेषज्ञ ही अपने विचार उपस्थित करते हैं, और बहुत बड़ी जनसंख्या मूकश्रोता

के रूप में उनकी भाव-रश्मियाँ से आलोकित मात्र होती रहती हैं; वह विचार-विमर्श में कोई भी सक्रिय भाग नहीं लेती। अधिक से अधिक दो-चार चलते-पुर्जे “वावदूक” प्लेटफार्म पर अपनी वक्तृत्वकला का प्रदर्शन कर पाते हैं। इसके विपरीत समस्या-गोष्ठी अथवा सेमिनार की प्रणाली ऐसी होती है जिसमें सम्मिलित होनेवाला एक भी सदस्य ऐसा नहीं रहता जो अपने विचारों की देन सक्रिय रूप से न दे।

समस्या-गोष्ठी की कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करना उचित होगा। जिसे हम सेमिनार कहते हैं उसे अमेरिका में “कारखाना-प्रणाली (Workshop method) भी कहते हैं। सेमिनार की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह किसी विशिष्ट समस्या को लेकर चलता है। उदाहरणतः इडियन एंडल्ट एडुकेशन एसोसियेशन ने जिन समस्याओं के आधार पर सेमिनारों का आयोजन किया है उनमें से कुछ के नाम यों हैं :—

सेमिनार
की
विशेषता

- (१) नवसाधनों के साहित्य का निर्माण;
- (२) निरक्षरता-निवारण की कला;
- (३) समाजशिक्षा-कार्यकर्ता का प्रशिक्षण; आदि।

श्री डा० रंगनाथन ने तृतीय राष्ट्रीय सेमिनार के अवसर पर ‘सेमिनार’ की एक सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है जिसमें उन्होंने बतलाया है कि सेमिनार की प्रगति को हम छः क्रमिक स्तरों (Stages) में विभक्त कर सकते हैं^१। ये निम्नलिखित हैं :—

सेमिनार
के स्तर

- (१) समस्या की प्राथमिक रूपरेखा (Preliminary Working Paper)।
- (२) सेमिनार में भाग लेनेवाले सदस्यों की प्राथमिक देन (Preliminary Contribution)।
- (३) प्राथमिक रूपरेखा का प्रारम्भिक विस्तार तथा विश्लेषण (Detailed and Provoking Explanation)।
- (४) प्रारम्भिक सामूहिक अधिवेशन,— जिसमें मुख्य समस्या भिन्न-भिन्न उपसमस्याओं में विभाजित करके प्रत्येक उप-

१. ‘A Literature for Neoliterates’ : प्रकाशक Indian Adult Education Association, Delhi, पृष्ठ २७।

समस्या पर विचार-विमर्श के लिए सदस्यों के छोटे-छोटे दल सगठित कर दिये जाते हैं ।

(५) छोटे-छोटे दलों के द्वारा उपसमस्याओं पर विश्लेषणात्मक विचार-विमर्श ।

(६) अंतिम सामूहिक अधिवेशन (Plenary Session) जिसमें भिन्न-भिन्न उपसमस्याओं पर किये गये निर्णयों पर सम्मिलित विचार करके मुख्य समस्या संबंधी निर्णयों (Findings) का समन्वित रूप प्रस्तुत किया जाता है ।

प्रत्येक सेमिनार का एक निर्देशक (Director) रहता है । आवश्यकतानुसार उसका एक सहयोगी डाइरेक्टर (Associate Director) भी रहता है । सहयोगी निर्देशक तथा दल-नायकों (Group leaders) की एक निर्देशन-समिति (Steering Committee) रहती है, जो न केवल दिन भर की प्रगति और विभिन्न दलों के निणयों पर विचार करके उनको समन्वित रूप देती है, अपितु अगले दिन के कार्य की रूपरेखा भी निर्णय करती है । इन कार्यों के लिए सेमिनार का एक प्रधान मन्त्री (Secretary General) रहता है जो निर्देशन-समिति का मन्त्रित्व करता है । स्पष्ट है कि सेमिनार के लिए विधिवत् कार्यालय और उसके कर्मचारी होंगे, जिससे दिन भर की प्रगति तथा निर्णयों को टाइप कर के उन्हें दूसरे दिन के प्रारम्भ होने के पहले ही सदस्यों के यहाँ पहुँचा दिया जा सके ।

अधिक विस्तार न करते हुए हम यही कहना चाहेंगे कि सेमिनार-प्रणाली अनेक दृष्टियों से सम्मेलन-प्रणाली से अधिक उपयोगी है और कार्यकर्त्ताओं को अपनी-अपनी समस्याओं के समाधान के लिए छोटे अथवा बड़े पैमाने पर सेमिनारों का आयोजन करना चाहिए । सेमिनार कितने दिनों का हो, इस संबंध में कोई सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया जा सकता । किन्तु प्रायः एक सप्ताह से कम में किसी महत्वपूर्ण समस्या पर सेमिनार-प्रणाली से विचार-विमर्श करना बहुत कठिन है ।

परिच्छेद पचीस

सामुदायिक विकासक्षेत्र में समाजशिक्षा

स्वतंत्र भारत के नवनिर्माण के सिलसिले में स्थान-स्थान पर सामुदायिक विकासक्षेत्र चुनकर उनमें ऐसे प्रयोग किये जा रहे हैं जिनके द्वारा हम ग्रामीणों का सर्वांगीण विकास कर सकते हैं। विकास-योजना आशा है कि शीघ्र ही हमारे देश में कोई भी ऐसा भूभाग में समाजशिक्षा नहीं होगा जिसमें सामुदायिक विकास की योजना कार्या-का महत्त्व न्वित न की जाय और जो किसी-न-किसी विकास क्षेत्र (Development Block) के अन्दर न आ जाय। जहाँ सामुदायिक योजना के अन्तर्गत विकासक्षेत्र में कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य, बच्चों की शिक्षा आदि के लिए व्यवस्था की गई है, वहाँ साथ-ही-साथ, स्वभावतः, सामाजशिक्षा के लिए भी विशेष व्यवस्था की गई है;^१ और प्रायः

१. विकास योजना के मुख्य अंग निम्नलिखित हैं;—

(क) कृषि:—कम्पोस्ट गड्ढे; रासायनिक खाद; बीज; खेती के औजार; प्रदर्शन-क्षेत्र; पौधों का संरक्षण; नये फल-क्षेत्र; नये सब्जी-क्षेत्र; जीरों का वितरण।

प्रत्येक विकासक्षेत्र में कम-से-कम दो समाजशिक्षा कार्यकर्ताओं (Social Education Organisers) की नियुक्ति का विधान है, एक पुरुष और दूसरी महिला। वस्तुतः समाजशिक्षा वह आधारशिला है जिस पर सभी प्रकार के अभ्युदय का भवन खड़ा किया जा सकता है। देखा भी गया है कि सामुदायिक विकासयोजना के अन्तर्गत जितनी धनराशि सरकार द्वारा स्वीकृत की जाती है उसका कहीं-कहीं पूरा उपयोग नहीं हो पाता है। उसका मुख्य कारण यही है कि हम वहाँ के जनसमाज के हृदय में प्रवेश नहीं कर पाते हैं और उनकी चेतना को इस योग्य नहीं

- (ख) पशुचिकित्सा और पशुपालन:—मवेशियों की चिकित्सा; खोरहा रोग का नाद; पशुओं का कृत्रिम गर्भाधान; बधिया किये गये साँढे; उत्तम साँढों का वितरण; उत्तम पक्षियों का वितरण; पशुचारे के प्रदर्शन-क्षेत्र; हरे चारे की खतियाँ।
- (ग) सहकारिता तथा ग्रामपंचायत:—सहकारी समितियाँ; नामांकित सदस्य; एकत्रित हिस्से की रकम; व्यवसाय की रकम; ग्राम-पंचायतों का गठन।
- (घ) सिंचाई:—कुल सींचे हुए क्षेत्र; नए और मरम्मत किये हुए कुएँ; आहर और बाँध; खोदी गयी नहरें; बड़ी सिंचाई योजनाएँ।
- (ङ) वंजरभूमिकर्षण:—वंजर भूमि की आबादी।
- (च) स्वास्थ्य तथा ग्राम-सफाई:—पीने के नये कुँएँ का निर्माण; उड़ाहे गये कुँएँ; पानी-सोख गड्ढे; छिद्राकार पाखाने; पक्की नालियाँ; रोगियों की चिकित्सा; अस्पतालों का निर्माण।
- (छ) शिक्षा:—नए बुनियादी स्कूल; रूपान्तरित पुराने स्कूल; प्रविष्ट नये विद्यार्थी; स्कूलों के लिए प्राप्त भूमि।
- (ज) सामाजिक शिक्षा:—सामाजिक शिक्षाकेन्द्र; मनोरंजन केन्द्र; प्रदर्शनियों का संगठन, ग्राम रक्षादल।
- (झ) यातायात:—कच्ची सड़कें; पक्की सड़कें; छोटे पुल।
- (ञ) ग्रामीण उद्योग तथा शिल्प:—प्रशिक्षण केन्द्र; प्रशिक्षित कारीगर,
- (ट) निर्माण:—ग्रामीण घरों का निर्माण; सुधारे गये ग्रामीण घर।
- (ठ) जनता का योगदान:—भ्रम के रूप में; अर्थ तथा अन्य रूप में; सरकारी योगदान।

बना पाते हैं कि वे हमारी योजनाओं को सही-सही अर्थ में समझ सकें, उनसे पूरा-पूरा लाभ उठा सकें, और सरकार के साथ मुस्तैदी से पूर्ण योगदान देते हुए आगे बढ़ सकें।

विकास-क्षेत्र के समाज-शिक्षा-कार्यकर्ता को सामुदायिक विकास योजना और पंचवर्षीय योजना का महत्त्व अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

उसे इस बात की भी जानकारी होनी चाहिए कि भिन्न-समन्वय कार्य भिन्न पदाधिकारियों के बीच उसका क्या स्थान, और उसकी क्या उपयोगिता है। कम से कम चार प्रकार के अधिकारियों अथवा लोगों से उसको नित्य तथा सीधा संबंध स्थापित करना होगा। वे निम्नलिखित हैं :—

- (१) सामुदायिक विकास का उच्चतम स्थानीय पदाधिकारी (Project Executive Officer or Block Development Officer);
- (२) जनहित कार्यों के लिए नियुक्त अन्य पदाधिकारी (जन स्वास्थ्य अधिकारी, पशुचिकित्सा अधिकारी आदि);
- (३) ग्राम कार्यकर्ता (Village Level Worker);
- (४) ग्रामीण जनता (जिसमें पंचायत के मुखिया, सरपंच आदि भी सम्मिलित हैं)।

जिस प्रकार चादर के बुनने में फिरकी (Shuttle) बराबर अनवरत रूप से चक्कर देती हुई ताने और बाने के सूतों को समन्वित करती है और अनेकानेक सुन्दर बेलवूटों को उसमें जड़ती है, उसी प्रकार समाजशिक्षा-संगठनकर्ता विकास-क्षेत्र के अन्तर्गत जितने भी विभाग हैं, उनसे घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करे। जहाँ एक ओर वह इस प्रकार का घनिष्ठ संबंध स्थापित करेगा, वहाँ दूसरी ओर उसकी यह चेष्टा होगी कि वह गाँववालों को हर एक अधिकारी और हर एक विभाग से मिलनेवाली सुविधाओं का ज्ञान करावे, और उनमें इस प्रकार की उत्सुकता तथा जागरूकता लावे कि वे उन सुविधाओं का न केवल सामान्य उपयोग मात्र कर सकें, बल्कि अपने सक्रिय सहयोग द्वारा उनसे अधिक से अधिक लाभ उठा सकें। जनसाधारण में अपने कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों के प्रति चेतना लाना, और सदियों से घर की हुई जड़ता, आलस्य, अनवधानता, निष्क्रियता आदि को दूर करना समाजशिक्षा-संगठन-कर्ता अथवा कार्यकर्ता का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए।

इस प्रश्न यह है कि मान लीजिए कि किसी विकाम-क्षेत्र में एक कार्यकर्त्ता युक्ति हुई ;—सम्भव है कि उसे उस क्षेत्र की जानकारी पहले से नहीं है ; — तो फिर वह अपना कार्य कैसे आरम्भ करे ? उत्तर इस्याओं यह होगा कि उसका पहला काम है गाँवों की वस्तुस्थिति के तथा उनकी समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन । उसके प्रकार पास सर्वदा एक 'नोटबुक' रहनी चाहिए, और जब भी कोई ऐसी बात दीख पड़े जिसके प्रति उसे ध्यान देना है, वह तुरन्त अंकित कर ले । लगभग एक सप्ताह के विशिष्ट वैज्ञानिक न के पश्चात् वह इस योग्य हो जायगा कि वहाँ के लोगों की आर्थिक, रहन-सहन, भेद-प्रभेद, सामाजिक भावना, नैतिक स्तर, व्यक्तिगत सामाजिक गुण-अगुण, स्थानीय शिल्पकला तथा उद्योगधंधे आदि का यह परिज्ञान कर ले । इसके पश्चात् वह निम्नलिखित मुख्य कोटियों में क्षेत्र की समस्याओं का सकलन तथा अध्ययन करे:—

- (क) सफाई, स्वास्थ्य तथा चिचिस्ता-संबंधी समस्याएँ ।
- (ख) शिक्षा तथा साक्षरता-संबंधी समस्याएँ ।
- (ग) खेती तथा उद्योगधंधे आदि से संबद्ध आर्थिक समस्याएँ ।
- (घ) मुख्य सामाजिक कुरीतियाँ और तत्संबंधी समस्याएँ ।
- (च) सांस्कृतिक जीवन संबंधी समस्याएँ ।

कार्यकर्त्ता के लिए यह उचित होगा कि वह गाँववालों, विशेषतः मुखिया, और ग्राम-कार्यकर्त्ता, के साथ मिलकर प्रत्येक प्रकार की समस्या के संबंध में दो प्रकार के विवरण, तालिका^१ आदि तैयार करे । यागन एक तो वस्तुस्थिति-संबंधी, और दूसरी, वस्तुस्थिति के सुधार अध्ययन के लिए योजनाओं-संबंधी । तात्पर्य कि, पहले वह यह जान ले कि हमारी समस्याएँ क्या हैं और फिर उन समस्याओं के ण के लिए मिल-जुलकर भावी योजनाएँ तैयार करे । ये योजनाएँ त्रैमा-पाण्मासिक, वार्षिक, पंचवार्षिक आदि भी हो सकती हैं । योजनाओं के तैयार समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि वे अव्यावहारिक न हों, और प्रत्येक के सिलसिले में जो-जो विशेष अवस्था करनी हो उसका भी उल्लेख होना

समस्याओं के अध्ययन के लिए विस्तृत तालिकाएँ इस ग्रंथ के अंत में दी गई हैं ।

चाहिए। साथ ही साथ इस प्रकार की भी व्यवस्था होनी चाहिए कि जिससे प्रत्येक योजना की प्रगति को समय-समय पर आँका जा सके, और उस अंकन के आधार पर आवश्यकतानुसार गति-प्रगति को प्रेरित किया जा सके। ऊपर जो बातें कही गई हैं उनको सूत्ररूप में हम यों रख सकते हैं।

कार्यकर्त्ता की कार्यविधि

१. समस्याओं की वस्तुस्थिति का अध्ययन।

कार्यविधि का २. समस्याओं के समाधान की योजना का निर्माण।

संक्षिप्त उल्लेख ३. प्रत्येक योजना के लिए कुछ निश्चित तथा ठोस कार्यों का निर्देश।

४. योजनाओं की प्रगति की जाँच।

५. योजनाओं के कार्यान्वयन में ग्रामीणों तथा अधिकारियों की सहयोग-प्राप्ति के उपायों का अवलंबन।

एक बात जिसका ध्यान कार्यकर्त्ता को अवश्य रहना चाहिए वह यह है कि उसे ग्रामीणों के साथ ऐसा संबंध स्थापित करना चाहिए जिसमें उसके प्रति ग्रामवासियों का अपनापन हो। उसे कभी इस प्रकार अपनापन की आशाएँ और 'सब्जबाग' लोगों के सामने नहीं रखना चाहिए, जिनकी पूर्ति न हो सके; और जिसके फलस्वरूप जनता में न केवल नैराश्य की भावना होवे, अपितु कार्यकर्त्ता में अविश्वास भी।

योजनाएँ तैयार करते समय कार्यकर्त्ता के लिए अच्छा होगा कि पहले उन सीधी-सादी समस्याओं को ले, जिनका जनता के जीवन के साथ अधिक से अधिक और सीधा संबंध हो, जिनके प्रति जनता स्वयं समस्याओं पहले से उत्सुक अथवा चिन्तित हो। मान लीजिए कि का एक ऐसा गाँव है जो बरसात में चारों ओर पानी से घिर जाता है और लोगों को, विशेषतः स्त्रियों को, नित्य-क्रियाओं के लिए भी अत्यन्त असुविधा होती है।

यदि ऐसी दुःस्थिति हो और आधी मील की दूरी पर भी कोई डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की अथवा जननिर्माण विभाग (P. W. D.) की सड़क हो, तो कार्यकर्त्ता को इस समस्या और उसके समाधान को प्राथमिकता तथा प्रमुखता देनी चाहिए। ठीक बरसात के एक-दो महीने पहले से उसे इस समस्या को लेकर इसी धुन में लग जाना चाहिए, लोगों का ध्यान

बरसात में होनेवाली असुविधाओं की ओर आकर्षित करना चाहिए, तथा साथ ही साथ इस प्रकार की योजना तैयार करनी चाहिए जिसमें लोग अपने-अपने खेत से थोड़ी-थोड़ी जमीन दे जिससे होकर गाँव से लेकर सड़क तक एक रास्ता बन सके। चेष्टा ऐसी होनी चाहिए कि रास्ता बनाने के लिए लोग सामूहिक रूप से अपना श्रम दें। यदि गाँव में कोई स्कूल हो तब तो कुछ दिनों के लिए, विशेषतः दशहरे की छुट्टियों में, शिक्षकों और छात्रों को जनता के साथ मिलकर पथ-निर्माण-पर्व (Road Construction Festival) मनाना चाहिए। विकास-योजना के अन्तर्गत निर्माण-कार्य के लिए सरकार ने जो धनराशि स्वीकृत की है उसमें से कार्यकर्त्ता को उपयुक्त अंश स्वीकृत कराने की चेष्टा करनी चाहिए और जनता की उमंग तथा उत्साह का पूरा-पूरा उपयोग करने के लिए विकास-क्षेत्र के सभी अधिकारियों और सभी संस्थाओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए।

क्रमशः जब कार्यकर्त्ता अपनी भिन्न योजनाओं को मूर्तरूप देने लगे गा तो उसे पाँचवे परिच्छेद में दिये हुए व्यापक कार्यक्रम को लेकर चलना होगा। इस व्यापक कार्यक्रम के वे अंग जिनका व्यापक कार्यक्रम और सीधा ध्यान जाना चाहिए निम्नलिखित हैं :—

के अंग १. व्यक्तिगत तथा सामूहिक सफाई।
२. रोग निवारण, स्वास्थ्य-साधन तथा औषधि-वितरण की सुविधाएँ।

३. अखाड़े, खेलकूद तथा अन्य प्रकार के व्यायाम आदि की व्यवस्था।

४. नियमित साक्षरता-वर्ग का संचालन।

५. सुरक्षादल अथवा स्वयंसेवक-दल का संगठन।

६. सांस्कृतिक आयोजनों की मंडलियाँ (कीर्तन-मंडली, नाटक-मंडली आदि)।

७. नारी स्वयंसेविकाओं का संगठन।

८. शिशु-क्रीड़ा-मंदिर, बालवाडी आदि की व्यवस्था।

९. ग्राम के भिन्न-भिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों के लिए भिन्न-भिन्न समितियों अथवा मंत्रिमंडलों का संगठन (शिक्षा-मंत्री, स्वास्थ्य-मंत्री, न्याय-मंत्री आदि)। जहाँ ग्राम-पंचायत का सुगठित संगठन हो वहाँ ये मंत्रिमंडल उसके अन्तर्गत ही होंगे।

१०. मद्य तथा नशासेवन के विरुद्ध प्रचार तथा आन्दोलन के लिए एक विशिष्ट समिति का संगठन ।

११. ग्राम-योजना समिति का संगठन । यह समिति पंचायत के सहयोग से अथवा उसके तत्वावधान में त्रैमासिक, अर्धवार्षिक, अथवा वार्षिक योजनाएं बनायेगी और उनके कार्यान्वयन की चेष्टा करेगी ।

१२. ग्राम सहयोग-समिति की व्यवस्था ।

१३. लोकरंगमंच का निर्माण ।

१४. समाज-भवन का निर्माण (इस भवन में पुस्तकालय, वाचनालय तथा संगीतालय, उद्योगवर्ग तथा महिलाओं के लिए अलग क्लब भी होंगे) ।

१५. खाद, बीज, खेती आदि के नए तथा वैज्ञानिक तरीकों का व्यावहारिक प्रचार ।

नारी कार्यकर्त्री को अपने कर्तव्य-पालन के सिलसिले में निम्नलिखित कार्यों को अपनाना चाहिए:—

१. समय-समय पर स्त्रियों की सार्वजनिक सभाओं को महिलाओं के लिए बुलाना और उनमें उनके विशिष्ट कर्तव्य और उत्तर-विशेष कार्यक्रम दायित्वों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करना ।

२. पर्वों तथा उत्सवों का संगठन और प्रचार के लिए उनका विशेष उपयोग करना ।

३. गर्भवती स्त्रियों की विधिवत् शुश्रूषा और शिशु-प्रजनन के लिए धाई आदि की व्यवस्था ।

४. स्त्रियों के साक्षरता-वर्ग का संचालन ।

५. वैज्ञानिक भोजन और उसमें भिन्न-भिन्न विटामिन आदि के अनुपात की शिक्षा ।

६. भात से मांड न 'पमाने' के लिए विशेष आन्दोलन ।

७. कम धुएँ वाले, 'मगन चूल्हे' अथवा अन्य ऐसे चूल्हों का प्रचार जिनमें लकड़ी, कोयले अथवा भूमे का खर्च कम हो तथा अग्नि-शक्ति अधिक हो ।

८. गौयठे जलाने के विरुद्ध आन्दोलन (गोबर आदि का उपयोग खाद में होना चाहिए न कि जलावन में) ।

९. समय-समय पर शिशु-प्रदर्शनियों का आयोजन और स्वस्थतर तथा स्वच्छतर शिशुओं के लिए माताओं को पारितोषिक देना।
१०. महिला समाज-भवन की व्यवस्था। यह समाज-भवन गाँव के समाज-भवन में एक विशिष्ट कक्ष के रूप में हो सकता है अथवा सुविधानुसार अलग भी हो सकता है। किसी कन्या पाठशाला में भी अवस्थित हो सकता है।
११. मिलाई, कसीदे, बेलवूटे इत्यादि के लिए विशेष शिक्षा की व्यवस्था। मिलाई तथा शिल्प के उत्पादनों को उचित दर में बाजार में बेचने तथा उसकी आय के अंश को महिलाओं को देने की व्यवस्था भी होनी चाहिए।
१२. तीसरे पहर में समय-समय पर महिलाओं के वाद-विवाद, संगीत-प्रतियोगिता आदि की व्यवस्था।



परिच्छेद छबीस

पूर्णकालिक वैतनिक कार्यकर्ता

अभी तक भिन्न-भिन्न राज्यों में सामाजिक शिक्षा की जो योजना संचालित हुई है उसमें वैतनिक पूर्णकालिक (Whole-time) कार्यकर्ता का विधान प्रायः

नहीं है; और यदि है भी तो बहुत सीमित पैमाने पर। ऐसा वैतनिक कार्यकर्ता होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि जिस देश में हम बच्चों की शिक्षा को भी व्यापक और अनिवार्य बनाने में असमर्थ हैं, वहाँ वयस्कों की शिक्षा के लिए कोई ऐसी व्यापक योजना कैसे

संभव है जिसके द्वारा हम सभी वयस्कों को साक्षर बना सकें और उनमें सामाजिक चेतना भर सकें, तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गाँव-गाँव नगर-नगर में वैतनिक कार्यकर्ताओं को नियुक्त कर सकें। हमारे राष्ट्र की ऐसी आर्थिक स्थिति नहीं है कि इसके लिए जितनी विपुल धनराशि की आवश्यकता है उतनी का समावेश अपनी वजट में कर सकें। रूस और चीन आदि जो देश जनता के अज्ञान को दूर करने के लिए बहुत अंशों में सफल हुए हैं, वे भी सरकारी आर्थिक साहाय्य के बल पर ऐसा नहीं कर सके हैं, अपितु जनता के सहयोग तथा त्यागपूर्ण सेवाभाव और अपेक्षाकृत धनी तथा उदार व्यक्तियों के दान और उदारता के सहारे ही। फिर भी, जहाँ भी संभव हो, विशेषतः चुने हुए सीमित और सघन क्षेत्रों में, वैतनिक कार्यकर्ताओं के द्वारा सामाजिक

संगठन और साक्षरता-प्रसार की दिशा में सफल प्रयत्न हुए हैं, और हो सकते हैं। हाल ही में भारत की केन्द्रीय सरकार ने एक योजना चालू की है जिसके आधार पर जिलों और सबडिवीजनों के शहरों में महिला तथा पुरुष कार्यकर्त्ता नियुक्त किये गये हैं।

पूर्ण-कालिक वैतनिक कार्यकर्त्ता मुख्यतः दो प्रकार के होंगे—एक तो वे, जिनका क्षेत्र व्यापक होगा और कई गाँवों तक अथवा शहर के कई मुहल्लों तक फैला होगा; और दूसरे वे, जिन्हें चुने हुए दो-तीन गाँव कार्यकर्त्ता और अथवा एक ही गाँव अथवा शहर का कोई मुहल्ला, सौप सगठनकर्त्ता दिया जाय। पहले प्रकार के कार्य-कर्त्ताओं को 'कार्यकर्त्ता' न कहकर 'सगठनकर्त्ता' (Organiser) कहना अधिक उचित होगा। दूसरे प्रकार के कार्यकर्त्ता को हम केन्द्र-संचालक अथवा समाज-शिक्षा-अध्यापक (Social Education Instructor) कहेंगे। सगठनकर्त्ता के मुख्य कार्य क्या होने चाहिएँ और उसकी कार्यविधि कैसी होनी चाहिए आदि विषयों पर "सामुदायिक विकास-योजना क्षेत्र में सामाजिक शिक्षा का संगठन" वाले परिच्छेद में प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत परिच्छेद में हम उस कार्यकर्त्ता की विशेष चर्चा करेंगे, जो वैतनिक होगा और जिसे अपना सारा समय लगाकर किसी एक मुहल्ले अथवा गाँव में समाजशिक्षा की योजना कार्यान्वित करनी होगी।

उपर्युक्त कार्यकर्त्ता के निम्नलिखित कर्त्तव्य होंगे और उसे निम्न-लिखित नियमों का पालन करना होगा—^१

१. उसकी छुट्टियाँ वे ही होंगी जो प्रायः सरकारी कार्यालयों में होती हैं न कि वे जो स्कूलों अथवा कालिजों में। यदि कार्यकर्त्ता को स्कूलों और कालिजों के समान लम्बी छुट्टियाँ दी जायँगी, तो उसके कार्य का सिलसिला टूट जायगा और बार-बार "पुनस्तत्रैवोपविष्टो तथा वेतालः" के समान प्रारम्भ से ही प्रारम्भ करना होगा।
- दिनचर्या वस्तुतः समाजशिक्षा कार्यकर्त्ता को रविवार को भी छुट्टी नहीं मनानी चाहिए, क्योंकि उस दिन कार्यालय, फैक्टरी, दूकान आदि बंद रहते हैं, और जितना अधिक जनसम्पर्क उस दिन स्थापित किया

१ ये निदर्शन मात्र हैं; परिवर्तन संभव तथा अपेक्षित हैं।

जा सकता है उतना और दिन सभव नहीं। यदि अनिवार्य ही हो, तो रविवार को छोड़कर किसी अन्य दिन छुट्टी मनाई जाय।

२. उसे दिन में कम-से-कम छः घंटे का कार्यक्रम बनाकर उसका पालन ठीक उसी तरह और उसी मस्तैदी से करना चाहिए जिस तरह सरकारी अथवा अन्य दफ्तर के कर्मचारी वा पदाधिकारी करते हैं।

३. निदर्शन के लिए निम्नलिखित दैनिक कार्यक्रम दिया जाता है जिसका पालन कार्यकर्ता को करना चाहिए। स्थान, ऋतु और परिस्थिति आदि के अनुसार इस कार्यक्रम में आवश्यक हेरफेर किया जा सकता है :—

प्रातः ५-६॥ सामूहिक प्रार्थना और प्रभातफेरी; अखाड़े का संगठन; स्कूल जानेवाले लड़के-लड़कियों के लिए शारीरिक-श्रम, सामूहिक ड्रिल और व्यायाम आदि की व्यवस्था; स्वयंसेवक दल और सेवा-समिति का संगठन और यथा-संभव उनके सदस्यों के लिए विशेष परिधान (Uniform) तथा नियमित जीवन का विधान। जो लड़के-लड़कियाँ स्कूल जाने योग्य हैं किन्तु स्कूल नहीं जाते हैं, उनके माता-पिता तथा अभिभावकों से अनुनय-विनय करके उन्हें स्कूल भेजना और इस संबंध में म्युनिसिपैलिटी आदि के अधिकारियों से परामर्श तथा सहयोग लेना; सप्ताह में कम से कम एक दिन सामूहिक सफाई।

प्रातः ८-१० अपने केन्द्र के कार्यालय में नियमित रूप से उपस्थित रहना; बही-खाते, दिनचर्या आदि लिखना और जो **अथवा** भी आवें उन्हें आवश्यक सूचनाएं देना तथा उनका पथ-प्रदर्शन करना। जो महिला कार्यकर्त्रियाँ हों उन्हें १२ बजे से ३ बजे दिन तक नियमित साक्षरता-वर्गों का संचालन करना चाहिए। साथ-ही-साथ सीना-पीरोना, कसीदा, सगीत इत्यादि के वर्गों की भी व्यवस्था करनी चाहिए। **दिन १२-३** आशा की जाती है कि स्त्रियाँ इस समय प्रायः अपेक्षाकृत कार्यमुक्त होंगी, और अतः अपना समय समाजशिक्षा के कार्य में दे सकेंगी।

५॥ बजे सायंकाल (क) साधरता वर्गों और नागरिता वर्गों (Citizen-ship Classes) का संचालन ।

(ख) स्थानीय पुस्तकालय तथा वाचनालय को विधिवत् चलाने में योगदान ।

से

८॥ बजे तक

(ग) यदि पुस्तकालय और वाचनालय न हों, तो उनका नए सिरे से संगठन ।

(घ) शिशुशालाओं और शिशु-मिलन-मन्दिरों की व्यवस्था और इसी सिलसिले में उनके लिए सायंकालीन खेल-कूद आदि का भी प्रबन्ध करना ।

(ङ) नाटक, कीर्तन, रामायण-पाठ, चौपाल आदि सांस्कृतिक तथा मनोरजनात्मक कार्यक्रम का संगठन और उसकी देखभाल ।

(च) किसी ब्लैकबोर्ड अथवा बड़े कागज पर मोटे और सुन्दर अक्षरों में दिन भर के समाचारों का सक्षिप्त सग्रह कर उन्हें लिखना और ऐसे स्थान पर प्रदर्शित करना जहाँ जनता अधिक से अधिक संख्या में आती हो ।

(छ) मुहल्ले या गाँव में जिन लोगों के पास रेडियो सेट हों उनसे आग्रह करके उनके सहारे जनता को चौपाल आदि प्रोग्राम सुनाना । (कार्यक्रम से प्रत्येक केन्द्र में रेडियो होना आवश्यक है और प्रयत्न यह होना चाहिए कि यह जनता के चन्दे में खरीदा जाय) ।

(ज) शिक्षा तथा सामान्य ज्ञान संबंधी फिल्मों का प्रदर्शन और मैजिक लैंटर्न द्वारा स्लाइडों को दिखाना । इस दिशा में स्थानीय जन-सम्पर्क विभाग के अधिकारियों का सहयोग अपेक्षित होगा ।

(झ) सामान्य जनता के लाभ के निमित्त भिन्न-भिन्न विभागों के सरकारी पदाधिकारियों तथा अन्य विशेषज्ञों के भाषणों और सलाहों का आयोजन करना ।

४. कार्यकर्त्ता को निम्नलिखित रेकर्ड और रजिस्टर नियमित रूप से भरना और रखना चाहिए :—

- (अ) प्रवेश-बही (छात्रों के लिए) ।
- (आ) उपस्थिति पुस्तिकाएँ (साक्षरता वर्ग तथा अन्य प्रकार की प्रगतियों के लिए अलग-अलग) ।
- (इ) स्टॉक रजिस्टर ।
- (ई) निरीक्षण पुस्तिका ।
- (उ) हिसाब बही ।
- (ऊ) बाउचर फाइल ।
- (ए) पुस्तकालय की पुस्तकों की निकास बही ।
- (ऐ) दैनन्दिनी (डायरी) ।
- (ओ) ग्राम अथवा मुहल्ला सर्वेक्षण (Survey) पुस्तिका और सुन्दर अक्षरों में तैयार किये हुए चार्ट आदि ।
- (औ) अन्य आवश्यक बहियाँ ।

५. कार्यकर्त्ता को चाहिए कि वह रामायण और महाभारत आदि में चुने हुए शिक्षणात्मक पद्यों को घरों की दीवारों पर सुन्दर तथा बड़े-बड़े अक्षरों में लिखवावे । समाज-शिक्षा-केन्द्र, समाजभवन, खुला रंगमंच, ग्राम पंचायतकार्यालय, उद्योग-केन्द्र, विद्यालय आदि भिन्न-भिन्न संस्थाओं के सामने उचित स्थान पर साइन बोर्ड लिखवाकर उन्हें लगाना चाहिए ।
६. जनस्वास्थ्य, कृषि, पशुपालन, जनसम्पर्क, आदि विभागों के अधिकारियों से परिचय रखना, और जब कभी आवश्यक हो उनका सहयोग प्राप्त करना तथा उनके सबध में जनता को जानकारी देनी चाहिए । भिन्न-भिन्न प्रकार की उपयोगी पुस्तिकाओं और पोस्टर आदि का संग्रह करना चाहिए और जनता को उनसे परिचित कराना चाहिए ।
७. कार्यकर्त्ता को अपने क्षेत्र के पूरे-पूरे आँकड़े तैयार करना चाहिए और उनके आधार पर चार्ट-विवरण आदि तैयार करना चाहिए । इन चार्टों अथवा विवरणों के आधार पर गाँवों अथवा मुहल्ले की शैक्षणिक तथा आर्थिक उन्नति की योजना बनानी चाहिए और उन्हें कार्यरूप में परिणत करना चाहिए ।
८. उसे प्रत्येक तिमाही में, मार्च, जून, सितम्बर तथा दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में, साक्षरता और सामान्य ज्ञान की परीक्षा

को व्यवस्था करनी चाहिए जिसमें वर्गों के सदस्यों की योग्यता जाँची और प्रमाणित की जा सके ।

९. उसे समय-समय पर प्रदर्शनियों का आयोजन करना चाहिए जिनमें कृषि की अच्छी फसलों, स्थानीय उद्योगों और कला के नमूनों का प्रदर्शन किया जाय और यह चेष्टा की जाय कि हर एक आदमी अधिक से अधिक कुशल कलाकार बनने की उमंग रखे ।
१०. महिला कार्यकर्त्रियों को ऐसी प्रगतियों का संगठन करना चाहिए जिनका विशेष संबंध महिलाओं और अल्पवयस्क शिशुओं से हो । सिलाई, कसीदा, संगीत, पाककला आदि का समावेश प्रगतियों में होना चाहिए । उनका यह भी कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे शिशुओं के स्वास्थ्य और सफाई तथा प्रसूतिकागृह की माताओं की सेवाशुश्रूषा की विशेष व्यवस्था करे । जो शिशु अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ और सभ्य हों, उनके प्रोत्साहन के लिए पुरस्कार भी दिये जा सकते हैं ।
११. वर्ष में किसी विशेष अवसर पर (अच्छा हो कि “समाज-शिक्षा दिवस” में) एक वार्षिक अधिवेशन मनाया जाय और उसमें किसी प्रसिद्ध व्यक्ति को आमन्त्रित करके उनके हाथों साक्षरता वर्ग आदि के सफल वयस्क और वयस्काओं को पुरस्कार तथा प्रमाणपत्र दिलाये जायें ।

जिन कर्त्तव्यों का ऊपर उल्लेख किया गया है वे निदर्शन मात्र हैं और स्थान तथा परिस्थिति के अनुसार इनमें आवश्यक परिवर्तन तथा परिवर्धन किये जा सकते हैं । किन्तु पूर्णकालिक वैतनिक कार्यकर्त्ताओं उपसंहार के प्रसंग की समाप्ति करने के पहले हम तीन बातों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाना चाहते हैं:—

प्रथम यह कि, ऐसे ही कार्यकर्त्ता नियुक्त किये जायें जिनके हृदय में समाजसेवा की सच्ची लगन हो;

दूसरी यह कि, प्रत्येक कार्यकर्त्ता को कम से कम तीन महीने के समाज-शिक्षण-प्रशिक्षण कोर्स में विधिवत् सम्मिलित होकर सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक प्रशिक्षण लेनी चाहिए;

और तीसरी यह कि, कार्यकर्त्ताओं और उन केन्द्रों के दिन-प्रतिदिन के कार्यों की जाँच और देखभाल की अच्छी से अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए, और जो लेशमात्र भी अपने कर्त्तव्य के प्रति अनवधान हों उनके प्रति अनुशासन की कार्रवाई होनी चाहिए। नियुक्ति के पहले उनसे उचित जमानत ली जा सकती है।



परिच्छेद सत्ताईस

लोक विद्यालय (Folk Schools)

प्रत्येक देश में बालक-बालिकाओं के लिए बहुत बड़ी संख्या में पाठ-शालाएँ और विद्यालय खोले जाते हैं, क्योंकि व्यक्तित्व के विकास की नींव बचपन में ही दी जा सकती है, और व्यक्तित्व का विकास बिना शिक्षा के संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त बचपन में जो संस्कार पड़ते हैं और जो प्रवृत्तियाँ और आदतें लगती हैं, वे दृढ़ता से धर कर लेती हैं। कहा भी है कि कच्चे घड़े में जो रेखाएँ तथा चित्र खीचे जाते हैं, वे, पकने पर घड़ा फूट जाय तो फूट जाय, किन्तु स्वयं नहीं मिटते।

यन्मवै भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत् ।

जो बच्चे प्राथमिक पाठशालाओं से लेकर लगातार कम से कम उच्च विद्यालय (High School) की अंतिम कक्षा तक पहुँच जाते हैं, उनसे यह आशा की जा सकती है कि वे अपना पढ़ना-लिखना कुछ-कुछ जारी रखेंगे और उनमें ज्ञान की पिपासा बनी रहेगी। जो विश्व-विद्यालय की उच्च कक्षाओं तक लगातार बढ़ते चले जायें, उनके संबंध में तो हमें कोई चिन्ता ही नहीं होनी चाहिए, क्योंकि वे इस योग्य हो जाते हैं

कि पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं तथा अन्य साहित्य-निधियों के अनन्त समुद्र में गोते लगाते रहें और अपने ज्ञान के स्फुलिंग को बुझने न दे, बल्कि सतत प्रज्वलित करते रहें ।

मुख्य समस्या के विषय वे वयस्क हो जाते हैं जिन्होंने बचपन में तो प्राथमिक पाठशाला में कुछ पढ़ा-लिखा, पर उसके बाद से ही मजदूरी, सामान्य व्यापार आदि में कुछ ऐसे उलझ गये, कि जो कुछ भी पढ़ा लिखा था सो “गुरवे निवेदितम्” कर के पुनः ‘लिख लोढ़ा पढ़ पत्थल’ हो गये । जिन विषय— कर के पुनः ‘लिख लोढ़ा पढ़ पत्थल’ हो गये । जिन वयस्क लोगों ने कभी पाठशाला का दर्शन किया ही नहीं और न हाथ में स्लेट पेंसिल पकड़ी, वे, वयस्क बनकर, समस्या के विषय हों—इसमें तो दो मत हो ही नहीं सकते । इस परिच्छेद में हम ऐसे ही वयस्कों की शिक्षा का विचार करेंगे जो नितान्त निरक्षर हैं और जिनका सांस्कृतिक तथा बौद्धिक स्तर अपेक्षाकृत निम्न है । कोई भी ऐसा देश नहीं है जिसके सामने थोड़ी या बहुत मात्रा में इस प्रकार के वयस्कों की शिक्षा का प्रश्न नहीं रहा है । रूस, कॅनेडा, चीन, डेनमार्क, स्वीडेन, इंग्लैंड आदि अनेकानेक देशों ने इस प्रश्न को सामने रखकर वयस्कों की शिक्षा के लिए मस्थाएँ स्थापित की हैं और उन मस्थाओं ने अपनी-अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार विशिष्ट प्रयोग किये हैं ।

इन प्रयोगों की संक्षिप्त चर्चा हम ग्रन्थ के अन्त में करेंगे । हमारे सामने प्रश्न यह है कि भारत में आज हमारी जो परिस्थितियाँ हैं, उनको ध्यान में रखते हुए निरक्षर वयस्कों की सफल शिक्षा के लिए जो लोक-विद्यालय (Folk Schools) खोले जायँ, उनका विद्यालय उनकी मूलभूत धारणा और सामान्य रूपरेखा क्या होनी चाहिए । इस देश में इस शताब्दी के प्रारम्भ से कुछ-कुछ, और पिछले सोलह वर्षों से व्यवस्थित रूप से, तथा विस्तृत पैमाने पर, साक्षरता-प्रदान के लिए अंशकालिक (Part time) पाठशालाएँ अथवा केन्द्र खुले हैं, और उनमें कई प्रकार के प्रयोग हुए हैं । किन्तु हमें यह स्वीकार करते हुए ग्लानि या हिचक नहीं होनी चाहिए कि हम वयस्कों को साक्षरता-प्रदान करने की योजना में प्रायः असफल रहे हैं । शत-सहस्र संख्या में वयस्क केन्द्रों में

आये और गये, मेढ़कों की भाँति, किन्तु न वे नियमित रूप से उपस्थित हो सके और न साक्षरता-वर्गों से ठोस लाभ उठा सके। अतः यदि हम लोक विद्यालय के नये प्रयोग करना चाहते हैं, और डेनमार्क आदि से मिली प्रेरणा के आधार पर ठोस कदम बढ़ाना चाहते हैं, तो हमारे लिए आवश्यक है कि ऐसी योजना बनावे कि जिन-जिन बयस्को को हम विद्यालय में प्रविष्ट कर दें कम से कम तीन महीने तक विद्यालय के प्रायः पूणकालिक छात्र बन कर, विद्यालयरूपी कुल अथवा परिवार के अभिन्न सदस्य बन कर, रहें; वे विद्यालय का समग्र जीवन बिताव और उसके कार्यक्रम में उसी प्रकार सक्रिय भाग लें, जिस तरह छात्रावास के नियमित छात्र।

तब प्रश्न यह होता है कि जो बयस्क है, वे प्रायः सभी, अपने परिवार के 'अर्जक सदस्य' (Earning Member) होते हैं। यदि हमने उन्हें पकड़ कर तीन महीने तक अपने विद्यालय में बिठा दिया, अर्जुन की तो फिर उनके बाल-बच्चों के भरण-पोषण में उनका क्षतिपूर्ति जो आर्थिक योगदान था उसकी क्षति की पूर्ति कैसे होगी? यदि जितनी भी आर्थिक क्षति होगी उसे हम पूर्ण करने को सोचें, तो सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि यह एक असंभव कल्पना होगी। भारत को छोटे बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था करने में ही अजेय कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है और इसीलिए किसी भी राज्य में अभी अनिवार्य शिक्षा की योजना कार्यान्वित नहीं की जा सकी है। यदि करोड़ों निरक्षरों की अनिवार्य शिक्षा का लक्ष्य लेकर भारत चले, तो हम तो यही कहेंगे कि 'न नौ मन तेल आयगा और न राधा नाचेगी।'

फिर भी करोड़ों की संख्या में निरक्षरों का किसी भी राष्ट्र में रहना उस राष्ट्र के लिए कलक है। और इस कलक अथवा अभिशाप को कुछ न कुछ अंश में मिटाना हमारा कर्तव्य है। अतः भारत में जो लोक-विद्यालय हम स्थापित करें उनकी यह विशेषता हो कि हम सीमित संख्या में निरक्षरों को प्रविष्ट करें, और उन्हें कम से कम तीन महीने तक निरन्तर शिक्षा देकर न केवल साक्षर बनावे, अपितु उनकी सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक चेतना को परिष्कृत करें। इस प्रकार के कार्य दो प्रकार के विद्यालयों में होंगे—(क) एक तो उन विद्यालयों में, जो इसी उद्देश्य से स्थापित किये गये हों और जिनमें ३०-३० और ४०-४० की संख्या में

आसपास के गाँवों अथवा मुहल्ले के वयस्क दाखिल हों और साक्षर बनें, तथा सामाजिक शिक्षा ग्रहण करें। वस्तुतः इन्हें ही हम लोक-विद्यालय के नाम से पुकारेंगे। हमारा विचार यह है कि जिन वयस्कों को हम शिक्षार्थी के रूप में ग्रहण करें उन्हें अपने परिवार और व्यवसाय से बिल्कुल अलग न करें, बल्कि उससे उनका सम्पर्क रखते हुए तथा आंशिक रूप से अपनी-अपनी वृत्ति से जीविकोपार्जन करने की सुविधा देते हुए उन्हें शिक्षा के व्यापक तथा नियमित धागे में पिरोएँ। जिस मात्रा में वयस्कों की आर्थिक क्षति उनके आंशिक अर्जन के बावजूद भी हम पूरी न कर सकें, उस मात्रा में हम उन्हें छात्रवृत्ति दें। इस प्रकार के प्रयोग बिहार के जनता विद्यालय में आरम्भ भी हो गए हैं। सामान्य रूपरेखा यह है कि आसपास के गाँवों के बीस या तीस वयस्कों को—जो स्वभावतः मजदूर या सामान्य कृषक हैं—तीन महीने के कोर्स में दाखिल किया गया है। वे विधिवत् छात्रावास के सदस्य बन गए हैं। उनकी दिनचर्या निम्नलिखित प्रकार की है—

४ बजे प्रातः —जगना तथा सम्मिलित प्रार्थना।

४॥ बजे प्रातः —शौचादि।

५ बजे प्रातः से ११ बजे दिन तक—अपने-अपने गाँव तथा घर में जाकर ठोक वही व्यवसाय अथवा धंधा करना जो विद्यालय में छात्रों की प्रविष्ट होने के पहले करते थे और उसके द्वारा अर्जन का दिनचर्या पूरा-पूरा ब्योरा रखना तथा अर्जित द्रव्य से पूर्ववत् परिवार को लाभ पहुँचाना।

११ से १ दिन—स्नान, भोजन, विश्राम।

१ से ५ बजे तक—साक्षरता तथा सामान्य ज्ञान की नियमित पढ़ाई (भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, सामाजिक कर्तव्य सामान्य ज्ञान आदि); साक्षरता में कुछ प्रगति कर लेने के बाद स्वाध्याय भी।

५ से ६ बजे सायं—खेल, कूद, विश्राम।

६ से ७॥ सायं—१ से ५ वाला कार्यक्रम।

७॥ से ८॥ रात्रि—सांस्कृतिक कार्यक्रम (विद्यालय तथा गाँव में)

८॥ से ९ रात्रि—भोजन।

९ रात्रि से ४ प्रातः—विश्राम।

प्रत्येक वयस्क छात्र को उतनी छात्रवृत्ति दी जाय जितनी की क्षति उसे ११ बजे दिन से लेकर शाम के ६ बजे तक विद्यालय कार्य में लगे रहने के कारण हुई हो। यदि प्रत्येक की छात्रवृत्ति निश्चित करने में कठिनाई हो तो सामान्य रूप में १ रु० प्रतिदिन अथवा ३० रु० मासिक की छात्रवृत्ति दी जाय।^१

(ख) दूसरे प्रकार के विद्यालय वे होंगे जो स्वतन्त्र लोक-विद्यालय तो नहीं हों, किन्तु कालेजों तथा हाई स्कूलों और समकक्ष शिक्षण संस्थाओं से सम्बद्ध हों, और साल भर में केवल ढाई या तीन महीने का कोर्स लम्बे अवकाश (ग्रीष्मावकाश) में चलावें। रूपरेखा लगभग वही होगी जो स्वतन्त्र विद्यालयों में।

१. रकम का निर्धारण परिस्थिति के अनुसार होना चाहिए।



परिच्छेद अठाईस

जनता-महाविद्यालय की रूपरेखा

पिछले परिच्छेद में लोक-विद्यालय की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। प्रस्तुत परिच्छेद में जनता-महाविद्यालय (People's College)

का निर्माण जिन आदर्शों और भावनाओं के आधार
भिन्न-भिन्न पर होना चाहिए, और उसके अन्तर्गत जिन-जिन शाखाओं
विभाग का विकास होना चाहिए, उनपर विचार किया जायगा।

संक्षेप में यह कहा जायगा कि जनता-महाविद्यालय के
निम्नलिखित विभाग होंगे:—

१. प्रशिक्षण विभाग (Training) ।
२. अनुसंधान तथा अनुशीलन विभाग (Research and Experiment) ।
३. ग्राम-प्रसार विभाग (Rural Extension) ।
४. श्रव्य-दृश्य विभाग (Audio-visual Education) ।
५. कला तथा उद्योग विभाग (Arts & Crafts) ।
६. औषधालय तथा शुश्रूषा विभाग (Medical Aid : Care of Patients) ।

७. महिला-कल्याण विभाग (Women's Welfare) ।
८. कृषि तथा पशुपालन विभाग (Agriculture and Animal Husbandry) ।
९. पुस्तकालय तथा वाचनालय (Library and Reading-room) ।
१०. प्रचार तथा प्रकाशन (Propaganda and Publicity) ।
११. छात्रावास (Hostels) ।
१२. अभ्यास-शालाएँ और प्रदर्शन-केन्द्र (Practising Institution) ।
१३. लोक-विद्यालय विभाग (Folk School) ।
१४. प्रदर्शनी तथा संग्रहालय (Exhibition and Museum) ।
१५. सांस्कृतिक प्रदर्शन विभाग (Cultural Demonstration) ।

१. प्रशिक्षण विभाग—जनता महाविद्यालय का प्रशिक्षण विभाग उसका मुख्यतम अंग होगा । प्रशिक्षण के क्या लक्ष्य होंगे और प्रशिक्षार्थियों के लिए क्या पाठ्यक्रम होंगे, उन पर विस्तृत रूप से “समाज-प्रशिक्षण शिक्षा तथा समाज सेवा” वाले परिच्छेद में विचार किया जा चुका है । पाठ्यक्रम ऐसे व्यापक तथा बहुकल्प होंगे कि प्रशिक्षणप्राप्त व्यक्ति सरकार के किसी भी विभाग में सामान्यतः समाजशिक्षा और समाजसेवा का कार्य तथा उसका संगठन करने में समर्थ हो सकेंगे । वे स्वतन्त्ररूप से भी जनता में समाजशिक्षा तथा समाज-सेवा का संगठन कर सकेंगे । इसके अतिरिक्त वे सभी प्रकार के विद्यालयों में समाजशिक्षा या ‘सामाजिक अध्ययन’ (Social Studies) विषय का सम्यक् रूप से अध्यापन करने की क्षमता भी प्राप्त कर सकेंगे ।

२. अनुसंधान तथा अनुशीलन विभाग—इस विभाग के तत्त्वावधान में समाज-शिक्षा और सामाजिक प्रगति संबंधी भिन्न-भिन्न समस्याओं पर अनुसंधान-अनुशीलन की व्यवस्था की जायगी । उपाधि अनुशीलन वर्ग (Diploma and Degree Courses) के जितने विभाग भी छात्र होंगे, उन सबों को किसी न किसी विशिष्ट सामाजिक समस्या का अनुशीलनात्मक अध्ययन करना और उनके आधार पर एक मौलिक प्रबन्ध या ‘थीसिस’ लिखना होगा । नियमित छात्रों के अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति भी इस विभाग में प्रविष्ट हो सकेंगे जो समाजशास्त्र आदि विषयों में एम० ए० परीक्षोत्तीर्ण हों और पी-एच० डी० अथवा डी० लिट०

के लिए अनुसंधान कर रहे हों। एम० ए० के विद्यार्थी यदि चाहें तो इस विभाग से संबद्ध होकर अपने पाठ्यक्रम का व्यावहारिक अंश (Practical Portion) पूरा कर सकेंगे। वयस्क-मनोविज्ञान-संबंधी अनुशीलन के लिए इस विभाग में विशेष व्यवस्था होगी। गाँव तथा ग्रामीण जीवन के संबंध में जो समस्याएँ सम्भव हैं उन सबों के आधार पर अनुसंधान और प्रयोग इस विभाग का लक्ष्य होगा।

३. ग्राम-प्रसार विभाग—इस विभाग के अन्तर्गत किस प्रकार की प्रगति होनी चाहिए इसका निर्देश “प्रसार और प्रदर्शन” वाले परिच्छेद में किया जा चुका है। प्रसार और प्रदर्शन इतना महत्त्वपूर्ण कार्य है कि इसके लिए एक अलग विभाग होना आवश्यक है। ऐसा नहीं समझना चाहिए कि प्रसार काय के द्वारा हम केवल गाँववालों का सर्वोदय सम्पन्न करने की चेष्टा करते हैं। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यदि हम गाँवों में अपने उन्नत ज्ञान और उन्नत कला का प्रयोग करते हैं, तो उसके द्वारा अपने आपको भी अधिक से अधिक प्रशिक्षित करते जाते हैं, तथा भावी जीवन में गाँव के सम्पर्क में रहकर किस प्रकार समाज सेवा तथा देश सेवा का कार्य करना होगा, उसका तात्त्विक अनुभव प्राप्त करते जाते हैं।

४. श्रव्यदृश्य विभाग—श्रव्यदृश्य-शिक्षा की दिशा में हमारी क्या प्रगतियाँ होनी चाहिए इनका निर्देशन इन विषयों से संबद्ध परिच्छेदों में हो चुका है। आवश्यक होगा कि इस विभाग के अन्तर्गत एक सुन्दर प्रयोग-शाला (Laboratory) हो, जो मैजिक लैंटर्न, फिल्म तथा फिल्मस्ट्रिप प्रोजेक्टर, रेडियो, ‘सिल्क स्क्रीन प्रिंटिंग’, कठपुतली तैयार करने और उसके नचाने की कला के लिए आवश्यक साधनों, चार्टों तथा रंगीन चित्रों के निर्माण के सामानों, लोकनृत्य, लोकगीत आदि की कला तथा तत्संबंधी खोज और अनुसंधान, रंगमंच की सजावट आदि-आदि के संबंध की आवश्यक सामग्रियों से सुसज्जित हो, और नियमित रूप से भिन्न-भिन्न यंत्रों के संचालन और कलाओं के शिक्षण में सहायक हो। इस विभाग के अन्तर्गत एक ‘मोटर वैन’ (Motor Van) रहेगा जिसमें प्रायः श्रव्यदृश्य-प्रदर्शन के सभी आवश्यक साधन तथा यंत्र विधिवत् सजे रहेंगे। जहाँ भी मोटर गई, मानों एक चलचित्र और लोकरंगमंच की स्थापना हो गई। आजकल श्रव्यदृश्य-शिक्षा के यंत्रों के अनेक नये आविष्कार हुए

हैं। ये सभी यंत्र इस विभाग में होने चाहिए,—उदाहरणतः 'टैप रेकर्डर', 'ग्रामोफोन रेकर्डर', 'माइक्रोफाइल कैमरा', 'मूभिग कैमरा' आदि।

५. कला तथा उद्योग विभाग—इस विभाग में कला तथा उद्योग संबंधी उन सभी शाखाओं की व्यवस्था होनी चाहिए जिनका आसपास के गाँवों में प्रचार हो, और जिनके द्वारा हमारी दैनन्दिन कला-उद्योग आवश्यकताओं की पूर्ति होती हो। लकड़ी का विभाग कारखाना, लोहे का कारखाना, कपड़ा बुनने का हैण्ड लूम, आटे की चक्की, तेल की घानी, रस्सी की बुनाई, षटाई और टोकरी की बुनाई, माबुनसाजी, कट और जिल्दबन्दी का काम—ये कुछ ऐसे अंग हैं जिनकी व्यवस्था प्रायः सर्वत्र होनी चाहिए। भिन्न-भिन्न उद्योगों की इस शाला को हम बहुकला उद्योगशाला (Polytechnic Institution) भी कह सकते हैं। स्त्रियों के लिए पाकशिक्षा, सिलाई, कसीदा, रेशम और ऊन के काम, संगीत आदि के सीखने-सिखाने की विशेष सुविधा होनी चाहिए।

६. औषधालय तथा शुश्रूषा विभाग—इस विभाग से हमारा यह तात्पर्य नहीं कि हम औषधि और शुश्रूषा की विस्तृत पैमाने में कोई व्यवस्था करें। हाँ इतना अवश्य होना चाहिए कि छोटी-मोटी बीमारियों में हम उचित औषधि और परिचर्या का प्रबन्ध कर सकें, और बड़ी बीमारियों में तथा भयानक परिस्थितियों में रोगियों को पास के अस्पताल में बिना विलंब पहुँचाने का इन्तजाम कर सकें। सेवाकार्य इतना पवित्र और इतना हृदयशाही होता है कि इसके द्वारा हम जनता को अपना सकते हैं और अपने प्रसार तथा प्रदर्शन के कार्यक्रम में लोगों की सहानुभूति तथा सहयोग अर्जित कर सकते हैं।

७. महिला कल्याण विभाग—इस विभाग का उत्तरदायित्व किसी महिला के हाथ में हो तो अच्छा है। इस विभाग के अन्तर्गत कम से कम एक प्रशिक्षित धाई (Nurse) का रहना आवश्यक है। ऐसा भी संभव है कि यदि आसपास में कोई धाई विभाग हो तो उसकी सेवाएँ हम, अपने विभाग के द्वारा, जनता को सुलभ बना सकें। प्रायः देखा जाता है कि गाँव में गर्भवती माताओं की देखभाल और बच्चे के प्रजनन के समय जच्चा की निगरानी की कोई भी समुचित व्यवस्था नहीं होती। ऐसी व्यवस्था इस

विभाग का उत्तरदायित्व होगी। इसके अतिरिक्त बालिकाओं की शिक्षा और महिलाओं की सर्वांगीण उन्नति के लिए जितने भी आवश्यक उपाय हैं उनका अवलम्बन इस विभाग का कर्तव्य होगा।

८. कृषि तथा पशुपालन विभाग—सामान्य कोटि की शिक्षणसंस्था में कृषि तथा पशुपालन के विशेषज्ञों की अपेक्षा भले ही न हो, जनता महाविद्यालय में तो इनकी आवश्यकता अनिवार्य है। कृषि-पशुपालन समाजशिक्षा और समाजसेवा के क्षेत्र के प्रत्येक कार्यकर्ता विभाग को कृषि और पशुपालन के सबंध में व्यावहारिक तथा विशेष ज्ञान होना चाहिए ताकि वह जहाँ भी रहे, लोगों का इन दिशाओं में पथ-प्रदर्शन कर सके।

९. पुस्तकालय तथा वाचनालय विभाग—विद्यालय से सम्बद्ध पुस्तकालय तथा वाचनालय का रूप अत्यन्त व्यापक होगा, और पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का संग्रह ऐसा होगा जिसमें उच्च-से-उच्च पुस्तकालय अनुसंधान के सहायक ग्रंथों से लेकर नवसाक्षरों के उपयोगी सरल-से-सरल साहित्य मिल सकें। जनता महाविद्यालय का पुस्तकालय मानो “गंगोत्तरी” होगी जहाँ से निकलकर ज्ञान की गंगा गाँव-गाँव और कोने-कोने में हरियाली तथा सरसता का संचार कर सके। गाँव-गाँव में चलते-फिरते पुस्तकालय होंगे और जनता महाविद्यालय का पुस्तकालय उनका मानसरोवर होगा जो उन्हें पुस्तकें देगा, और जब वे वापस आ जायगी, तब नयी पुस्तकें प्रदान करेगा। आदान-प्रदान का यह क्रम अनवरत रूप से चलता रहेगा।

१०. प्रचार तथा प्रकाशन—प्रसार और प्रदर्शन के प्रसंग में जिन अनेकानेक प्रगतियों का उल्लेख किया गया है वे प्रचार और प्रकाशन की समुचित व्यवस्था के बिना संभव नहीं हैं। महाविद्यालय प्रचार-प्रकाशन के अन्तर्गत जो प्रयोग और अनुसंधान होंगे उन्हें भी अन्यों विभाग तक पहुँचाने के लिए पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रकाशन की आवश्यकता होगी। जनता के लिए उपयोगी सरल साहित्य का निर्माण भी प्रकाशन कार्यक्रम का अंग होना चाहिए। इस कोटि में आयेंगे छोटे-छोटे नाटक, कथाएँ, सामान्य ज्ञान संबंधी परिचय-पुस्तिकाएँ, रंग-बिरंगे चार्ट आदि।

११. छात्रावास—महाविद्यालय मुख्यांशतः गुरुकुल के आदर्श को लेकर

चलेगा। शिक्षक और प्रशिक्षार्थी मानों एक ही परिवार के सदस्य होंगे। हम तो यह चाहेंगे कि कोई भी छात्र-प्रशिक्षार्थी दिवा-छात्र (Day Scholar) न हो। सभी छात्रावास में रहें छात्रावास जिस की दो शाखाएँ होंगी, एक तो शिक्षार्थियों की, और दूसरी गाँव की जनता में से आये हुए ऐसे व्यक्तियों की, जो कम से कम एक महीने तक, अधिकांशतः तीन महीने तक, लोक-विद्यालय में प्रविष्ट होकर संस्थागत तथा छात्रावासगत जीवन व्यतीत करें। इस प्रकार के प्रशिक्षार्थियों की क्या दिनचर्या होनी चाहिए इसकी चर्चा “लोक-विद्यालय” वाले परिच्छेद में की जा चुकी है।

१२. अभ्यासशालाएँ और प्रदर्शनकेन्द्र—जनता महाविद्यालय की शिक्षा-दीक्षा ऐसी होगी जिसके लिए पाठशालाओं, ग्रामीण संस्थाओं और प्रदर्शन-क्षेत्रों की आवश्यकता होगी, क्योंकि इन्हीं के द्वारा अभ्यासशालाएँ वे अपने बौद्धिक तथा पुस्तकगत ज्ञान का व्यावहारिक तथा पक्ष दृढ़ कर सकेंगे। यह पहले कहा जा चुका है कि प्रदर्शनकेन्द्र जनता महाविद्यालय में ऐसे भी प्रशिक्षार्थी होंगे जो स्कूलों में जाकर ‘सामाजिक अध्ययन’ (Social Studies) का अध्यापन करेंगे। स्वभावतः इनको अभ्यास-पाठ के लिए आस-पास के विद्यालयों में जाना ही होगा। अतः जनता महाविद्यालय को आस-पास की प्रायः सभी शिक्षण संस्थाओं के साथ सम्पर्क स्थापित करना होगा, ताकि वे प्रशिक्षण के व्यापक कार्यक्रम में भाग ले सकें।

१३. लोक-विद्यालय विभाग—पिछले परिच्छेद में लोक-विद्यालय की रूपरेखा दी जा चुकी है। कहीं-कहीं तो ये विद्यालय स्वतंत्र होंगे किन्तु जहाँ-जहाँ जनता महाविद्यालय होंगे वहाँ-वहाँ ये विद्यालय उनका एक विभाग बनकर अवश्य रहेंगे।

१४. प्रदर्शनी तथा संग्रहालय—वर्तमान युग में प्रदर्शनियों और संग्रहालयों का महत्त्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, क्योंकि इनके द्वारा हम भिन्न-भिन्न स्थानों के आदर्श तथा अनुकरणीय पदार्थों प्रदर्शनी का संचय और उनका प्रदर्शन करते हैं। ऐसा करने से तथा एक तो उन लोगों को प्रोत्साहन मिलता है जिनके प्रयत्नों से संग्रहालय उपर्युक्त आदर्श तथा अनुकरणीय पदार्थ बन सके और दूसरे, उनके द्वारा उन-सभी लोगों और गाँवों को

प्रेरणाएँ मिलती हैं जिनमें, और जहाँ, उन-उन पदार्थों के समुन्नत और विकसित होने की सम्भावनाएँ हैं।

१५. सांस्कृतिक प्रदर्शन विभाग—इस विभाग के अन्तर्गत संगीत, नृत्य, नाटक आदि के कलाकारों का एक छोटा-सा दल होगा जो आसपास के गाँवों में घूम-घूम कर लोगों का स्वस्थ

सांस्कृतिक मनोरंजन करेगा और साथ ही साथ उन लोगों में उपर्युक्त प्रदर्शन विभाग कलाओं का प्रचार करेगा। गाँव-गाँव में खुले रंगमंच और कीर्तन-मंडल, रामलीला दल, “जात्रा-पार्टी” आदि की स्थापना होगी। राष्ट्र की सूखी टहनियों में हरियाली आवगी, उनमें कोमल किसलय लगेंगे और वे चिड़ियाँ जो अपनी मोहक तान भूल गई हैं उसे फिर से याद करेंगी। संगीत की स्वरलहरी हमारे दैन्य और विषाद के काले आवरण को हटाकर जीवन और आशा की आलोक-रश्मि घरती पर बिखेर देगी।



परिच्छेद उन्तीस

सांस्कृतिक विश्वविद्यालय : एक कल्पना

जनता महाविद्यालय की रूपरेखा प्रस्तुत करने के पश्चात् सांस्कृतिक विश्वविद्यालय का स्वरूप कल्पित करना कठिन नहीं होगा, क्योंकि सांस्कृतिक विश्वविद्यालय का प्रमुख अंग रहेगा जनता महाविद्यालय । हाँ, अन्तर यह होगा कि जो भिन्न-भिन्न विभाग जनता महाविद्यालय के सिलसिले में उल्लिखित किये गये हैं, वे छोटी-मोटी अलग स्वतंत्र संस्थाएँ होंगी और वे विश्वविद्यालय की विशाल परिधि में अपना समुचित स्थान ग्रहण करेंगी ।

किन्तु, इन संस्थाओं के अतिरिक्त विश्वविद्यालय की योजना में ऐसे विभागों और संस्थाओं का समावेश होगा जहाँ अध्यात्म और संस्कृति के उच्च-से-उच्च अनुशीलनात्मक अध्ययन तथा अध्यापन की व्यवस्था होगी ; समाजसेवा-प्रवर्ण, निस्वार्थ व्यक्तियों को — जिनमें ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, साधु, संन्यासी भी सम्मिलित होंगे—विश्वविद्यालय में प्रविष्ट कर उन्हें तपस्या और साधना का सम्यक्त जीवन व्यतीत करने का अवसर दिया जायगा और साथ ही साथ अध्ययन तथा अनुशीलन का भी क्रम चलता रहेगा । साधना और स्वाध्याय की अग्नि-परीक्षा में तप कर निकले हुए विश्वविद्यालय के सेवाव्रती

स्नातक देश के कोने-कोने में, विदेशों के सुदूरतम अंचलों में, जंगलों के गहनतम अंधकारों में, असम्पत्ता के बर्बरतम दुर्ज्ये दुर्गों में, जायेंगे और वहाँ शांति, अहिंसा और अध्यात्म का वह सदेश पहुँचाएंगे जिसमें—

सर्वे भवन्तु सुखिनः

सर्वे सन्तु निरामयाः

की भावना भरी हो !



परिच्छेद तीस

विदेशों में समाजशिक्षा की रूपरेखा

इस परिच्छेद में समाज शिक्षा की जो पद्धति विदेशों में, मुख्यतः यूरोप तथा अमेरिका में, अपनायी गई है अथवा अपनायी जा रही है, उसकी संक्षिप्त रूपरेखा दी जायगी। इस रूपरेखा के प्रस्तुत करने में हमारा यह लक्ष्य कदापि नहीं है कि हम उन देशों में प्रचलित तरीके का अन्धानुकरण करें। लक्ष्य यह है कि हम आवश्यकतानुसार उचित परिवर्तन के साथ, उन तत्त्वों को ग्रहण करें जिनकी उपादेयता हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति में संभव है।

निर्दर्शन के रूप में निम्नलिखित देशों में प्रचलित समाजशिक्षा का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है:—

(अ) रूस, (आ) अमेरिका, (इ) इंग्लैंड और (ई) डेनमार्क।

१. इस परिच्छेद के लिखने में डा० सैयदैन द्वारा संपादित 'Teachers' Handbook of Social Education से सहायता ली गई है।

(ग्र) रूस

आज से लगभग ४० वर्ष पहले रूस जारों (Czars) के साम्राज्यवाद में जकड़ा हुआ था, सब तरह से दीनहीन तथा पिछड़ा था और वहाँ की साक्षरता ५ प्रतिशत से भी कम थी। किन्तु साम्राज्यवाद जारों का के अन्त होने पर रूस ने बड़ी तेजी से कदम बढ़ाया और रूस आज वहाँ ६ वर्ष से ऊपर ५० वर्ष तक की उम्र के प्रायः सभी बालक-बालिकाएँ, वयस्क तथा वृद्ध साक्षर एवं शिक्षित हैं। प्रश्न है कि रूस ने किन उपायों का अवलम्बन किया कि जिनके सहारे वह इतनी आश्चर्यजनक प्रगति कर सका।

१९२० ई० से ही रूस की सरकार ने निरक्षरता के विरुद्ध एक सार्व-जनिक आन्दोलन, अथवा यों कहिए कि 'प्राक्रमण' प्रारम्भ किया। खेतों खलिहानों, घरों, झोपड़ियों, कारखानों में "लाल कोने" लाल कोने (Red Corners) स्थापित हुए और उनमें साक्षरता के वलास चलने लगे। स्कूलों के अध्यापकों और छात्रों ने इस आन्दोलन में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। शिक्षण-संस्थाओं का द्वार वयस्कों की पढ़ाई के लिए खोल दिया गया। दिन में लड़के पढ़ते थे और रात में वयस्क। लाखों-लाख व्यक्तियों को स्कूल के छात्रों ने शिक्षित बनाया। स्थान-स्थान पर "निरक्षरता-निवारण संघ" (Down with Illiteracy Society) स्थापित हुए। ये संघ निरक्षरों अथवा अनपढ़ों की सूची तैयार करते थे और ऐसी चेष्टा करते थे कि वे सब के सब साक्षर हो जायँ। ये नपी-तुली योजनाएँ तैयार कर उनको कार्यान्वित करते थे।

निरक्षरता-निवारण आन्दोलन ने राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप ग्रहण किया और क्रमशः ऐसी परिस्थिति देश में पैदा हो गई कि जो निरक्षर होता था वह अत्यन्त लज्जा तथा आत्मग्लानि का अनुभव करता फलंक-पट्ट था। जो निरक्षर व्यक्ति कहने-सुनने पर भी पढ़ने के लिए प्रवृत्त न होते थे, उन्हें यह आशंका बनी रहती थी कि कहीं उनके नाम "कलक-पट्ट" (Black board of Shame) में न अंकित हो जायँ। जब निरक्षरता-निवारण-आन्दोलन आगे बढ़ा तो उसके कार्यक्रम के साथ म्यूजियमों, क्लबों, सैनिक संस्थाओं, विश्वविद्यालयों आदि का संबंध जोड़ा दिया गया और यह चेष्टा की जाने लगी कि साक्षरता के

प्रचार में उनमें बल तथा सहयोग की प्राप्ति हो । कुछ ऐसी सस्थाएँ विधिवत् चलने लगी जिनमें वयस्कों को संगीत, नाटक, चित्रकला, साहित्य, विज्ञान आदि विषयों का ज्ञान दिया जाय । वयस्कों को जो शिक्षा दी जाती थी, वह प्रायः उनकी अपनी मातृभाषा में ।

रूस की महिलाओं की परिस्थिति पहले अत्यन्त ही शोचनीय थी । इनके बीच कार्य करनेवाली शिक्षित महिलाओं को अनेक कष्ट झेलने पड़े । उन्होंने जहाँ अपढ़ महिलाओं को शिक्षित बनाने की चेष्टा की वहाँ साथ ही साथ उनके तथा उनके बच्चों के स्वास्थ्य का देन की ओर भी ध्यान दिया । उपयोगी कलाओं में कुशलता दिलाने का भी प्रबन्ध किया गया ।

मश्रूप में इन्हीं उपायों से रूस में निरक्षरता को दूर करने का सफल प्रयास हुआ । अब वयस्कों के लिए साक्षरता-वर्गों की आवश्यकता ही नहीं रही । अब तो उनके कला-कौशल तथा सामान्य ज्ञान को बढ़ाने के लिए उच्च-स्तर की सस्थाएँ तथा विश्वविद्यालय चल रहे हैं जिससे उनका मानसिक तथा सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होता है और वे राष्ट्र की समस्याओं को समझने तथा उसकी उन्नति की योजनाओं को कार्यान्वित करने में सक्रिय भाग लेने लगते हैं ।

(घ्रा) अमेरिका^२

अमेरिका में, विशेषतः अमेरिका के देहाती क्षेत्रों में, वयस्क-शिक्षा का संगठन निम्न मुख्य माध्यमों द्वारा होता है:—

	१. प्रसार सेवा संगठन (Extension Service) ।
संगठन	२. पुस्तकालय ।
के	३. जनता विद्यालय ।
माध्यम	४. विश्वविद्यालय और कालेज ।
	५. स्वगठित सस्थाएँ (Voluntary Agencies) ।
	६. श्रमिक शिक्षालय ।

२. अमेरिका संबंधी विवरण के लिए लेखक निम्नलिखित ग्रंथ का अनुगृहीत है—
Rural Social System and Adult Education—The
Michigan State College Press (1953), U. S. A.

७. राष्ट्रिय संस्थाएँ ।

८. अन्तराष्ट्रिय संस्थाएँ ।

प्रसार-सेवा-कार्य को, खेती के कार्यक्रम की प्रधानता के कारण, कृषि-प्रसार-सेवा-कार्य (Agricultural Extension Service) भी कहा जाता है । कभी-कभी विस्तार से 'सहकारी प्रसार-सेवा कृषि तथा पारिवारिक अर्थनीति प्रसार-सेवा कार्य' (Co-operative Agricultural and Home Economics Extension) भी कहा जाता है । इस सेवा-कार्य के संगठन के लिए भिन्न-भिन्न विषयों के विशेषज्ञों की सेवाओं का उपयोग किया जाता है । जिन विषयों अथवा क्षेत्रों में विशेषज्ञों का परामर्श तथा सक्रिय सहयोग ग्रामीणों को प्राप्त होता है, वे हैं:—

खेती का उत्पादन ।

ग्राम संगठन तथा नेतृत्व का विकास ।

स्वास्थ्य ।

वागवानी और घर का प्रबन्ध ।

सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन का उत्थान ।

राष्ट्रिय सम्पत्ति का सदुपयोग ।

विक्रय तथा विभाजन ।

आदर्श भवन-निर्माण ।

आर्थिक समस्याओं तथा राष्ट्रनीति की जानकारी ।

विविध ।

प्रसार कार्य के संगठन में मुख्यतः दो प्रणालियों पर विशेष ध्यान रहता है । सहकारिता और प्रदर्शन । लोगों को मिलजुल कर सम्मिलित प्रयत्न के द्वारा उत्पादन बढ़ाने को प्रेरित किया जाता है, और साथ ही जहाँ कहीं प्रयत्न होते हैं उनके प्रदर्शन की भी व्यवस्था की जाती है ।

पुस्तकालय एक ऐसा माध्यम है जिसकी उपयोगिता हमारे आज के जनतंत्र युग में अत्यन्त ही अधिक है । पुस्तकालय मानों राष्ट्र के क्रमिक

विकास के इतिहास का प्रतीक है । उसमें राष्ट्र की सारी

पुस्तकालय दार्शनिक, साहित्यिक तथा वैज्ञानिक निधि मानों पुजीभूत

रूप में संचित रहती है । अमेरिका में पुस्तकालय की

सुविधाओं को जनता तक पहुँचाने की पूरी चेष्टा की जाती है और

पुस्तकालय आन्दोलन को इस रूप से चलाया जाना है कि उसके प्रति जनता स्वयं आकृष्ट हो। पुस्तकालयों को केन्द्र मानकर उनके द्वारा लोगों को न केवल पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने के लिए दी जाती हैं, अपितु यदि कोई व्यक्ति किसी विशिष्ट विषय के संबंध में लेखक, ग्रंथ, सम्बद्ध साहित्य आदि की जानकारी प्राप्त करना चाहता है तो वह उसे सुलभ की जाती है। पुस्तकालय का सदुपयोग करने के लिए तरीके भी बतलाए जाते हैं। पुस्तकालय के कार्यक्रम के अन्तर्गत चलचित्र (Films and Filmstrips) भी दिखाए जाते हैं। समय-समय पर भाषण, संगीत, विचारविमर्श गोष्ठी आदि का भी आयोजन होता है। संक्षेप में यह, कि जनता के ज्ञान के वितरण और उसके परिष्करण के लिए जितनी बातों की आवश्यकता है उन सबों से परिचित कराना पुस्तकालय-आन्दोलन का लक्ष्य हुआ करता है।

सामान्य विद्यालयों और जनता-विद्यालयों में यह अन्तर है कि जनता-विद्यालयों का मुख्य लक्ष्य होता है वयस्क-उपयोगी शिक्षा का प्रदान। उदाहरणतः इन विद्यालयों में निम्न-जनता लिखित विषयों की प्रधानता होती है :—

विद्यालय १. ललित कला और उद्योग-कला।

२. उत्तम जीवन-शैली।

३. सैद्धान्तिक ज्ञान।

४. संगीत।

५. व्यवसायगत कौशल।

६. विविध।

जनता-विद्यालयों के संगठन की रूढ़िवादी एक-सी नहीं है किन्तु उनके संचालन के लिए प्रायः एक निर्देशक (Director) नियुक्त किया जाता है। यह निर्देशक बोर्ड आफ एजुकेशन (Board of Education) तत्त्वावधान में विद्यालयों का संगठन तथा संचालन करता है। इन विद्यालयों को सरकार की आर्थिक सहायता तो मिलती ही है, अन्य स्थानीय तथा केन्द्रीय कोषों से भी अनुदान प्राप्त होते हैं। प्रायः प्रत्येक विद्यालय की एक परामर्शदात्री-समिति रहती है। समय-समय पर विद्यालयों के माध्यम से भाषणों, गोष्ठियों आदि के आयोजन होते रहते हैं।

विश्वविद्यालय और कालेजों की देन मुख्यतः उन के द्वारा संगठित प्रसार सेवा - कार्य की दिशा में होती है। आजकल अमेरिका में कोई भी ऐसा विश्वविद्यालय नहीं जिसके द्वारा महत्वपूर्ण विश्वविद्यालय वयस्क शिक्षा कार्य नहीं सम्पन्न होता है। विश्वविद्यालयों और कालेज के कार्यक्रम अनेक प्रकार के हैं जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं:—

१. वयस्कों के लिए विशेषरूप से आयोजित भाषण।
२. पत्रव्यवहार द्वारा शिक्षा।
३. विशेषरूप से आयोजित क्लास।
४. श्रव्यदृश्य माध्यमों द्वारा शिक्षा।
५. चलते-फिरते पुस्तकालयों द्वारा ज्ञान-प्रदान।
६. अल्पकालिक शिक्षण-कोर्स तथा सम्मेलन।
७. वयस्कों के आवास-केन्द्र की व्यवस्था।
८. समाजसेवा की विविध प्रगतियाँ।

विश्वविद्यालयों और कालेजों द्वारा अर्थात् उनके अध्यापकों और छात्रों द्वारा प्रसार-सेवा-कार्य के संगठन में निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति को ध्यान में रखा जाता है:—

१. पुरुषों और नारियों को उनके अपने व्यवसाय में अधिकाधिक प्रवीणता प्रदान करना।
२. उन्हें समाज और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व को समझने और पालने में सहायक होना।
३. उनके मानसिक स्तर को उन्नत करना।

वयस्क-शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करनेवाली ऐसी अनेकानेक संस्थाएँ क्रमशः संगठित हो चुकी हैं और संगठित हो रही हैं जिनका आधार राज्य अथवा सरकार की प्रेरणा नहीं है। ऐसी संस्थाएँ अनेक प्रकार की स्वसंगठित हैं। कुछ संस्थाएँ मुख्यतः महिलाओं के लिए हैं, तो संस्थाएँ कुछ पुरुषों के लिए। कुछ का संबंध विद्यालयों से है, यथा अभिभावकों और अध्यापकों की संस्थाएँ; तो कुछ का संबंध धार्मिक संगठनों से है। ऐसी संस्थाएँ भी हैं जिनका संबंध व्यवसाय अथवा रुचिविशेष से है, यथा—उद्यानकार-समिति, श्रमिक-समिति, आदि। आज के जनतांत्रिक युग में सार्वजनिक गैर-सरकारी संस्थाओं का महत्व तथा

उपयोगिता बहुत अधिक है। इन सस्थाओं और सरकार के बीच जो संबंध होना चाहिए उसे हम सहयोगिता (Partnership) की संज्ञा दे सकते हैं। ये सस्थाएं तभी अच्छी तरह कारगर हो सकती हैं जब दोनों सहयोगी, अर्थात् सरकार और संस्था, सुसंगठित हों।

श्रमिकों और मजदूरों की शिक्षा प्रायः ऐसे स्थानों में दी जाती है जहां विद्यालय अथवा भवन आदि की सुविधाएं अच्छी तरह उपलब्ध नहीं हैं।

जो शिक्षा इन्हें दी जाती है उसकी रूपरेखा ऐसी होती है जिसमें श्रव्यदृश्य माध्यमों, विचार-विमर्शों, यात्राओं, श्रमिक शिञ्चालय सायंकालीन वर्गों आदि की प्रधानता होती है। इन्हें यह बतलाया जाता है कि ये अपने राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य किस प्रकार पालन करें। इन्हें विश्व की समस्याओं का भी सामान्य ज्ञान दिया जाता है जिसमें ये कूपमण्डूक न बनें रहे; व्यापारिक तथा व्यावसायिक संगठनों (Trade Unions) का विवेचनात्मक ज्ञान भी दिया जाता है जिसमें वे अन्धे नतृत्व के शिकार न बनें। इनके लिए समय-समय पर उपयोगी पत्रिकाएं प्रकाशित की जाती हैं। पुस्तकालयों की सुविधा भी इन्हें मिलती है। श्रमिकों और मजदूरों की शिक्षा की योजना में यह ध्यान रखा जाता है कि वह मुख्यतः निम्नलिखित दो लक्ष्यों की पूर्ति करे:—(१) अपनी श्रमकला को उन्नत करके अधिकाधिक अर्जन करने की क्षमता प्रदान करना; (२) यूनियन अर्थात् श्रमिक दल का विवेकशील तथा उत्कृष्ट सदस्य बनने की योग्यता देना।

अमेरिका में राष्ट्रिय स्तर पर भी ऐसी सस्थाएं हैं जो वयस्कशिक्षा का मुख्य लक्ष्य लेकर चलती हैं, उदाहरणतः संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की वयस्कशिक्षा समिति (Adult Education Association of the U. S. A.)। इस प्रकार की सस्था सस्थाएँ का मुख्य कार्य होता है वयस्क-शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करनेवाली अनेकानेक सस्थाओं तथा संगठनों का समन्वय और उन्हें पथ-निर्देश। जिन उत्तरदायित्वों को इस प्रकार की केन्द्रीय संस्था पालन करेगी या करती है वे संक्षेपतः निम्नलिखित हैं:—

१. वयस्क शिक्षा के कार्यकर्ताओं के सम्मेलनों का आयोजन और उनके लिए साहित्य का निर्माण।

२. विशिष्ट समस्याओं पर विशेषज्ञों द्वारा परामर्श ।
३. वयस्क-शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान तथा अन्वेषण ।
४. कार्यकर्त्ताओं और शिक्षकों का प्रशिक्षण ।
५. प्रचार तथा प्रकाशन ।
६. वयस्कों के जीवन को उन्नत बनाने और उन्हें शिक्षा देने के लिए उचित विधानों के निर्माण की व्यवस्था करना ।
७. वयस्कों को जीविका खोजने और अर्जित करने में सहायता देना ।

अन्ताराष्ट्रीय स्तर पर वयस्क-शिक्षा का उत्तरदायित्व मयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संघ (United Nations Educational, Scientific and Cultural Organisation) पर है । इस संघ द्वारा देश-विदेश में जो प्रयोग वयस्कशिक्षा के क्षेत्र में होते हैं उनसे एक दूसरे को परिचित कराया जाता है । अन्ताराष्ट्रीय संस्था समय-समय पर विशिष्ट समस्याओं पर सेमिनारों का आयोजन किया जाता है; वयस्कशिक्षा तथा वयस्क-जीवन से संबद्ध उपयोगी साहित्य का निर्माण किया जाता है; पुस्तकालय तथा श्रव्यदृश्य माध्यमों द्वारा वयस्कशिक्षा दान करने के लिए उचित निर्देश मिलता है; और समय-समय पर अपेक्षाकृत पिछड़े राष्ट्रों को आर्थिक सहायता भी प्रदान की जाती है ।

(इ) इंग्लैंड

इंग्लैंड में ग्रामीण कालेज एक ऐसी संस्था है जिसका उल्लेख आवश्यक है । ग्रामीण कालेज (Village College or County College) वह संस्था है, जिसमें दिन में तो बालक-बालिकाओं का स्कूल चलाता है जोर सायंकाल वयस्कों के लिए शिक्षात्मक ग्रामीण कालेज तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम की व्यवस्था होती है । जहाँ तक वयस्कों की शिक्षा का संबंध है, उन्हें मुख्यतः जीविकोपयोगी अथवा मनोरंजनात्मक विषयों का ज्ञान कराया जाता है । लकड़ी का काम, लोहे का काम, सिलाई, पाककला, धुलाई, व्यापारी हिसाब-किताब, टाइप की कला आदि सिखाने के साधन तथा सुविधाएँ प्राप्त होती हैं । ग्रामीण कालेजों में प्रायः उपाहार-गृह (Canteen), खेल का कमरा,

वाचनालय, पुस्तकालय, सभाभवन आदि रहते हैं। महिलाओं के लिए सगीत तथा हस्त-कला का विशेष प्रबन्ध रहता है।

ग्रामीण कालेजों का संचालन प्रायः वहाँ की जनता करती है किन्तु शिक्षा के मंत्रिमंडल की ओर से निर्देशक भी नियुक्त होते हैं, जो इन कालेजों की देखभाल करे तथा उचित पथ-निर्देश दे। सी० ई०

लक्ष्य एम० जोड (C. E. M. Joad) ने अपनी एक पुस्तक में यह लिखा है कि ग्रामीण कालेजों द्वारा शिक्षा गाँवों के अन्तराल तक पहुँचती है; उसके अतिरिक्त स्कूली जीवन और जीविकार्जनपरक वयस्क-जीवन के बीच जो खाई रहती है, वह भी इनके द्वारा पायी जाती है। कहना न होगा कि ग्रामीण कालेजों के संगठन में विश्वविद्यालयों में पढनवाले छात्रों तथा अन्य अपेक्षाकृत शिक्षित वर्ग का अपेक्षित सहयोग रहता है। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो जन्म से मरण तक (From the Cradle to the Grave) अनवरत रूप से चलनी चाहिए। इस दृष्टि से, हम अनुमान कर सकते हैं कि ग्रामीण कालेजों अथवा इस प्रकार की शिक्षण-संस्थाओं का राष्ट्रीय जीवन के लिए कितना महत्त्व है। यदि भारतवर्ष की ओर दृष्टि डालते हैं, तो हम देखेंगे कि यहाँ लाखों-लाख स्कूल और कालेज ऐसे हैं जिनके भवन या इमारतें कुछ ही घंटों के लिए दिन में काम में लाई जाती हैं और शेष समय में वे “भूत का डेरा” बनी रहती हैं। क्या ही उत्तम हो, यदि प्रत्येक शिक्षण-संस्था का भवन वहाँ की स्थानीय जनता की सार्वजनिक प्रगतियों और कार्यक्रमों के लिए उपलब्ध हो सके तथा प्रातः से लेकर रात तक उसमें कोई न कोई ऐसा रचनात्मक तथा शिक्षणात्मक कार्यक्रम चलता रहे जिससे जनता को लाभ हो, लोगों का मानसिक स्तर उन्नत हो तथा उनका सांस्कृतिक जीवन हरा-भरा हो।

इंग्लैंड में बहुशिल्प प्रतिष्ठानों (Polytechnic Institutions) द्वारा जनता की अच्छी सेवा हो रही है। इन मस्थाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्योगों, व्यवसायों आदि की शिक्षा होती है। प्रायः सायकाल में होने के कारण इनसे ऐसे वयस्क बहुतायत से लाभ उठाते हैं जो दिन में अन्यत्र जीविको-पार्जन करते हैं। ऐसी संस्थाओं की हमारे देश में बहुत बड़ी आवश्यकता है।

(ई) डेनमार्क

डेनमार्क एक कृषिप्रधान देश है। इस छोटे-से देश में लोक-विद्यालय (Folk High Schools) इतने अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं कि वे आज विश्व के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो रहे हैं। इस प्रकार के विद्यालय की स्थापना तथा प्रचार लक्ष्य के लिए ग्रुन्टविग (Grundtvig) नामक धार्मिक नेता को सबसे अधिक श्रेय है। जब सर्वप्रथम इन विद्यालयों की स्थापना की गई तो उनका लक्ष्य धार्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना लाना था, किन्तु पीछे चलकर उनके पाठ्यक्रम में प्रायः ऐसे सभी विषयों का समावेश हो गया, जिनसे जन-जीवन, विशेषतः कृषकों के जीवन का सामूहिक रूप से उन्नयन तथा परिष्कार हो सके। आजकल इन्हे सरकारी अनुदान भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

लोक-विद्यालयों की विशेषताओं का संक्षिप्त निदर्शन इस प्रसंग में उचित होगा:—

(क) सांस्कृतिक विकास का लक्ष्य :—इन विद्यालयों की सबसे विशेषताएँ बड़ी विशेषता इनका उद्देश्य है, जिसके अनुसार ये किसी व्यावसायिक प्रयोजन से शिक्षा नहीं देते; मनुष्य का आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक विकास करने तथा उसे अच्छा नागरिक बनाने के लिए ही शिक्षा दी जाती है। इस उद्देश्य को सफल करने के लिए इन विद्यालयों में छात्रों को किसी परीक्षा के लिए तैयार नहीं किया जाता, और न ये विद्यालय की परीक्षा देते हैं, क्योंकि इनका विश्वास है कि परीक्षा से शिक्षा का रूप विकृत हो जाता है और छात्र उसमें स्वाभाविक रुचि नहीं ले पाते।

(ख) छोटे और संक्षिप्त पाठ्यक्रम :—छोटे और संक्षिप्त पाठ्यक्रम इनकी दूसरी विशेषता है। मुख्य विषय होते हैं भाषा तथा इतिहास। परीक्षा की तैयारी उद्देश्य न होने के कारण पाठ्यक्रम ऐसा रहता है जिसमें कम से कम समय लगे और जिसके आधार पर मनुष्य को मूलभूत उपयोगी शिक्षा दी जा सके। प्रचलित पाठ्यक्रम की एक सामान्य योजना नीचे दी जाती है:—

विषय	पुरुषों का पाठ्यक्रम (प्रतिसप्ताह घंटे)	स्त्रियों का पाठ्यक्रम (प्रतिसप्ताह घंटे)
डेनिश भाषा	७.९	७.३
हस्तलेख	०.७	०.३
मौखिक पाठ और साहित्य का		
इतिहास	२.९	२.९
इतिहास, डेनिश कानून तथा सामा- जिक स्थिति	१०.९	११.२
भूगोल	१.९	१.९
प्राकृतिक विज्ञान और स्वास्थ्य	३.५	३.३
अकगणित	५.५	४.०
रेखाचित्राकन	२.५	०.४
संगीत	१.४	१.९
शारीरिक व्यायाम	४.८	५.४
सिलाई	—	९.६
कृषि	३.२	—
गृहविज्ञान	—	१.३
अन्य विषय	२.४	१.५
पूर्णयोग	— —	— —
	४७.५	५१.०

(ग) आवासिक विद्यालय :—लोक-उच्च-विद्यालय जीवन-निर्माण पर अधिक जोर देते हैं, अतः ये अधिकतर आवासिक होते हैं। लोग एक स्थान पर ही रहकर सामूहिक जीवन व्यतीत करते हैं, जिससे उनमें आपस का संबन्ध और सांस्कृतिक आदान-प्रदान अधिक अच्छी तरह से हो।

(घ) सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन :—सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन इन विद्यालयों का मुख्य अंग होता है, जिससे लोगों में सांस्कृतिक जागृति पैदा हो और उनमें नए जीवन का संचार हो सके। इसीलिए इन विद्यालयों में लोक-साहित्य, संगीत, नाटक आदि को उचित महत्त्व दिया जाता है।

(ङ) ग्रामीण समाज की सेवा :—सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त अन्य नागरिक आवश्यकताओं की पूर्ति का भी ध्यान रखा जाता है।

उदाहरणतः, साधारण मनुष्यों और ग्रामीण समाज की सेवा करना लोक विद्यालयों की शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य रहता है ।

(च) छात्र—उनकी संख्या, आयु तथा सामाजिक स्थिति:—डेनमार्क की आबादी की दृष्टि से हर एक चार डेनिश नवयुवकों में से एक नवयुवक लोकविद्यालयों में शिक्षा पा चुका है । स्थापना के बाद से लगभग चार लाख व्यक्ति इन विद्यालयों में रहकर शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं । इन विद्यालयों में आनेवाले छात्रों में आजकल लगभग आधी संख्या महिलाओं की होती है । लगभग ९० प्रतिशत छात्र १८ से २५ वर्ष की आयु के होते हैं । इन छात्रों में अधिक संख्या खेत में काम करनेवालों की होती थी, किन्तु धीरे-धीरे अन्य वर्ग के लोगों का अनुपात भी बढ़ रहा है ।

(छ) अध्यापक—उनकी योग्यता और विशिष्ट गुण:—इन विद्यालयों में अच्छे, योग्य, ईमानदार और प्रेरणाशील अध्यापक ही रखे जाते हैं । लगभग ६० विद्यालयों में ६०० से अधिक अध्यापक काम करते हैं । इन विद्यालयों में काम करनेवाले अध्यापकों के लिए विश्वविद्यालय की शिक्षा होना आवश्यक है ।

(ज) लोक-विद्यालयों की गतिशीलता तथा व्यापक प्रभाव:—डेनमार्क में लोक-विद्यालयों का विकास अनवरत हो रहा है । नए विद्यालय आए दिन खुल रहे हैं । लोक-उच्च-विद्यालय अब डेनमार्क के सामाजिक तथा राष्ट्रिय जीवन का एक अंग बन चुके हैं । इन विद्यालयों का वहाँ के जीवन और इतिहास पर गहरा प्रभाव पड़ा है । इसका कारण है कि इन विद्यालयों ने जीवन की तह में पँठकर उसे अधिक सुन्दर और उपादेय बनाने की चेष्टा की है । इनमें गतिशीलता है । डेनमार्क की पिछड़ी हुई कृषि-व्यवस्था के पुनर्निर्माण में लोक-विद्यालय-छात्रों ने बहुत बड़ा काम किया है । आज वहाँ कई अन्य प्रकार की संस्थाएँ भी काम करती हैं, किन्तु सबको इन्हीं विद्यालयों से प्रेरणा मिली है । अन्य देशों में भी इन विद्यालयों ने समाजशिक्षा को प्रेरणा और नई दिशा दी है ।

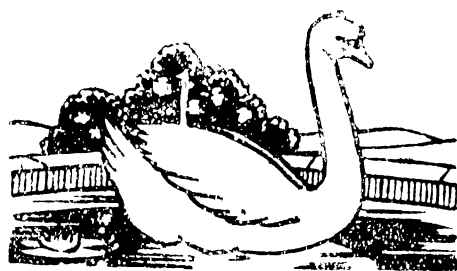
डेनमार्क की लोक-उच्च-विद्यालय-शिक्षा-परंपरा से भारत के समाज-शिक्षा आन्दोलन में काफी लाभ पहुँच सकता है । डेनमार्क की भाँति ही यहाँ भी

समाजशिक्षा का कार्यक्रम लोकपरंपरा पर आधारित होना उपसंहार^१ चाहिए, जिससे जनसाधारण को उसमें रुचि पैदा हो ।

समाज-शिक्षा का कार्यक्रम केवल साक्षरता तक सीमित न रहकर समाज के जीवन में आवश्यक परिवर्तन का साधन बनना चाहिए ।

समाज में फैली हुई कुरीतियों को दूर करने, समाज में चेतना पैदा करने, तथा जनतांत्रिक परंपरा कायम रखने की चेष्टा होनी चाहिए। पर्याप्त आवश्यकता सरकारी चेष्टा की है, जिससे शिक्षा के लिए सुविधाएँ और आर्थिक सहायता मिलती रहे। समाज की आवश्यकता के साथ शिक्षा का सामंजस्य आवश्यक है। इसमें डेनमार्क की लोक-विद्यालय-परंपरा हमें दिशानिर्देश कर सकती है।^३

३. इस अंश की सामग्री के लिए लेखक जुलाई-सितम्बर १९५४ के “विहार शिक्षक” में प्रकाशित श्री उदय पारीक के लेख “डेनमार्क के लोक-उच्च विद्यालय” तथा जे० सी० मूलर (J. C. Muller) और कैथेराइन वाटसन (Katherine Watson) द्वारा लिखित “Education in Democracy : The Folk High Schools of Denmark” का अनुगृहीत है।



परिच्छेद इकतीस

सामाजिक परिगणन अथवा सर्वेक्षण (Social Survey)

जिस प्रकार प्रत्येक अनुभवी तथा कुशल वैद्य या डाक्टर अपने रोगी के रोग का निदान अच्छी तरह समझ कर, लक्षणों को पहचान कर, उसकी नब्ज और हृदय की गति परख कर,—तब उसकी चिकित्सा या दवा-दारू शुरू करता है, उसी तरह प्रत्येक कुशल कार्यकर्त्ता या संगठनकर्त्ता को चाहिए कि वह जिस क्षेत्र में काम करता हो उस क्षेत्र के गाँवों और मुहल्लों की पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करे, वहाँ के रहनेवालों की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का मूधमता तथा धीरता के साथ विश्लेषणात्मक अध्ययन करे, और, तब, उस स्थिति के मुधार करने तथा वहाँ की समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा करे, एवं उस दिशा में अग्रसर हो। प्रायः इस प्रकार का अध्ययन और चेष्टा—दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलेंगी।

समस्याएँ तो इतनी अधिक हैं कि उनके अध्ययन के लिए तालिकाओं को निर्धारित करना यदि असंभव नहीं तो अत्यन्त

कठिन अवश्य है। भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याओं के अध्ययन के लिए जिन-जिन बातों की जाँच आवश्यक होगी उनका कुछ विस्तार के साथ

तालिकाएँ
या चार्ट

उल्लेख 'अवकाशकालीन प्रशिक्षणशिविर' के सिलसिले में हो चुका है। परिशिष्ट में हम कुछ तालिकाएँ प्रस्तुत करेंगे जिनको नमूना मानकर, कुछ परिवर्तन-परिवर्धन के साथ, प्रत्येक कार्यकर्ता तथा संगठनकर्ता अपने क्षेत्र के समाजशिक्षा-केन्द्रों में तालिकाएँ तैयार कराएगा। इन्हें तैयार करते समय वह निम्नलिखित सामान्य निर्देश को ध्यान में रखेगा:—

१. प्रत्येक तालिका या चार्ट के अनुरूप एक बही भी होनी चाहिए जिसमें तालिकाओं को स्थायी रूप से सुरक्षित किया जा सके। प्रत्येक वार्षिक चार्ट अप्रैल में तैयार करना चाहिए।

२. तालिकाओं की उपयोगिता और उनका उद्देश्य—

(क) उपयोगिता—सरसरी दृष्टि से गाँव तथा उसकी प्रगति का अध्ययन।

(ख) उद्देश्य—गाँव या मुहल्ले के क्रमिक विकास के लिए उपायों का अवलम्बन।

३. कार्यकर्ताओं के लिए निर्देश—

(क) परिगणन के संकलन में सावधानी से काम ले, जनता के जीवन एवं मनोविज्ञान का अध्ययन करें, एवं उन्हें अच्छी तरह अपने उद्देश्य तथा इसकी उपयोगिता से अवगत कराएँ और इस प्रकार उनको आगे का कार्य बतावे।

(ख) आँकड़ों को यथासंभव सन्ध्या और शुद्धतापूर्वक जाँच कर लिखें।

(ग) वार्षिक तालिकाओं या चार्टों का अंकन मासिक चार्टों के आधार पर हो। मासिक चार्ट बहियों पर लिखे जायें और उनका संकलन एक बार कर लिया जाय तथा प्रत्येक वर्ष की प्रगति का एक सुन्दर ग्राफ (मानचित्र) तैयार किया जाय। पिछले वर्षों की प्रगति के आधार पर तुलनात्मक ग्राफ भी तैयार किये जायें।

१ देखिए परिशिष्ट : “सामाजिक परिगणन की तालिकाएँ”।

(घ) सभी चार्ट मोटे और सुन्दर, संभवतः रंगीन अक्षरों में हों।
इनमें परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किये जा सकते हैं।

४. ये चार्ट कहाँ रहे :—

संभवतः सामाजिक शिक्षा केन्द्र की दीवारों पर, अथवा अन्य सार्वजनिक शैक्षणिक संस्था अथवा संस्थाओं की दीवारों पर।

५. अधिकारियों तथा संगठनकर्त्ताओं के प्रति :—

(क) वे कृपया ध्यान दें कि प्रत्येक केन्द्र में आँकड़े एकत्र कर उनके चार्ट शीघ्रातिशीघ्र लगा दिये जायें और इसकी रिपोर्ट केन्द्रीय कार्यालय में प्रेषित की जाय।

(ख) जो केन्द्र इन चार्टों को छीक से न रखे, वे अनुदान अथवा स्वीकृति के अधिकारी नहीं हों।



परिशिष्ट

क. सामाजिक परिगणन (Social Survey) की तालिकाएँ

ख. वार्त्तालाप-बिन्दु (Talking Points)

ग. प्रमाणपत्रों और विवरणपत्रकों (Certificates and Forms)
के नमूने

घ. साहित्य-संकेत (Bibliography)

ङ. अनुक्रमणिका ।

परिशिष्ट—क
सामाजिक परिगणन (Social Survey)
की तालिकाएँ (चार्ट)

तालिका (चार्ट) १
सार्वजनिक संस्थाएँ (नाम तथा विवरण)

गाँव या मुहल्ला—

पोस्ट आफिस—

थाना—

जिला—

(१) सामाजिक केन्द्र—

केन्द्र-संचालक शिक्षा-संस्था या अन्य संस्था—

स्थापना-तिथि— ...१९५...

(२) स्कूल (प्रकार और संख्या)—

(३) पुस्तकालय तथा वाचनालय (नाम)—

(४) ग्राम पंचायत—

(५) सहयोग समिति—

(६) लोक रंगमंच तथा अन्य सांस्कृतिक दल या संस्थाएँ
(अखाड़ा आदि)—

(७) धार्मिक संस्थाएँ—

(८) अन्य सार्वजनिक संस्थाएँ—

यह विवरण गाँव या मुहल्ले के प्रवेश-द्वार, प्रत्येक सार्वजनिक स्थान तथा केन्द्र में सुन्दर अक्षरों में अंकित रहना चाहिए, और आवश्यकतानुसार साइनबोर्डों पर भी लिखा जाना चाहिए।

तालिका (चार्ट) २ साक्षरता निमाही की अवधि में

उम्र	कुल संख्या	साक्षर		निरक्षर		केन्द्र में पढ़नेवाले		इस निमाही में कितनों ने साक्षरता परीक्षा पास की		निमाही के अन्त में गाँव या मुहल्ले के कुल साक्षर	
		पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
५ वर्ष तक											
६ से १२ तक											
१३ से २५ तक											
२६ से ४० तक											
४० से ऊपर											
कुल											

(क) इस प्रकार की तालिका प्रत्येक निमाही के लिए मार्च, जून, सितम्बर और दिसम्बर के अन्त में तैयार करनी होगी जिसके आधार पर वार्षिक विवरण की तालिका तैयार की जायगी और उसका अन्य तालिकाओं के साथ प्रदर्शन करना होगा।

(ख) प्रत्येक केन्द्र में पिछले वर्ष की प्रगति की वार्षिक तालिकाएँ सुरक्षित रहनी चाहिए।

(ग) 'अन्तिम' काल के अन्दर पिछली निमाहियों में बने हुए साक्षरों की संख्या जोड़कर लिखनी चाहिए।

तालिका (चार्ट) ३

स्वास्थ्य

अवस्था	पूर्ण स्वास्थ्य		लूले, लँगड़े		गूँगे बहरे		पेट की बीमारी		श्वास की बीमारी		आँख की बीमारी		यक्ष्मा		चर्म रोग			
	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
१ से ५ तक																		
६ से २५ तक																		
२६ से ४० तक																		
४० से ऊपर																		
कुल																		

इस क्षेत्र की मुख्य बीमारी क्या है?

इसके निराकरण के लिए क्या उपाय किए गए ?

अन्य बीमारियों के उपचार के लिए क्या उपाय किए गए ?

;

कितने बीमारों के उपचार हुए ?

प्रति सप्ताह सम्मिलित सफाई का कार्यक्रम चलता है या नहीं ?

खाई पाखाने कितने बने ?

स्वास्थ्यसुधार के लिए अन्य विभागों से क्या सहायता ली गई ?

सामान्य स्वास्थ्य-सुधार के किन उपयोगों का अवलम्बन किया गया ?

अन्य आवश्यक ज्ञातव्य बातें —

तालिका (चार्ट) ४

जन्म-गणना -- किस महीने में कितने के जन्म हुए ?

अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर	जनवरी	फरवरी	मार्च	= पूर्णयोग
किलो किलो	किलो किलो	किलो किलो	किलो किलो	किलो किलो	किलो किलो	किलो किलो	किलो किलो	किलो किलो	किलो किलो	किलो किलो	किलो किलो	
—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—

क्या परिवारों को संयम द्वारा जन्म नियन्त्रण करने की शिक्षा दी जाती है ? —

बाल-विवाह की रोक के लिए कौन से प्रयत्न हुए ? —

(क) इस प्रकार की तालिका प्रत्येक मास में गणना के उपरान्त तैयार करनी होगी।

(ख) पिछले वर्ष की तालिकाएँ सुरक्षित रखनी चाहिए।

तालिका चार्ट ५

मादक द्रव्य-निवारण

अवस्था	बीड़ी सिगरेट		गौजा		तम्बाकू पीनी तम्बाकू खैनी		भौंग		ताड़ी-शराब		अफीम		अन्य		कुल	
	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
६ से १२ वर्ष तक																
१३ से २५ वर्ष तक																
२६ से ऊपर																
कुल																

मादक द्रव्य निवारण के लिए क्या उपाय हुए ? (प्रचार, प्रचारित का निर्णय आदि) —
वर्ष भर में कितने व्यक्तों ने मादकद्रव्य त्याग किया ? —

६ से १२ वर्ष —

१३ से २५ वर्ष —

२६ से ऊपर —

इस परित्याग से जनता को कितनी आनुमानिक आर्थिक बचत हुई ? (विवरण) —

तालिका १०

बाहर से खरीदे जानेवाले सामान और उनकी रकम
(रुपयों, में)

कपड़ा	किरासन तेल	चीनी	दूसर तेल, कड़वा, तिल, इत्यादि	मसाले	मादक-द्रव्य	सिलाई	सूई-नागा	नमक	चावल-दाल	घी	गुड़	तरकारी	अन्य

वार्षिक आँकड़े प्रति वर्ष अप्रैल में लेने चाहिए

तालिका ११

बेकारी

वृद्ध एवं असमर्थ (लूले, लगड़े, आदि)		असमर्थ बालक-बालिकाएँ		औसतन ४ घंटे प्रति दिन से कम काम करनेवाले	
पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री

वर्ष में कितनों की बेकारी दूर हुई ?:-

पुरुष :-

स्त्री:-

क्या इस संबंध में जिले के एम्प्लायमेंट एक्सचेंज से संपर्क स्थापित किया गया ?
किन उपायों से बेकारी दूर हुई ? (गृहोद्योग आदि का निर्देशन होना चाहिए ।

वार्षिक आँकड़े प्रति वर्ष अप्रैल में लेने चाहिए ।

तालिका १२ पशुधन

गाय	बैल	भैस	बाछा	बाछी-पाड़ी	बकरी-बकरा	भेड़ा-भेड़ी	घोड़ा	भैंसा-साढ़	अन्य	दूध की दैनिक औसत आ
संख्या मूल्य	सं० मू०	सं० मू०	सं० मू०	संख्या मूल्य	संख्या मूल्य	संख्या मूल्य	संख्या मूल्य	संख्या मूल्य	सं० मू०	

वार्षिक आँकड़े प्रति वर्ष अप्रैल में लिये जायें ।

तालिका १३ गाँव की भूमि

खेती की भूमि				अन्य				कुओं की संख्या	
धनहर	भीठ	रब्बी	अन्य	पोखर	बन-बगीचा	टाड़ (बंजर)	गोचर	नदी	अन्य
सं० मूल्य	सं० मूल्य	सं० मूल्य	सं० मूल्य	सं० मूल्य	सं० मूल्य	सं० मूल्य	सं० मूल्य	नाम तथा सिंचाई में उपयोगिता का विवरण	

वार्षिक आँकड़े प्रति वर्ष अप्रैल में लिये जायें ।

तालिका १४

गाँव या मुहल्ले की आर्थिक दशा-आँकड़े (रूपों में)

- (१) गाँव या मुहल्ले की औसत वार्षिक आय
- (२) " " का " " व्यय
- (३) प्रति परिवार की औसत वार्षिक आय
- (४) " " का " " व्यय
- (५) प्रति कमाऊ सदस्य की औसत वार्षिक आय
- (६) " " का " " व्यय
- (७) इस दृष्टि से गाँव या मुहल्ले की आर्थिक दशा कैसी है ? (दुर्बल, साधारण, अच्छी, उत्तम)
- (८) गाँव की फिजूल-खर्ची दूर करने के कौन-से उपाय किए गये हैं ?.....
- (९) गाँव की सम्पत्ति बढ़ाने के कौन-से उपाय किए गये हैं ?.....

ये आँकड़े प्रति वर्ष अप्रैल में तैयार किये जायँ; किन्तु आधारभूत विस्तृत विवरण अवश्य सुरक्षित रहें।

तालिका १५

पारिवारिक विवरण

(१) परिवार के सदस्यों की संख्या			
पुरुष			
स्त्री			
बालक			
बालिका			
कुल			
(२) कमाऊ सदस्यों की संख्या			
(३) परिवार का औसत वार्षिक व्यय			
(४) " की " आय			
(५) परिवार में चलनेवाले उद्योग			
(६) परिवार का निजी पेशा			
(७) विगत वर्ष की आय से इस वर्ष की आय में क्या वृद्धि हुई? (कितन महीने में)			
(८) " के व्यय " के व्यय " कमी " (")			

*अप्रल मासके आधार पर

तालिका १६

गाँव या मुहल्ले का यातायात एवं उसके साधन

पक्की सड़क—फर्लांग...	...	...
कच्ची सड़क—	...	...
गाइएडो—	...	...

गाँव या मुहल्ले के मकानों की संख्या तथा अनुमानिक कीमत

कुल कीमत

वार्त्तालाप-बिन्दु

Talking Points

आवश्यक बातें

१ इस परिच्छेद में दिए हुए पाठ केवल कार्यकर्त्ताओं के लिए हैं । वे छात्रों और श्रोताओं की उम्र, मानसिक स्तर (Standard) आदि का ध्यान रखते हुए अपने वार्त्तालाप की सामग्री चुनेंगे और शैली भी उसीके अनुसार अपनावेंगे ।

२ ब्लकबोर्ड, नक्शों, मानचित्रों, चार्टों, तस्वीरों, फिल्मों, मौजक लैण्टर्न के स्लाइडों आदि का बहुतायत से उपयोग करना आवश्यक है ।

३ समय-समय पर छात्रों और वयस्कों को स्वयं भी वार्त्तालाप के सिलसिले में सहयोगी (Partners) के रूप में शामिल करेंगे ।

४ वार्त्तालापों से जनता ने क्या ग्रहण किया, इसकी मौखिक तथा लेखबद्ध जाँच या परीक्षा का भी प्रबन्ध करना चाहिए ।

वार्त्तालाप-विन्दु

परशिष्ट—ख

सूची

- १ राष्ट्रीय गान ।
- २ हमारी दुनिया ।
- ३ हमारा भारत देश ।
- ४ भारत की खनिज सम्पत्ति ।
- ५ पंचवर्षीय योजना और सामुदायिक योजना ।
- ६ हमारे देश के गौरव—

(क) गौतम बुद्ध ।

(ख) वर्द्धमान महावीर ।

(ग) प्रियदर्शी सम्राट् अशोक ।

(घ) विक्रमादित्य ।

(ङ) हर्षवर्द्धन ।

(च) शंकराचार्य ।

(छ) कबीरदास ।

(ज) नानक ।

(झ) सूरदास ।

(ब) तुलसीदास ।

- (ट) मीरा ।
- (ठ) शेरशाह ।
- (ड) सम्राट् अकबर ।
- (ढ) महाराणा प्रताप ।
- (ण) छत्रपति शिवाजी ।
- (त) स्वामी विवेकानन्द ।
- (थ) स्वामी दयानन्द ।
- (द) रवीन्द्रनाथ ठाकुर ।
- (ध) महात्मा गाँधी ।
- (न) देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद ।
- (प) जवाहरलाल नेहरू ।

७. आदर्श गाँव ।

८. पंचायत और ग्राम-राज्य ।

९. ग्राम-सेवक ।

१०. ग्राम-रक्षा ।

११. देश की आर्थिक परतन्त्रता ।

१२. स्वावलम्बी गाँव ।

१३. गाँव का मुख्य धंधा कृषि ।

१४. सहकारी खेती ।

१५. सिंचाई ।

१६. खाद ।

१७. कम्पोस्ट खाद बनाने का तरीका ।

१८. वन-महोत्सव ।

१९. सहकारी मर्मित ।

२०. आदर्श घर ।

२१. स्वच्छता ।

२२. पेशावम्याना ।

२३. पाग्याना ।

२४. गाँव में नाली की समस्या ।

२५. साफ पानी ।

२६. साक्षरता-प्रसार ।

२७. पुस्तकालय ।

२८. स्त्री-शिक्षा ।

२९. सांस्कृतिक कार्य-क्रम ।

३०. आदर्श दिनचर्या ।

३१. छूआछूत ।

३२. मुकदमेबाजी ।

३३. धूम्रपान ।

३४. बाल-विवाह ।

३५. दहेज ।

३६. ताड़ी और गुड़-ताड़

३७. सूक्तियाँ ।

१. राष्ट्रीय गान

जन गण मन अधिनायक जय हे, भारत भाग्यविधाता ।

पंजाब सिन्धु गुजरात मगठा द्राविड़ उत्कल वंगः

विन्ध्य हिमाचल यमुना गंगा उच्छल-जलधि-तरंग ।

तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिष माँगैः

गाहे तव जय गाथा ।

जनगण मंगलदायक जय हे, भारत भाग्यविधाता

जय हे ! जय हे ! जय हे ! जय जय जय जय हे !

भारत भाग्य विधाता ॥

२. हमारी दुनिया

१ हमारी दुनिया जल और स्थल दो भागों में विभक्त; ७०.८ प्रतिशत जल और २९.२ प्रतिशत स्थल; जल अर्थात् समुद्र का क्षेत्रफल १४ करोड़ वर्गमील और स्थल का ५ करोड़ ६० लाख वर्गमील; पाँच महासागर—प्रशान्त महासागर, अतलान्तिक महासागर, भारतीय महासागर, उत्तरी महासागर और दक्षिणी महासागर ।

२ पृथ्वी साधारणतः दो गोलाद्धों में विभक्त—पूर्वी गोलाद्ध और पश्चिमी गोलाद्ध; पूर्वी गोलाद्ध में एशिया, यूरोप, अफ्रिका और आस्ट्रेलिया (ओसिनिया) महादेश; तथा पश्चिमी गोलाद्ध में उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका ।

३. क्षेत्रफल और जनसंख्या

महादेश	क्षेत्रफल (वर्गमील में)	जनसंख्या (लाख में)
एशिया	१,७०,००,०००	१,२७,२० (रूस छोड़कर)
यूरोप	३७,५०,०००	५९,५० (रूस सहित)
अफ्रिका	१,१५,००,०००	१९,९०
आस्ट्रेलिया	४०,००,०००	१,३०
उत्तर अमेरिका	८३,००,०००	३२,८०
दक्षिण अमेरिका	६८,००,०००	

४ एशिया के देश—तुर्की, इराक, सीरिया, ट्रान्सजोर्डन, लेबनान, इजरायल, अरब, ईरान, अफगानिस्तान, चीन, तिब्बत, जापान, कोरिया, हिन्द चीन, थाइलैंड, मलाया और स्टेट सेटलमेण्ट, बर्मा, भारत, पाकिस्तान, नेपाल, लंका, मालडिव, इण्डोनेशिया, बोर्नियो और सिलेबिज तथा फिलिपाइन द्वीपपुंज ।

५ यूरोप के देश—ग्रेट ब्रिटेन, आयरलैंड, फ्रांस, एण्डोरा, स्पेन, पुर्तगाल, जर्मनी, बेलजियम, लक्जेम्बर्ग, हॉलैंड या नेदरलैंड, डेनमार्क, आइसलैंड, नारवे, स्वीडन, फिनलैंड, रूस, एस्टोनिया, लटविया और लिथुनिया, पोलैंड, जेकोस्लोवाकिया, आस्ट्रिया, लिचटेन्सटिन, स्विटजरलैंड इटली, युगोस्लाविया, ट्रिस्टे, हंगरी, रोमानिया, बल्गेरिया, अल्बानिया और ग्रीस ।

६ अफ्रिका—अबिसीनिया, साइबेरिया, लीबिया, मोरक्को, मोनाको, ब्रिटिश अधिकृत प्रदेश, फ्रांसीसी अधिकृत प्रदेश, इटली अधिकृत प्रदेश, बेल्जियम अधिकृत प्रदेश, पुर्तगाल अधिकृत प्रदेश, स्पेन अधिकृत प्रदेश ।

७ आस्ट्रेलिया—आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और अन्य छोटे-छोटे द्वीप ।

८ उत्तरीय अमेरिका के देश—कनाडा, अमेरिका का संयुक्त राष्ट्र, न्यूफाँडलैंड, मेक्सिको, गुआटेमाला, होंडुरास, सालवाडोर, निकारागुआ, कोस्टारिका, पनामा, क्यूबा, हैटी डोमिनिका ।

९ दक्षिणी अमेरिका के देश—कोलम्बिया, वेनेजुएला, इक्वेडोर, पेरू, ब्राज़िल, बोलिविया, पारागुए, अरजेण्टाईना, उरुगुए और चिल्स ।

१० बड़ा पर्वत—हिमालय; बड़ी नदियाँ—मिसिसिपी, आमेजन, माइल; बड़े झील—कास्पियन सागर, सुपीरियर, विक्टोरिया, न्यात्रा; बड़े द्वीप—ग्रीनलैंड, न्यूगिनी, बोर्नियो; बड़ी मरुभूमि—सहारा, गोबी, कालाहाडी ।

११ बड़े शहर और उनकी जनसंख्या (लाखों में)—लंदन—८३, न्यूयार्क—७६, शंघाई—५४, टोकियो—५४, मास्को—४१, बर्लिन—

३७, शिकागो—३६, लेनिनग्राड—३२, बम्बई—२८, पेरिस—२८, कलकत्ता—२५ ।

१२ विभिन्न धर्मावलम्बियों की जनसंख्या (करोड़ में)—ईसाई—७४, मुसलमान—३२, कन्फूसियन—३०, हिन्दू—२६, बौद्ध—१५, आदिम जाति—१२. टाईस्ट—५, शिएटो—३, अन्य—३५; कुल २ अरब ३२ करोड़ ।

१३ दुनिया का सबसे बड़ा संगठन—संयुक्त राष्ट्र संघ, जिसका उद्देश्य संसार की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अवस्था सुधारना; १९४५ में संगठित; संसार के ६१ राष्ट्र सदस्य; कार्यालय—न्यूयार्क (अमेरिका) ।

१४ इतिहास के आरम्भ में भारत, चीन, मिस्र तथा पीछें क्रमशः अरब, ग्रीस और रोम संसार के अन्दर सभ्यता में अग्रणी; आज के चार सौ वर्ष पूर्व यूरोप की जागृति, उसमें इंग्लैंड, फ्रांस, पोर्तुगाल, स्पेन, जर्मनी, बेलजियम, इटली, आदि अग्रगण्य और उनका विश्व पर आधिपत्य; एशिया का पुनः जागरण; इस समय विश्व दो शक्ति-शाली गुटों में विभक्त—एक जनतांत्रिक गुट जिसमें अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस आदि; दूसरा कम्युनिस्ट गुट जिसमें रूस, चीन आदि; भारत कुछ एशियाई राष्ट्रों सहित तटस्थ; इसकी चेष्टा दोनों गुटों में मेल-मिलाप रखकर विश्व में शान्ति स्थापित करना ।

३. हमारा भारत देश

प्राकृतिक विशेषताएँ—पूर्व से पश्चिम—१७०० मील; उत्तर से दक्षिण २००० मील । क्षेत्रफल—१,१३८,८१४ वर्गमील ।

जनसंख्या—३५६,८६१,६२४ । चार मुख्य प्राकृतिक भूभाग—

हिमालय और उसके आसपास का पहाड़ी प्रदेश;

गंगा, सिन्धु और ब्रह्मपुत्र का मैदान;

दक्षिण का पठार;

समुद्रतट का मैदान ।

प्रदेश अथवा राज्य—‘अ’ (A) प्रदेश—आसाम, बिहार, बंबई, मध्यप्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, पंजाब, उत्तरप्रदेश, पश्चिमी बंगाल ।

‘ब’ (B) प्रदेश—हैदराबाद, जम्मू-काश्मीर, मध्यभारत, मैसूर, पेप्सू, राजस्थान, सौराष्ट्र, ट्रावनकोर-कोचीन ।

‘स’ (C) प्रदेश—अजमेर, भोपाल, विलासपुर, कुर्ग, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, कच्छ, मनीपुर, त्रिपुरा, विन्ध्य प्रदेश ।

‘द’ (D) प्रदेश—अंडमन-निकोबार, सिक्किम ।

मुख्य जीविका—खेती, जिसमें लगभग ७० प्रतिशत व्यक्ति लगे

हुए हैं। लगभग ३६ करोड़ की जनसंख्या में २५ करोड़ कृषि पर निर्भर हैं।

कुछ महत्वपूर्ण स्थान—अयोध्या; आगरा; अमरनाथ; अजन्ता और एलोरा; अमृतसर; इलाहाबाद (प्रयाग); अलवर; बीकानेर; जोधपुर; कोटा; अजमेर; जयपुर; उज्जैन; उटकमंड; कलकत्ता; कन्याकुमारी; काँजीवरम्; कानपुर; काश्मीर; ग्वालियर; ट्रावनकोर; तंजौर; दार्जिलिंग; दिल्ली; पुरानी दिल्ली; नैनीताल; नालन्दा; नामिक; पटना; पंचमढ़ी; बनारस; बम्बई; भुवनेश्वर; बुद्धगया; मद्रास; महाबालेश्वर; मैसूर; मंसूरी; राँची; रामेश्वर; साँची; लखनऊ; सासाराम; शांतिनिकेतन; शिमला; शिलौंग; हरद्वार।

प्रमुख नदियाँ—गंगा, यमुना, सरयू, ब्रह्मपुत्र, घाघरा, सोन, गंडक, कोशी, नर्मदा, महानदी, गोदावरी, कृष्णा।



४. भारत की खनिज सम्पत्ति

१. कोयला—उत्पादन में संसार के अन्दर भारत का आठवाँ स्थान; भारत का ५५ प्रतिशत भाग कोयला बिहार से, २८ बंगाल से, ६ मध्यप्रदेश से, ५ उड़ीसा से, ४ हैदराबाद से और २ अन्य क्षेत्रों से; कुल लगभग १००० खानें और ३ करोड़ टन का उत्पादन; मजदूर २। लाख ।

२. मैंगनीज—इस्पात और बैटरी बनाने में तथा रासायनिक उद्योगधंधों में उपयोग; रूस के बाद यहीं सबसे अधिक प्राप्य; संसार का एक तिहाई मैंगनीज यहीं प्राप्य; अधिकांश मध्य प्रदेश में ।

३. सोना—रूस को छोड़ संसार का दो प्रतिशत भाग सोना भारत में; यहाँ ६५ प्रतिशत सोना कोलार (मैसूर) में ।

४. अबरक—बिजली आदि के सामान बनाने में उपयोग; संसार का तीन चौथाई अबरक भारत में; यहाँ ८० प्रतिशत हजारीबाग और गया जिले में; प्रति वर्ष लगभग २ करोड़ रुपये का अबरक भारत से निर्यात ।

५. पेट्रोलियम—संसार का केवल १.१० प्रतिशत भाग भारत में; यह दिगबोई (आसाम) में प्राप्य ।

६. लोहा—संसार में सबसे अच्छे लोहे की सबसे बड़ी खान भारत में; यह मुख्यतः बिहार, उड़ीसा, मैसूर और मध्य प्रदेश में; जमशेदपुर के पास नोआमुंडी की खान एशिया की सबसे बड़ी खान ।

७. नमक—भारत का दो-तिहाई नमक बम्बई और मद्रास के समुद्रतट पर निर्मित; कुछ राजपूताने की साँभर भील और उसके आस-पास भी; सेंधा नमक की खान अब पश्चिमी पाकिस्तान के हाथ में ।

८. अलमिनियम—यह कुछ वर्षों से ट्रावनकोर, बिहार और मध्यप्रदेश में प्राप्य ।

९. इलमिनाइट—उजला रंग आदि बनाने में उपयोग; इलमिनाइट के लिये भारत संसार में अग्रगण्य; यह कुमारी अन्तरीप के बालू में प्राप्य ।

१०. मोनेजाइट और जिनकोना—संसार का ८८ प्रतिशत मोनेजाइट भारत में; ट्रावनकोर और कुमारी अन्तरीप के सामुद्रिक बालू में प्राप्त ।

११. क्रोमाइट—भारत का ६५ प्रतिशत क्रोमाइट मैसूर में प्राप्य; इसके बाद सिंहभूम का स्थान ।

१२. मैग्नेसाइट—सिमेण्ट, काच, कागज, रबड़ आदि बनाने में उपयोग; मैसूर, राजपूताना, काश्मीर, बेलूचिस्तान और बिहार में प्राप्य ।

१३. बौक्साइट—पेट्रोलियम साफ करने, फिटकिरी एवं अलमिनियम बनाने में उपयोग; बम्बई के पास टूंगर पहाड़ी पर तथा मध्यप्रदेश और बिहार में प्राप्य ।

१४. सिमेण्ट—काठियावाड़, मध्यप्रदेश, बिहार, राजपूताना और मद्रास में प्राप्य ।

१५. कैनाइट—मुख्यतः बिहार के अन्दर सिंहभूम में ।

१६. ताँबा—भारत में मुख्यतः बिहार के मिहभूम और बरगंडा नामक स्थान में ।

१७. चूने का पत्थर—चूना और सिमेंट बनाने में उपयोग; बिहार के रोहतासगढ़, मध्यप्रदेश के कटनी, राजपूताने के कुन्दी, जोधपुर और सिरोही नामक स्थानों में तथा मध्यभारत में प्राप्य ।

१८. जिपसम—सिमेंट, प्लास्टर, पेंट, आदि बनाने में उपयोग; भारत का ८० प्रतिशत जिपसम राजपूताने के बीकानेर, जोधपुर, जैमलमेर आदि में प्राप्य ।

१९. स्टीटाइट—सोप स्टोन और पॉट स्टोन भी इसीका नाम; चूर्ण के रूप में इसका नाम “फ्रेश चाक”; जयपुर, गुंटूर जबलपुर, मैसूर और बिहार में प्राप्य ।

२०. कीमती पत्थर—हीरा मध्यभारत की पन्ना रियासत में, नील मणि काश्मीर के ऊँचे पहाड़ पर और लाल मणि किमुन गढ़ तथा जयपुर में ।

२१. टिन, लेड और जिक— भारत में बहुत कम; थोड़ा-सा बिहार, जयपुर और उदयपुर में प्राप्य ।

२२. साइक्लोटोन बेरिल—एक्सरे के औजार और अणुबम बनाने के उपयोग में; अजमेर में हाल से ही प्राप्य ।

२३. अन्य खनिज पदार्थों के मिलने के स्थान—फूलर मिट्टी—मध्य प्रदेश, पंजाब और राजपूताना; बैग्निट्स—मद्रास और राजपूताना; गेरू—मध्य भारत, मध्य प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा और राजपूताना; ग्रे फाइट—मैसूर, मध्य प्रदेश, मद्रास और उड़ीसा; टंग्सटेन—जोधपुर रियासत; ऐसबेस्टेस—उड़ीसा, मैसूर और राजपूताना; फ़ैल्सपार—मसूर और राजपूताना; गेरनेट मैड—मद्रास; वेष्टोनाइट—जोधपुर; अपेटाइट—बिहार और मद्रास; टैटेलाइट—मुङ्गेर (बिहार); एस्तिमोनी-चित्राल रियासत ।

५. पंचवर्षीय योजना और सामुदायिक योजना

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतवर्ष की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये पंचवर्षीय योजनाएँ बनी हैं। इन योजनाओं के द्वारा निम्नलिखित प्रमुख क्षेत्रों में प्रगति हो रही है—

(क) कृषि और सामूहिक विकास

(ख) राष्ट्रीय प्रसार सेवा

(ग) सिंचाई के छोटे साधन

(घ) भूमि सुधार

(ङ) सिंचाई और बिजली

(च) उद्योग

(छ) समाज-सेवाएँ

(ज) शिक्षा एवं जनहित

(झ) रोजगार

(व) जन-सहयोग

(ट) शिक्षितों की बेकारी का निराकरण ।

इन योजनाओं पर पहले तीन वर्षों में ही निम्नलिखित रकम खर्च हुई है—

१६५१—५२—२६१.५ करोड़

१६५२—५३२—३२३.५ ,,

१६५३—५४—४१३ ,, (लगभग)

पाँच वर्षों का कुल आनुमानिक स्वर्च—२०६८.७८ करोड़ ।

सामुदायिक विकास योजना का लक्ष्य ग्रामीणों की सहकारिता तथा सहयोग के आधार पर सर्वाङ्गीण उन्नति करना है । इस योजना का प्रत्येक विकास-खंड प्रायः १०० गाँवों का होता है, जिसकी आबादी प्रायः ६६००० की आँकी गई है ।





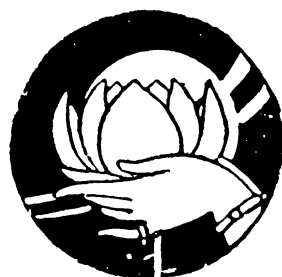
६. हमारे देश के गौरव

(क) गौतम बुद्ध

१. विश्वव्यापी बौद्ध धर्म के प्रवर्तक; जन्म आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व हिमालय की तराई में कपिलवस्तु राज्य के लुम्बिनी वन में; पिता कपिलवस्तु के शाक्यवंशी राजा शुद्धोदन; माता महामाया; बचपन का नाम सिद्धार्थ या गौतम; स्वभाव से चिन्तनशील; पत्नी राजकुमारी यशोधरा; पुत्र राहुल; एक दिन राह में एक बूढ़े, एक रोगी और एक मुर्दे को देखने का संयोग, जिसका सिद्धार्थ के दिल पर गहरा प्रभाव; लोगों को सांसारिक रोग-शोक से मुक्त करने के उद्देश्य से ३० वर्ष की अवस्था में एक रात स्त्री-पुत्र को सोते छाड़ राजभवन से प्रस्थान; ६ वर्ष के परिभ्रमण और तपस्या के बाद बोध गया में वटवृक्ष के नीचे दिव्य ज्ञान की प्राप्ति; पश्चात् गौतम बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध; सारनाथ से बौद्ध धर्म का प्रचार-कार्य आरम्भ; मगध के राजा बिम्बिसार और कोशल राजा प्रसेनजित् शिष्य; कुशीनगर (गोरखपुर जिला) में ८० वर्ष की अवस्था में निर्वाण-प्राप्ति (मृत्यु) ।

२. बुद्ध की शिक्षा—सत्य बोलना, जीवों पर दया करना, भोग-विलास और घोर तपस्या के बीच का मार्ग ग्रहण; इसके लिए सम्यक् सकल्प, सम्यक् दृष्टि, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि की आवश्यकता; जीवन का उद्देश्य निर्वाण (मुक्ति) की प्राप्ति; ईश्वर, वेद, यज्ञादि और जाति-भेद पर अविश्वास ।

३. सम्राट अशोक, कनिष्क आदि द्वारा चीन, जापान, तिब्बत, लंका, बर्मा, जावा, सुमात्रा, मिस्र, एशिया माइनर, ग्रीस आदि देशों में बौद्ध-धर्म-प्रचारार्थ सैकड़ों बौद्ध भिक्षु प्रेषित; आज भी विश्व के १५ करोड़ व्यक्ति बौद्ध धर्मावलम्बी ।





६ (ख) वर्द्धमान महावीर

१. जैन धर्म के प्रवर्तक; जन्म लगभग २५०० वर्ष पूर्व वैशाली (मुजफ्फरपुर जिला) के एक क्षत्रिय वंश में; पिता सिद्धार्थ; माता त्रिशला; नाम वर्द्धमान; बचपन में विवाह; पत्नी यशोदा; एक पुत्री; ३० वर्ष की अवस्था में संन्यास; १२ वर्षों तक कड़ी तपस्या; पश्चात् कैवल्य (ज्ञान) की प्राप्ति; मन और शरीर को जीतने के कारण जिन (विजयी) या महावीर नाम से प्रसिद्ध; ग्रन्थि या बंधन से मुक्त होने के कारण निर्ग्रन्थ नाम; तप और दया की मूर्ति; मगध, अंग, मिथिला और वैशाली में भ्रमण; गौतम बुद्ध से कई बार भेंट; मृत्यु पावापुरी (पटना जिला) में।

२. दुनिया के झूठे सुखों के फेर में पड़कर ही लोग दुःख पाते हैं और ऊँचे विचार एवं चरित्र से ही यह दूर हो सकता है ऐसा उनका विश्वास; ईश्वर और वेद में अविश्वास; मत्स्य बोलना, हिंसा न करना, चोरी न करना, धन नहीं रखना, सदाचारी होना उनका उपदेश।

३. महावीर के जीवनकाल में ही जैन धर्म का भारत में बहुत प्रचार; भारत के बाहर इसका प्रचार नहीं; जैनों के दो सम्प्रदाय—दिगम्बर और श्वेताम्बर; भारत में जैन धर्मावलम्बी ६ लाख व्यक्ति।

६ (ग) प्रियदर्शी सम्राट अशोक

१. भारत के सम्राट और विश्व में बौद्ध धर्म के प्रचारक; समय ईस्वी पूर्व २७३-२३२; सम्राट चन्द्रगुप्त के पौत्र और विन्दुसार के पुत्र; राजधानी पाटलिपुत्र (पटना); प्रारम्भ में अपनी कठोरता के कारण चण्डाशोक नाम से बदनाम; पिता के समय तक्षशिला और उज्जैन के सूवेदार; कई भाइयों को मारकर राजगद्दी; अफगानिस्तान और बलूचिस्तान तक साम्राज्य का विस्तार; कलिंग विजय के समय सहस्रों को घायल एवं मृत देखकर तथा कोसों तक देश उजाड़ पाकर द्रवीभूत ।

२. थोड़े दिनों बाद बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर बौद्ध धर्म का प्रचार; सभी धर्मों के तत्वों का आदर; अपने सदुपदेशों को सारे भारत में जगह-जगह चट्टानों और स्तम्भों पर खुदवाना, जिनमें कितने आज भी वर्तमान, प्रयाग, अरेराज और लौरिया नन्दन (चम्पारण जिला), वैशाली (मुजफ्फरपुर जिला) आदि के स्तम्भों की चमक और चिकनाई दर्शनीय; साँची, भारहुत आदि में बुद्ध की अस्थियों पर स्तूपों की रचना ।

३. प्रजा की भलाई के लिए सड़क, नहर, कूप, तालाब, औषधिशाला, सराय आदि का निर्माण; पशुहिंसा का निषेध; प्रियदर्शी नाम से प्रसिद्ध; पाटलिपुत्र में बौद्धों की तीसरी सभा का आयोजन; पश्चात् लंका, सीरिया, मिस्र, मेसिडन आदि देशों में बौद्ध धर्म प्रचारार्थ बौद्ध भिक्षु प्रेषित; लंका में अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को भेजना; स्वयं भी अपने गुरु आचार्य उपगुप्त के साथ सारे बौद्ध तीर्थों की यात्रा; २३२ ईस्वी पूर्व में मृत्यु ।

६ (घ) विक्रमादित्य

१. भारत के परम प्रतापी, विद्वान् और अद्वितीय न्यायी सम्राट; प्रारम्भिक नाम चन्द्रगुप्त द्वितीय; समय ३७५-४१ ई०; चन्द्रगुप्त प्रथम के पौत्र और समुद्रगुप्त के पुत्र; राजधानी उज्जैन; अरब सागर तक साम्राज्य का विस्तार, जिससे समुद्र पार देशों से साम्राज्य का सीधा व्यापार आरम्भ और धन की प्रचुरता; राज्य के बहुत से मोने चाँदी और तँबे के सिक्के प्राप्त; शकों का नाश कर “विक्रमादित्य शकारि” की उपाधि।

२. स्वयं वैष्णव धर्मावलम्बी, किन्तु अन्य धर्मों के प्रति भी श्रद्धा; विद्वानों और योग्य व्यक्तियों का समानाचार; दरबार के कथित नवरत्न धन्वंतरि, क्षणिक, अमर सिंह, शंक, वैतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि; इसी समय चीन के प्रसिद्ध यात्री फाहियान का ४०५ ई० में भारत आगमन, जिसके लेख से तत्कालीन भारत के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, व्यावसायिक एवं कलाकौशल सम्बन्धी उत्कर्ष का पता; इसी समय गुणवर्मा आदि कई भारतीय विद्वानों का चीन आदि में भारतीय सभ्यता और विद्या का प्रचार, हिन्दू सभ्यता का यह स्वर्णयुग।

३. विक्रमादित्य की न्यायशीलता की अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध, जिनमें एक यह भी कि बहुत वर्षों बाद एक गड़ेरिया भी उस टीले पर बैठ कर सच्चा न्याय कर देता था, जहाँ संयोगवश विक्रमादित्य का सिंहासन गड़ा हुआ था।

६ (ङ) हर्षवर्द्धन

एक विद्वान्, उदार और प्रजा-हित-चिन्तक भारत सम्राट्; थानेश्वर के राजा प्रभाकरवर्द्धन का पुत्र और राज्यवर्द्धन का भाई; राज्यवर्द्धन के मरने पर ६०६ ई० में राज्याधिकार; राजधानी कन्नौज; विधवा बहन राज्यश्री का राज-काज में सहयोग; ६१२ ई० में धूमधाम से राजगद्दी; उसी साल से हर्ष सम्वत् ; साम्राज्य सारे उत्तरी भारत में—पूरबी पंजाब से पश्चिमी बंगाल तक और हिमालय से नर्मदा नदी तक; चीन के साथ पारस्परिक दौत्य-सम्बन्ध ।

२. विद्वानों का समादर; स्वयं रत्नावली और नागानन्द नाटक की रचना; कादम्बरी और हर्ष चरित के लेखक वाण दरबारी कवि. इसी समय चीनी यात्री ह्वेनसंग का ६३० ई० में आगमन और १५ वर्षों तक भारत-भ्रमण; तत्काल नालन्दा-विश्वविद्यालय में १० हजार छात्र, जिनमें चीन, मिस्र आदि के भी बहुत छात्र; वल्लभी और नदीसा में भी विश्वविद्यालय ।

३. हर्ष स्वयं हिन्दू, किन्तु भाई-बहन बौद्ध; राज्य में सभी धर्मों का आदर; पाँच वर्ष पर एक धर्मसभा का आयोजन, जिसमें धार्मिक विषयों पर वादविवाद तथा हर्ष द्वारा दान-प्रदान; प्रयाग की सभा में ह्वेनचांग भी उपस्थित; ६४७ ई० में हर्ष की मृत्यु ।





६ (च) शंकराचार्य

१. अद्वैतवादी दार्शनिक तथा महात्मा; सातवीं-आठवीं सदी के बीच मालाबार के कालटी ग्राम में ब्राह्मण-परिवार में जन्म; पिता शिवगुरु (या विश्वजित्) माता कामाक्षी (या विशिष्टा); कुछ ही दिनों में पिता की मृत्यु; सुतीक्ष्ण बुद्धि के कारण अल्पायु में ही अनेक विषयों के पंडित; बड़ी कठिनाई से माता से संन्यास ग्रहण करने की अनुमति; शर्त यह कि प्रतिवर्ष एक बार घर आकर भेंट कर जाना होगा, इस शर्त का दृढ़ता से पालन; आचार्य गोविन्द पाद से शिक्षा-दीक्षा ग्रहण कर काशी के लिए प्रस्थान; काशी से बदरिकानन; माता को रुग्ण जानकर घर वापस और उनकी अन्येष्टि क्रिया के बाद फिर भ्रमण^१।

२ सुधन्वा नामक राजा की सहायता से दिग्विजय के लिए प्रस्थान; उस समय आर्य धर्म छिन्न-भिन्न होकर बौद्ध, जैन, शैव,

शाक्त, गाणपत्य, चार्वाक, भैरव, कापालिक, सौगन्त, विश्वक, मन्मथ, चन्द्रोपासक, सूर्योपासक, पितृगणोपासक आदि-आदि दर्जनों सम्प्रदायों में विभक्त; अतएव समस्त भारत की यात्रा कर लोगों को अद्वैत मत में लाने के लिए विभिन्न सम्प्रदायों के नेताओं के साथ शास्त्रार्थ; कुमारिल भट्ट के बताने पर मिथिला के कर्मकांडी मंडन मिश्र के साथ सौ दिनों तक शास्त्रार्थ; मध्यस्था मंडन मिश्र की पत्नी भारती; कहते हैं भारती का कामशास्त्र में परास्त करने के लिए अमरू राजा के मृत शरीर में योगबल से प्रवेश कर कामशास्त्र का अध्ययन ।

३. अनेक स्थापित मठों में चार प्रमुख—पश्चिम में द्वारका का शारदा मठ, पूरब में पुरुषोत्तम तीर्थ का गोवर्द्धन मठ, उत्तर में बदरिकाश्रम का योपशान मठ, दक्षिण में रामेश्वर का शृंगगिरि मठ ।

४. वेदान्त, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता और ईश, कन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक उपनिषदों पर अद्वैतवादी भाष्य; इसके अतिरिक्त आत्मानात्मक विवेक, मोह-मुद्गर, विवेक-चूड़ामणि, ब्रह्मनामावलि, कौपीन-पंचक, आत्म-पूजा, आदि की रचना ।

५. कांचीपुर में ३२ वर्ष की अवस्था में मृत्यु ।





६ (छ) कबीरदाम

१. कबीर पंथ के प्रवर्तक महात्मा और हिन्दी के कवि; जन्म ज्येष्ठ पूर्णिमा सं० १४५५ वि० एक ब्राह्मण कुल में (?); काशी में एक जुलाहा दम्पती नीरू और नीमा के घर लालित-पालित; महात्मा रामानन्द के शिष्य; गोरखनाथजी के भी भक्त; वस्त्र-निर्माण करके जीवन-निर्वाह; कहते हैं लोई नाम की स्त्री इनके सदा साथ रही और इनके कमाल नामक पुत्र और कमाली नाम की पुत्री ।

२. कबीर पढ़े-लिखे नहीं; केवल सत्संग से ज्ञान की प्राप्ति; इनका हिन्दु-मुसलमान किमी से द्वेष नहीं; पर मौके-मौके पर दोनों को फटकार; आज भी हिन्दु-मुसलमान दोनों प्रकार के कबीरपंथी, कबीर-पंथ में, योग सम्बन्धी शारीरिक क्रियाओं और चरित्र-सम्बन्धी बातों की विशेषता; निर्गुणवाद का प्राधान्य; गोरख पंथ से बहुत, कुछ मिलता-जुलता; इनका रहस्यवाद दार्शनिक; रूपकों, दृष्टान्तों

उत्प्रेक्षाओं आदि से धर्म-सम्बन्धी ऊँचे विचारों एवं सिद्धान्तों की सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति; इनकी उलटी वाणियाँ प्रसिद्ध ।

३. कबीर ने स्वयं पुस्तकें नहीं लिखीं; वे साखी और भजन बनाकर कहा करते और उनके शिष्य कंठस्थ कर लेते; पीछे वही संगृहीत; कहते हैं उनके नाम के अधिकांश ग्रन्थ शिष्यों द्वारा रचित, यद्यपि उनके ज्ञान और विचार कबीर के ही; इस समय इनके नाम की लगभग ७५ पुस्तकें प्राप्त ।

४. सं० १५७५ वि० में मगहर स्थान में शरीरान्त ।

५. कबीर का एक पद—

भीनी भीनी बीनी चदरिया ।

काहे के ताना, काहे का भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया ।

इंगला पिगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया ॥

आठ कँवल दल चरखा डोलै, पाँच तत्तु गुन तीनी चदरिया ।

साँई को सियत मास दस लागै, ठोक ठोक के बीनी चदरिया ॥

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ै, ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया ।

दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया ॥





६ (ज) नानक

१. सिक्ख धर्म के संस्थापक महात्मा; जन्म लाहौर जिले के तलवंडी ग्राम में कार्तिक पूर्णिमा सं० १५२६ वि०; अब यह स्थान नानकाना साहब नाम से प्रसिद्ध; पिता कल्याणचन्द खत्री और माता तृप्ता; १८ वर्ष की उम्र में गुरुदासपुर के मूलचन्द खत्री की कन्या सुलक्षणी से विवाह; दो पुत्र—एक श्रीचन्द, जो उदासी पंथ के प्रवर्तक, दूसरे लक्ष्मीचन्द, जिनके वंशज आज भी वर्तमान।

२. भारत के सभी प्रमुख स्थानों में भ्रमण करने के अतिरिक्त बर्मा, लंका, नेपाल, सिक्कम, भूटान, सिंध, मक्का, जहा, मदीना, रूम, बगदाद, बोखारा, इरान, बेलोचिस्तान, कंधार आदि की भी यात्रा; टर्की के सुलतान और बाबर से भेंट, काशी के कबीर से धर्मचर्चा।

३. आपका खयाल था कि हिन्दू और मुसलमान दोनों अपने प्रकृत धर्मों को छोड़कर बाह्याडम्बर से घिरे हैं; आप कहते थे कि सबके एक ईश्वर हैं जो निराकार, निर्विकार और सत्यस्वरूप हैं; जाति-पाँति और मूर्तिपूजा के विरोधी।

४. ३० मुजिया (धर्मोपदेश स्थान) की स्थापना; सं० १५८७ में कर्तारपुर बसाना और अन्तिम समय वहीं बिताकर ६६ वर्ष की अवस्था में आश्विन बदी १० सं० १५९६ में परम-ज्योति में लीन।

सिक्खों के दस गुरु—नानक, अङ्गद, रामदास, अर्जुन, हरि, गोविन्द, हरिराम, हरिकृष्ण, तेगबहादुर, गुरुगोविन्द हुए; सिक्खों का विश्वास है कि गुरु नानक की आत्मा ही पीछे के दसों गुरुओं में वर्तमान रही, इसीसे अन्य गुरु भी अपनी रचनाओं में अपने नाम की जगह नानक ही लिखते गये। गुरु अर्जुन ने अपने पूर्ववर्ती गुरुओं की वाणियों को संगृहीत कर श्री गुरु ग्रन्थ साहब तैयार किया।



६ (भू) सूरदास

१. हिन्दी के अतिश्रेष्ठ कवि और भगवान श्रीकृष्ण के परम भक्त; जन्म विभिन्न मतानुसार दिल्ली के पास सिही ग्राम या आगरे के पास रुनकता ग्राम में सं० १५४० वि० के लगभग; पिता सारस्वत ब्राह्मण रामदास; तरुणावस्था में विरक्ति; गऊ घाट आगरा और मथुरा के बीच में निवास, और वही सं० १५७६ वि० के लगभग स्वामी वल्लभाचार्य के दर्शन और उनके शिष्य; श्रीकृष्ण चरित्र पर रचनाएँ, जो पीछे श्रीमद्भागवत के सौंचे में परिवर्तित; सम्भवतः जन्म से नहीं; बल्कि युवावस्था में नेत्रहीन; कदाचित् सम्राट अकबर से भेंट; पारमौली या गोकुल के ग्राम में ८० वर्ष की अवस्था में मृत्यु १५२० वि० ।

२. रचित पद लगभग सवा लाख (जिसमें पाँच-सात हजार ही अभी प्राप्त) जिनका संग्रह सूरसागर नाम से विख्यात; यह कवि की भावुकता का और उनकी कविता के लालित्य और माधुर्य का सागर है; इसीसे विषय आदि के अनुसार छोटे-बड़े अन्य संग्रह तैयार; सभी पद शुद्ध ब्रज भाषा में; भक्ति-मगुण ।

३. एक उदाहरण—

प्रभु, मेरे अवगुन चित न धरौ ।

ममदरसी प्रभु नाम तिहारो, अपने पनहि करौ ॥

इक लोहा पूजा मे राखत, इक घर बधिक परौ ।

यह दुविधा पारस नहीं जानत, कंचन करत खरौ ॥

इक नदिया इक नार कहावत, मैलोइ नीर भरौ ।

जब मिलि कै दोउ एक बरन भए, सुरसरि नाम परौ ॥

एक जीव इक ब्रह्म कहावत, 'सूर' स्याम भगरौ ।

अबकी बेर मोहि पार उतारौ, नहि पन जात टरौ ॥

६—(ज) तुलसीदास

१. हिन्दी साहित्य के गौरव और भगवान रामचन्द्र के अनन्य भक्त कवि; जन्म बाँदा जिले के राजापुर ग्राम (?); पिता सरयूपारी ब्राह्मण आत्माराम दृवे; माता हुलसी; जन्म विविध मतानुसार सं० १५५४, १५८३ या १५८६ वि०; जन्म के कुछ ही दिन बाद माता-पिता की मृत्यु; अतएव भीख मांग कर उदर-पोषण; महात्मा नर-हरि के शिष्य; बचपन का नाम रामबोला; अयोध्या, सूकरखेत (सरयू और घाघरा के संगम पर) और काशी आगमन; शेष सनातनजी से काशी में १५ वर्ष की अवस्था में शिक्षा समाप्त कर घर वापस; दीन-बन्धु पाठक की कन्या परम सुन्दरी रत्नावली से विवाह; पत्नी पर अत्यन्त आशक्ति; एक बार इनके नैहर जाने पर अंधेरी रात में भी नदी पार कर ससुराल; लज्जित पत्नी की मीठी झिड़की कि ऐसी प्रीति भगवान में होती तो अच्छा; इसी बात पर विरक्ति; फिर प्रयाग, अयोध्या, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, द्वारावती; बदरिकाश्रम, मान-सरोवर, कैलाश, जनकपुरी, चित्रकूट आदि का भ्रमण; विशेषतः काशी, अयोध्या और चित्रकूट में निवास ।

२. १६१६ वि० के पश्चात् रचना आरम्भ; ब्रज में भक्त कवि सूरदास से भेंट; भ्रमरगीत आदि के रचयिता नन्ददासजी से स्नेह; अब्दुर्रहीम खानखाना और काशी के जागीरदार टोंडरमल पर अनुराग; कवि गंग और केशवदास से भी मिलन ।

३. रचना—१ रामचरित मानस २ विनय पत्रिका, ३ कवितावली, ४ दोहावली, ५ रामगीतावली, ६ कृष्ण गीतावली, ७ रामाज्ञा प्रश्नावली, ८ पार्वती मंगल, ९ जानकी मंगल, १० वैराग्य संदीपनी, ११ रामलला नहछू, १२ बरवै रामायण, १३ छप्पय रामायण, १४ हनुमान बाहुक, १५ संकट मोचन, १६ रामशलाका आदि; प्रथम ६ प्रमुख; रामचरित मानस सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ और हिन्दुओं के घर-घर प्रचार; मृत्यु सं० १६८० वि० श्रावण शुक्ल सप्तमी ।

४. रचना का एक उदाहरण—

ऐसो को उदार जग माहीं ।

बिनु सेवा जो द्रवै दीन पै राम सरिस कोउ नाहीं ॥

जो गति जोग विराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी ।

सो गति देत गीध सबरी कहैं, प्रभु न बहुत जिय जानी ॥

जो सम्पति दससीस अरपि करि, रावण सिव पहुँ लीन्ही ।

सो संपदा विभीषण कहैं अति, सकृच सहित हरि दीन्ही ॥

तुलसिदास सब भाँति सकल सुख, जो चाहति मन तेरे ।

तौ भजु राम काम सब पूरन, करे कृपा नधि तेरे ॥

६—(ट) मीरा

१. भगवान् श्रीकृष्ण की अनन्य उपासिका और हिन्दी की कवयित्री; जोधपुर-मड़ता के राठौर रतन सिंह की पुत्री; जन्म कुड़की ग्राम सं० १५६० वि० के लगभग; उदयपुर के महाराणा साँगा के पुत्र भोजराज से विवाह सं० १५७३ वि०. दोही वर्ष बाद वैधव्य; जन्म से हरिभक्ति; दिन-रात श्री गिरिधरजी की उपासना, भजन आदि में लीन; साधु-मत्संग के कारण परिवारवालों की रोक-टोक, जिससे कष्ट; विवाह के दस वर्ष बाद श्वशुर महाराणा साँगा बाबर से परास्त, उसके दूसरे वर्ष स्वर्गवासी; पिता रत्न सिंह की भी उसी युद्ध में वीरगति; पीछे अपने देवर राणा विक्रमाजित द्वारा बहुत सताया जाना; विष तक देने की बात; बहुत तंग आकर नैहर मेड़ता को, जहाँ सं० १५६५ वि० तक निवास; तत्पश्चात् तीर्थ यात्रा; कुछ दिन मथुरा और वृन्दावन में वास; पश्चात् द्वारका; वहीं सं० १६०३ वि० के लगभग शरीरान्त ।

२. इनके लिखे नगसी जी रो माहेरो, गीतगोविन्द की टीका. सोरठ के पद, मीराबाई की मलार, राग गोविन्द और मीरानी

गरवी (गरवा गीत) नामक ग्रन्थ, जो प्राप्य नहीं है; इनके पद राजस्थानी, व्रजभाषा और गुजराती में; पदों में हरिभक्ति प्रकट ।

३. रचना का एक उदाहरण—

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई ।
 दूसरो न कोई साधो सकल लोक जोई ॥
 भाई छोड़्या बन्धु छोड़्या छोड़्या सगा सोई ।
 साधु संग बैठि-बैठि लोक लाज खोई ॥
 भगत देख राजी हुई जगत देख रोई ।
 अँसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम बेल बोई ॥
 दाँध मथ धृत काढ़ लियो डार दई छोई ।
 राणा विष की प्यालो भेज्यो पीय मगन होई ॥
 अब तो बात फेल गई जानै सब कोई ।
 भीरा राम लगन लागी होणी होय सो होई ॥

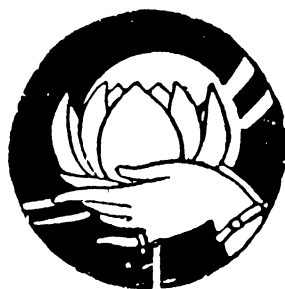


६ (ठ) शेरशाह

१. मुस्लिम युग का एक सुयोग्य शासक; पिता हसन खाँ शाहाबाद जिले में सासाराम का जागीरदार; बचपन का नाम फरीद खाँ; सौतेली माँ से तग आकर जौनपुर भागना और वहीं अरबी-फारसी की शिक्षा, लौटकर पिता की जागीर का प्रबन्ध; माँ के झगड़े से फिर भागकर बिहार के सूबेदार बहार खाँ लोहानी के यहाँ नौकरी; एक शेर को मारने से शेर खाँ नाम; बहार खाँ से मनमुटाव हो जाने पर बाबर के पाम; फिर सासाराम के जागीरदार और बहार खाँ के बेटे जलाल खाँ को बिहार की सूबेदारी में सहायता; चुनार के किले पर विजय; शेर खाँ की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर जलाल खाँ बंगाल के सुलतान की शरण में; सूर्यगढ़ा (मुंगेर जिला) की लड़ाई में वे दोनों शेर खाँ से परास्त; १५३४ ई० में दिल्ली के बादशाह हुमायूँ का शेर खाँ पर आक्रमण; चौसा (शाहाबाद) और कन्नौज में लड़ाई; हारने पर हुमायूँ का विदेश भागना; शेर खाँ शेरशाह नाम से दिल्ली का बादशाह १५४० ई०, बंगाल के अतिरिक्त मालवा, रायसीन, मुलतान, सिन्ध और जोधपुर पर विजय; कालिंजर की चढ़ाई में बारूद में

आग लगने से जलकर मृत्यु १५४५ ई०; अपना सकबरा सामागम में बनवाया ।

२. शासन की विशेषता—राज्य ४७ सरकारों (सूबों) में विभक्त; एक सरकार में कई परगने; गाँवों में पंचायत, ज्यादाती रोकने के लिए हाकिमों की दूसरे ही वर्ष बदली; जमीन को नपवाकर मालगुजारी की सुन्दर व्यवस्था; गाँवों की रक्षा मुकद्दम के हाथ में; सड़कों और सरायों का निर्माण; डाक का प्रबन्ध; सर्वत्र शांति; सेना का सुप्रबन्ध; व्यापार की सुविधा; सभी धर्मवालों पर सम-दृष्टि; न्याय में छोटे-बड़े का विचार नहीं; एक साधारण स्त्री की फरियाद पर भी अपने बेटे तक का सजा; शेरशाह की शासन-व्यवस्थाएँ अकबर ने ही नहीं, अंगरेजी सरकार ने भी अपनायीं ।



६ (ड) सम्राट् अकबर

१. भारत का एक सुयोग्य और सबसे अधिक उदार मुगल सम्राट्; हुमायूँ का पुत्र; जन्म १५४२ ई० अमरकोट के एक राजपूत सरदार के घर पर, पिता की शरणार्थी अवस्था में; १५५६ ई० में पिता की मृत्यु के बाद १३ वर्ष की अवस्था में शत्रुओं से घिरे एक छोटे-से राज्य का अधिकारी; किन्तु पीछे अपने बाहुबल से भारत के सभी हिन्दू राज्यों तथा मुसलमान नवाबों के राज्यों पर अधिकार कर १५५६ तक बेलूचिस्तान और काबुल-कान्धार सहित एक विशाल साम्राज्य की स्थापना ।

२. सुन्दर शासन-व्यवस्था; सम्राट् के अधीन एक मन्त्रिमंडल; देश १५ सूबों में विभाजित; प्रत्येक सूबा सूबेदार के अधीन; शहरों का प्रबन्ध कोतवालों के और गाँवों का प्रबन्ध पंचायतों के हाथ में; शाही नौकरी में जागीर न दी जाकर वेतन देने की प्रथा प्रचलित; राजा टोडरमल मानसिंह, बीरबल आदि हिन्दुओं को भी बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियाँ; हिन्दुओं के साथ विवाह-सम्बन्ध भी स्थापित; हिन्दुओं पर जजिया टैक्स और तीर्थयात्रा टैक्स लगाना बन्द; पशुहत्या निषेध; बालविवाह और सती प्रथा रोकने की चेष्टा ।

३. न्याय की सुव्यवस्था; सेना का सुन्दर सगठन; जमीन के लगान आदि के सुप्रबन्ध से किसानों की दशा का सुधार; सभी प्रजा के प्रति समदृष्टि ।

४. सभी धर्मों का आदर; सभी धर्मों के समन्वय स्वरूप एक 'दीन इलाही' धर्म की स्थापना का प्रयत्न; स्वयं पढ़ा-लिखा नहीं होने पर भी विद्वानों को दरबार में आश्रयप्रदान; हिन्दू धर्म ग्रन्थों का फारसी अनुवाद कराना; हिन्दी के सूर, तुलसी, कबीर, केशव, रहीम आदि इसी काल के कवि ।





६ (ढ) महाराणा प्रताप

१. हिन्दू कुल-दीपक और स्वतन्त्रता के पुजारी; मेवाड़ के राणा संग्राम सिंह के पौत्र और उदय सिंह के पुत्र; पिता का मुसलमानों के उत्पान से चित्तौर छोड़कर अरवली पहाड़ पर बसना; जन्म ६ मई १५४० ई०; पिता की मृत्यु १५७२ ई०; ३२ वर्ष की अवस्था में राजगद्दी; एक-एक कर सभी हिन्दू राजे तथा राजस्थान के राजपूत सरदार अकबर के अधीन, एकमात्र मेवाड़ के महाराणा अनन्त दुःख सहने और प्राणों की नौबत आने पर भी सर झुकाने को तैयार नहीं; मुसलमानों की अधीनता स्वीकार कर और उन्हें अपनी बहू-बेटियाँ देकर सुखपूर्वक रहनेवाले राजपूतों के प्रति उनकी घृणा ।

२. एक बार उनके घर सम्राट अकबर के मन्त्री मान सिंह के आने पर उनके साथ भोजन करने को तैयार नहीं; अपमान से मान सिंह को क्रोध; एक भारी शाही सेना लेकर महाराणा पर आक्रमण; हल्दीघाटी में घमासान युद्ध; मुगलों के दाँत खट्टे, पर प्रताप की हार; सब किले मुसलमानों के कब्जे में; प्रताप स्त्री-बच्चे सहित जंगलों और पहाड़ों की खाक छानता रहा; अकबर स्वयं ६ मास मेवाड़ रहकर प्रताप को वश में करने में सचेष्ट; पर वह वश में नहीं हो सका; २० वर्षों तक लड़ाई चलती रही; अन्त में भाग्य ने पलटा खाया, प्रताप की जीत; चित्तौर छोड़ कर सभी किलों पर उनका पुनरधिकार; अन्त में १६ जनवरी १५६७ ई० में उनका सुखपूर्वक देहान्त ।

३. चावंड से १॥ मील की दूरी पर बंडोली गाँव के पास बहने-वाले नाले के तट पर अंत्येष्टि-क्रिया, जहाँ सफेद पत्थर की आठ खम्भोंवाली एक छतरी आज भी टूटी-फूटी हालत में उस वीरात्मा हिन्दूपति की याद दिला रही है ।

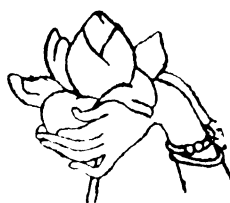


६ (ण) छत्रपति शिवाजी

१. मुस्लिम युग के हिन्दू-धर्म-रक्षक और राज्य-संस्थापक; पिता सीसोदिया वंशज शाहजी भोंमला. जां बीजापुर के अधीन एक जागीरदार; माता जीजाबाई; जन्म १६२७ या १६३० ई०; माता से रामायण और महात्माओं की कथाएँ सुनकर हिन्दू धर्म से प्रेम और वीरता की भावना जाग्रत; पुस्तकीय शिक्षा की अपेक्षा अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा से विशेष अनुराग; विदेशी मुसलमानों को भारत से निकाल कर हिन्दू-साम्राज्य-स्थापन का हौसला; अपने एक दल का संगठन; १६४६ में तोरण किले पर अधिकार; फिर चाकण और पुरन्दर किले के स्वामी; नये किलों का भी निर्माण; बीजापुर के खजाने पर कब्जा करने पर सुलतान द्वारा पिता की गिरफ्तारी; कुछ दिन चुप रहने के बाद जावली के राज्य और रामगढ़ के किले पर अधिकार; बीजापुर के सुलतान द्वारा भेजे गये आक्रमणकारी अफजल खान को मौत के घाट उतार दक्षिण-पच्छिम महाराष्ट्र के स्वामी ।

२. औरङ्गजेब की ओर से भेजा गया शायम्ता खाँ भी मुश्किल से अपनी जान बचाकर वापस; जयसिंह के भेजे जाने पर संधि; कुछ किले मुगलों को सुपुर्द, पर बदले में बीजापुर में चौथ आदि वसूलने की सुविधा; मुगल दरबार में जाने पर कैद, पर अपनी चातुरी से कैद से निकलकर अनेक किलों पर अधिकार; १६७४ में रायगढ़ में राजगद्दी और 'छत्रपति' तथा 'गो ब्राह्मण प्रतिपालक' की उपाधि; मुगल साम्राज्य पर भारी धक्का; औरंगजेब द्वारा भी मराठा राज्य की मान्यता; मृत्यु १६८० ई० ।

३. उद्देश्य—अपने धर्म की रक्षा और स्वतन्त्रता प्राप्ति, दूसरे धर्म पर आक्रमण नहीं; न किसी मस्जिद को तुड़वाना, न कुरान का अपमान, बल्कि फकीरों और दरगाहों को महायत्ना; चरित्र सब तरह से निर्मल; शासन का सुप्रबन्ध, सेना और मन्त्रि-परिषद् का संगठन; खेतीबारी और काम-धंधों की उन्नति; प्रजा को सुखी बनाने की चेष्टा ।



६ (त) स्वामी विवेकानन्द

१. आधुनिक भारत के सामाजिक और धार्मिक सुधारकों में प्रमुख; कायस्थ-परिवार में जन्म कलकत्ता में ६ जनवरी १८६६ ई० को; नाम नरेन्द्रनाथ दत्त; क्रिश्चियन कालेज कलकत्ता से ग्रेजुएट; बचपन में ब्रह्म समाज का प्रभाव; परमहंस रामकृष्ण से अठारह वर्ष की अवस्था में भेंट और उन्हें गुरु स्वीकार; अगस्त १८८६ में रामकृष्ण के देहावसान के पश्चात् संन्यास ग्रहण; नाम विवेकानन्द; वेदान्त मतानुयायी ।

२. विश्व-धर्म-सम्मेलन शिकागो (अमेरिका) में सम्मिलित होने के लिए जापान होकर अमेरिका के लिए बम्बई से प्रस्थान ३१ मई १८९३; इनके उपदेश और वक्तृत्वकला का वहाँ अद्भुत प्रभाव; वहाँ अगस्त १८९५ तक रहकर सैकड़ों को शिष्य बनाया; सितम्बर में स्वास्थ्य-सुधार के लिए यूरोप, फिर दिसम्बर में अमेरिका वापस; मैक्समूलर इनसे विशेष प्रभावित; वहीं मारग्रेट नोबुल (सिस्टर निवेदिता) का इनकी शिष्या होकर हिन्दू धर्म-ग्रहण; १८९६ के अप्रैल में अमेरिका से यूरोप के रास्ते घूमते-फिरते कुछ शिष्यों सहित

१८६७ की जनवरी में कोलम्बो (लंका) आगमन; यहाँ आकर राम-कृष्ण मिशन की स्थापना; कलकत्ता के पास बेलूर मठ और अलमोड़ा के पास मायावती मठ का निर्माण; १८६६ के जून में पुनः अमेरिका और १८०० के दिसम्बर में वापस ।

३ अनेक जिल्दों में अंग्रेजी लेखों और भाषणों का संग्रह, जिनके विभिन्न खंड भारतीय भाषाओं में अनेक नामों से अनूदित ।

४. १८०२ की ४थी जुलाई को चालीस वर्ष की अवस्था में बेलूरमठ में शरीरत्याग ।



६ (थ) स्वामी दयानन्द

१. वैदिक धर्म के पृष्ठपोषक और समाजसुधारक महात्मा; जन्म गुजरात प्रान्त के मोरबी राज्यान्तर्गत टंकारा ग्राम में सं० १८८१ वि०; पिता कट्टर शैव; जाति ब्राह्मण; नाम मूलशंकर दयाल; घर पर और पास की पाठशाला में वैदिक साहित्य तथा व्याकरण आदि का अध्ययन, विवाह की तैयारी होने पर २२ वर्ष की उम्र में गृहत्याग; पिता के लौटाने पर भी फिर भाग जाना; बड़ौदा के चैतन्यमठ तथा अन्य कई स्थानों में विद्याध्ययन; पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास ग्रहण और नाम दयानन्द; तत्पश्चात् योगी-महात्माओं की खोज में अहमदाबाद, आबू, हरद्वार, हृषिकेश, टेहरी, बदरी नारायण, मुरादाबाद, सम्भल आदि का भ्रमण; सं० १८९७ में मथुरा में स्वामी विरजानन्द से भेंट और उनसे ढाई वर्षों तक शिक्षादीक्षा ।

२. विरजानन्द जी से विदा होकर वैदिक धर्म का प्रचार और अन्य मतानुयायियों से शास्त्रार्थ; प्रचारार्थ आगरा, ग्वालियर, करौली, अजमेर, पुष्कर, मथुरा, मेरठ, हरिद्वार, कन्नौज, फर्रुखाबाद,

कानपुर, प्रयाग, काशी, मिरजापुर, आरा, पटना, मुंगेर, भागलपुर और कलकत्ता आदि का दौरा; बम्बई में सं० १८३२ में आर्य-समाज की स्थापना; वैदिक धर्म-प्रचार, मतमतान्तरों का खंडन, मूर्तिपूजा-निषेध, एक ईश्वर की मान्यता, अवतार-वाद और विभिन्न देवी-देवताओं की अमान्यता, विधवा-विवाह का समर्थन, मादक द्रव्य और छूतछात का वहिष्कार आदि आर्यसमाज का काम; पूने में महादेव गोविन्द राणाडे से भेंट १८३२ वि०; दिल्ली में केशवचन्द्र सेन से भेंट; पंजाब से संयुक्त प्रान्त तथा राजस्थान के विभिन्न स्थानों का दौरा तथा वहाँ के राजाओं और महाराजाओं को उपदेश; जोधपुर में किसी के द्वारा भोजन में विष दिया जाना; अजमेर आकर ५६ वर्ष की अवस्था में सं० १८४० की कार्तिक अमावस्या के दिन शरीरान्त; रचना सत्यार्थप्रकाश आदि ।





६ (द) रवीन्द्रनाथ ठाकुर

१. भारत के विश्वविख्यात कवि; दादा द्वारकानाथ और पिता महापि देवेन्द्रनाथ ब्रह्म समाज के प्रमुख नेता और समृद्धिशाली व्यक्ति; जाति ब्राह्मण; जन्म कलकत्ता ६ मई १८६१ ई०; स्कूल में या घर पर नियमित रूप से पढ़ना नापसन्द; १८७७ में पहली बार इंग्लैंड; कुछ दिन ब्राइटन स्कूल में, फिर युनिवर्सिटी कालेज लंदन में; एक वर्ष बाद भारत वापस।

२. जन्मजात कवि; १५ वर्ष की उम्र के पहले से ही कविताएँ पत्रों में प्रकाशित; मृणालिनी देवी से विवाह दिसम्बर १८८३; बंगीय साहित्य परिषद् के एक संस्थापक; बंकिमचन्द्र चटर्जी से मित्रता; कई बार अमेरिका, यूरोप, अफ्रिका और एशिया के प्रमुख देशों में भ्रमण; बोलपुर के पास अपने ढंग की निराली शिक्षासंस्था शान्तिनिकेतन की स्थापना १९०१; जहाँ पीछे अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय विश्वभारती की स्थापना; १९०२ के नवम्बर में पत्नी-वियोग; १९०५ में पिता की मृत्यु; १९१४ में 'सर' की उपाधि जिसका १९१६ में त्याग; महात्मा गाँधी द्वारा गुरुदेव नाम से संबोधित; गीताञ्जलि पर 'नोबेल' नामक विश्व-पुरस्कार १९१३।

३. गद्य और पद्य काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक, यात्रा-विवरण आदि विषयों पर बँगला और अंग्रेजी में दर्जनों ग्रन्थ; जिनका संसार की अनेक भाषाओं में अनुवाद।

मृत्यु ७ अगस्त १९४१ कलकत्ता, ८१ वर्ष की अवस्था में।



६ (घ) महात्मा गांधी

१. आधुनिक भारतीय राष्ट्र के निर्माता; पिता काठियावाड़ के पोरबन्दर राज्य के दीवान कर्मचन्द उत्तमचन्द गाँधी, जन्म पोरबन्दर २ अक्टूबर १८६८ ई०; नाम मोहनदास कर्मचन्द गाँधी; पिता पोरबन्दर छोड़कर राजकोट में; यहाँ मोहनदास ७ वर्ष की अवस्था में प्राइमरी स्कूल में भर्ती; बचपन से ही सीधे-सादे और धार्मिक; १३ वर्ष की अवस्था में कस्तूरबा से विवाह; मैट्रिक पास कर १८वें वर्ष बैरिस्टरी पढ़ने इंग्लैंड; तीन वर्ष बाद लौट कर बम्बई में बैरिस्टरी १८८१ ई०; वहाँ बैरिस्टरी न चलने पर ६ महीने बाद राजकोट; १८८३ में पोरबन्दर के एक व्यापारी द्वारा दक्षिण अफ्रिका के डरबन नामक स्थान में एक वर्ष के लिए किसी मुकदमे में बुलाहट; वहाँ भारतीयों की दुर्दशा देखने का अवसर; गोरों का अत्याचार रोकने के लिए नेटाल इंडियन कांग्रेस की स्थापना; तीन वर्ष बाद भारत आकर तिलक, गोखले आदि को वहाँ की हालत बताना; ६ मास बाद स्त्री और बच्चों को लेकर पुनः अफ्रिका; वहाँ पहुँचने पर गोरों का दुर्व्यवहार; बोअर युद्ध में घायल ब्रिटिश सैनिकों की सेवा, १८०१ में सपरिवार भारत आगमन और कलकत्ता कांग्रेस में सम्मिलित; तीसरी बार अफ्रिका जाकर फिनिक्स में एक आश्रम की स्थापना और इंडियन ओपिनियन पत्र का प्रकाशन; फिनिक्स

के दो उपद्रवी अश्रमियों के सुधार के लिए सात दिन का उपवास; जूलू विद्रोह में घायल जूलुओं की सेवा ।

२. अफ्रिका सत्याग्रह में पहली बार जेल १९०८; सत्याग्रह की समाप्ति १९१४; १९१५ में भारत आकर स्वराज्य-आन्दोलन में भाग और साबरमती आश्रम की स्थापना; प्रथम महासमर में अंग्रेजों की सहायता; चम्पारण-सत्याग्रह १९१७ और खैरा सत्याग्रह १९१८; रॉलेट कानून के विरुद्ध आन्दोलन १९१९ जिससे जलियाँवाला हत्या-कांड; स्वराज-प्राप्ति के लिए असहयोग-आन्दोलन १९२०; देश भर में सनसनी; हिन्दू-मुस्लिम एकता, विदेशी-वस्तु-बहिष्कार; खादी-उत्पत्ति, अछूतों-द्वारा, सरकारी कौंसिल; कचहरी, स्कूल, का बहिष्कार; १९२२ में ६ वर्ष के लिए कैद; बीमारी से १९२४ में छुटकारा ।

३. १९३० से पूर्ण स्वतन्त्रता का आन्दोलन; नमक सत्याग्रह से देश भर में खलबली; गान्धी-इरविन समझौता; गोलमेज कान्फ्रेंस (लंदन) से लौटने ही गिरफ्तार १९३२; अछूतों को हिन्दुओं से अलग न होने देने के लिए जेल में आमरण उपवास, और छुटकारा १९३३; 'भारत ब्रॉडो' आन्दोलन पर अनुयायियों सहित नजरबन्द, जिससे १९४२ की क्रान्ति; महासमर के बाद जेलमुक्त; ब्रिटिश कैबिनेट मिशन से स्वतन्त्रता-प्राप्ति के सम्बन्ध में बातें और नेताओं की अन्तरिम सरकार की स्थापना १९४६; उमी वर्ष हिन्दू-मुस्लिम दंगे में नोआखाली (बंगाल) आदि में जान के खतरे पर भी मेल-मिलाप का प्रयत्न; १९४७ में खंडित भारत को स्वतन्त्रता; दो खंडों के जन-परिवर्तन में उद्घासितों को भीषण कष्ट ।

४. कुछ कट्टर हिन्दुओं द्वारा मुस्लिम पक्षपात का आरोप; फलस्वरूप ३० जनवरी १९४८ को मध्या समय एक उत्तेजित व्यक्ति द्वारा गोली के शिकार और प्राणान्त ।



६ (न) देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद

१ स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति; जन्म जीरादेई, जिला सारन ३ दिसम्बर १८८४ ई०; शिक्षा छपरा पटना और कलकत्ता; कलकत्ता विश्वविद्यालय से मैट्रिक, आई० ए०, बी० ए० में सर्वप्रथम, बिहारी-छात्र-सम्मेलन की स्थापना और स्वदेशी आन्दोलन में भाग १९०६; एम० ए० १९०७; जी० बी० बी० कॉलेज मुजफ्फरपुर में अंगरेजी के अध्यापक और कुछ दिन स्थानापन्न प्रिन्सिपल; अर्थशास्त्र और इतिहास के अध्यापक, सिटी कॉलेज कलकत्ता १९०६ ई०; बी० एल० १९१०; वकालत कलकत्ता हाईकोर्ट १९११-१६, पटना हाईकोर्ट १९१६-२०; अध्यापक, युनिवर्सिटी लॉ कॉलेज कलकत्ता १९१४-१६; कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० एल० में पुनः सर्व प्रथम १९१५।

२. महात्मा गांधी के साथ चम्पारण-सत्याग्रह में १९१७; संस्थापक और सम्पादक, 'पटना ला वीकली' और साप्ताहिक, पत्र 'देशी' पटना; असहयोग-आन्दोलन में भाग और बिहार विद्यापीठ की स्थापना १९२०; उसके क्रमशः उपकुलपति और कुलपति; अभ्यक्ष, बिहार राजनीतिक सम्मेलन १९२०, २६; स्वागत

मन्त्री. गया काँग्रेस १९२२; उसी वर्ष काँग्रेस के प्रधान मन्त्री; अध्यक्ष, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कोकोनाडा १९२३, नागपुर १९३५; युद्ध विरोधी अन्तराष्ट्रीय सम्मेलन आस्ट्रिया और विश्व-युवक शान्ति सम्मेलन हार्लैंड में भारत का प्रतिनिधित्व १९२६; अध्यक्ष, बम्बई काँग्रेस १९३४; पुनः अध्यक्ष १९३६ और नवम्बर १९४७ से दिसम्बर १९४८; स्वराज्य आन्दोलन में जेल १९३०, ३२, ४१, ४२-४५ ।

३. अनेक विश्वविद्यालयों से एल-एल० डी० की उपाधि; भारत के अन्तरिम सरकार के खाद्य और कृषि सदस्य १९४६-५०; तत्पश्चात् भारत के राष्ट्रपति ।

४. रचनाएँ—चम्पारण में महात्मा गांधी, खादी का अर्थ-शास्त्र, मेरे यूरोप के अनुभव, बिहार में महात्मा गाँधी, संस्कृत साहित्य का अध्ययन, इंडिया डिवाइडेड, खंडित भारत, आत्मकथा, बापू के कदमों में आदि ।





६ (प) जवाहरलाल नेहरू

१. भारत के नेता और विश्व के एक प्रमुख राजनीतिज्ञ, पिता मोतीलाल नेहरू अपने समय के भारत के एक प्रमुख नेता; माता स्वरूपरानी; जन्म १४ नवम्बर १८८६ ई० निवास स्थान इलाहाबाद; १५ वर्ष की उम्र में इंग्लैंड; हैरो स्कूल और ट्रिनिटी कालेज कैम्ब्रिज में शिक्षा; इनर टेम्पुल के बार-एट-ला; कमला देवी से विवाह १९१६ जिनकी मृत्यु १९३६; पुत्री इन्दिरा; एडवोकेट इलाहाबाद हाइकोर्ट १९१२; मन्त्री होमरूल लीग इलाहाबाद १९१८; असहयोग आन्दोलन में १९२१; काँग्रेस के प्रधान मन्त्री १९२३, २८-२९ और सभापति १९२९-३० ३५-३६ ३७, ४८, ५१-५४; दलित राष्ट्र सम्मेलन ब्रूसेल्स में काँग्रेस के प्रतिनिधि; स्वराज्य आन्दोलन में जेल १९२२, ३०, ३१, ३३, ३४, ३५, ४० तथा ६ अगस्त १९४२ से १५ जून १९४५।

२. सितम्बर १९४६ में भारत की अन्तरिम सरकार में सम्मिलित और वायसराय की कार्यसमिति के उपाध्यक्ष; प्रजातन्त्र स्थापित होने पर भारत सरकार के प्रधान मन्त्री और परराष्ट्र मन्त्री १९५० से; देश-विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों से सम्मानार्थ एल-डी० की उपाधि; समय-समय पर यूरोप, अफ्रिका, अमेरिका कनाडा, चीन, दक्षिण-पूर्व एशिया आदि महादेशों और देशों का अनेक कारणों से भ्रमण; बहन विजयलक्ष्मी पंडित अनेक देशों में भारतीय राजदूत और संयुक्त राष्ट्रसंघ की अध्यक्षता १९५४-५५ ।

३ अंगरेजी रचनाएँ—पिता के पत्र; मेरी कहानी, विश्व इतिहास की झलक, सोवियत रूस, भारत का आविष्कार, लेखों और भाषणों का संग्रह ।



७. आदर्श गाँव

- १ सुधरे हुए हवादार घर ।
- २ चौड़ी गलियाँ ।
- ३ पशुओं के लिए अलग घर ।
- ४ उच्च कोटि की स्वच्छता—
 - (क) पेशाबखाने का प्रबन्ध ।
 - (ख) पाखाने का प्रबन्ध ।
 - (ग) पक्की नालियों का प्रबन्ध ।
 - (च) कूड़े-ककट को गाँव से दूर रखने और उसके खाद बनाने का प्रबन्ध ।
- ५ निवासी सबल और स्वस्थ—उनके लिए साफ हवा, साफ जल और पुष्टिकारक भोजन ।
- ६ अखाड़ों का प्रबन्ध ।
- ७ स्वावलम्बी और स्वशासित—न कोई शोषक, न कोई शोषित—कोई बेकार नहीं—सभी के लिए रोजी-रोटी का बन्ध—ग्रामोद्योग का विकास ।
- ८ अधिक उत्पादन की ओर दृष्टि—सहकारी समितियाँ ।

६ सहकारी खेता ।

१० शिक्षा का प्रबन्ध—कम से कम एक प्राथमिक स्कूल और पुस्तकालय ।

११ शिशु-क्रीडालय का प्रबन्ध ।

१२ स्वस्थ मनोरंजन का प्रबन्ध ।

१३ अपनी कचहरी और अपना न्यायालय ।

१४ राजनतिक जागृति ।

१५ अवकाश-काल का उचित उपयोग ।

१६ लुब्ध अथवा लूट का भेदभाव नहीं ।

१७ मुकदमेबाजी से दूर ।

१८ नशाली वस्तुओं का व्यवहार बिल्कुल बन्द ।

१९ अवकाश-काल का उचित उपयोग ।



८. पंचायत और ग्राम-राज्य

- १ स्वतन्त्रता आई—पर स्वतंत्रता का मधुर फल अभी तक गाँवों के कोने-कोने तक नहीं पहुँचा ।
- २ स्वतन्त्रता का अर्थ—सभी के लिए काम और जीविका का प्रबन्ध ।
- ३ स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साथ उत्तरदायित्व में वृद्धि ।
- ४ पायी हुई स्वतंत्रता की रक्षा और देश की उन्नति का भार हमारे कंधों पर ।
- ५ यह तभी संभव, जब देश के सभी व्यक्ति अपने अधिकारों को जानने के साथ-साथ कर्तव्यों को भी समझें ।
- ६ कर्तव्य और अधिकार का व्यावहारिक ज्ञान ।
- ७ केन्द्रित और विकेन्द्रित शासन ।
- ८ ग्राम-पंचायत की छिपी हुई शक्तियाँ और इसके द्वारा गाँव की उन्नति की संभावनाएँ ।
- ९ ग्राम-पंचायत विकेन्द्रित शासन का सुन्दर रूप ।
- १० ग्राम-विकास द्वारा ही देश का विकास ।
- ११ ग्राम-पंचायत की प्राचीन परंपरा ।
- १२ ग्राम-पंचायत का वर्तमान रूप और इस पर एक दृष्टि ।
- १३ आप पंचायत कैसे कायम करें ?

६. ग्राम-सेवक

१. स्वावलम्बी और स्वशासित गाँव के निर्माण के लिए ग्राम-सेवक की आवश्यकता ।
२. वह गाँव की सुव्यवस्था और उन्नति का आधार—वह गाँव का व्यावहारिक शिक्षक ।
३. ग्राम-सेवक के गुण—
 - क अहंकार-शून्य;
 - ख निडर;
 - ग शिक्षित और विनीत;
 - घ सदाचारी;
 - च जातीयता, दलबन्दी और साम्प्रदायिकता से दूर;
 - छ गाँव के रहनेवालों पर श्रद्धा;
 - ज गाँव की उन्नति की लगन;
 - झ कर्तव्य भाव से काम करनेवाला ।

ग्रामसेवक के कर्तव्य—

- क गाँव की सफाई, शिक्षा, आर्थिक विकास, रक्षा, शान्ति
आदि सभी ओर हमेशा नजर रखना;
ख गाँववालों के सहयोग से काम करना;
ग किसी काम को करने के लिए गाँववालों से ही निर्णय
कराना—अपना निर्णय नहीं लादना;
घ धीमी प्रगति से नहीं घबराना;
ङ अपने हाथ से काम करने में लाज या संकोच नहीं करना;
च सभी के लिए रोटी और रोजी का प्रबन्ध करना;
छ गाँव की उन्नति के लिये लगे रहना ।



१० ग्राम-रक्षा

- १ समाज में तरह-तरह के स्वभाव के मनुष्य—कोई संत, कोई असंत, कोई चोर, कोई साधु ।
- २ दुष्टों और चोरों से समाज की रक्षा की आवश्यकता ।
- ३ सरकार द्वारा इस संबंध में पुलिस का प्रबन्ध ।
- ४ पुलिस की संख्या बहुत ही थोड़ी—इसकी संख्या बढ़ाने में अधिक खर्च ।
- ५ प्रतिदिन के कार्य में उसकी सहायता का भरोसा करना भी अनुचित ।
- ६ विकेन्द्रित शासन में गाँववालों पर ही गाँव की रक्षा का भार ।
- ७ अतः गाँव के नवयुवकों पर ही गाँव की रक्षा का भार ।
- ८ पंचायत विधान में रक्षा-संबंधी नियम ।
- ९ आदर्श गाँव में चोरों, बदमाशों और डाकड़ों का बिल्कुल अंत ।
- १० गाँव का ही व्यक्ति चोर, बदमाश हो, तो उसे सुधारने का प्रयत्न; उसे पुलिस को सुपुर्द करने में भी हिचकिचाहट नहीं ।
- ११ बाहरी बदमाशों से भी मुकाबला करने की शक्ति की जरूरत ।
- १२ गाँव को आदर्श बनाये रखने का भार गाँववालों पर—पुलिस पर नहीं ।

११ देश की आर्थिक परतंत्रता

- १ देश की गरीबी का एक चित्र—पिछली गणना के अनुसार एक आदमी की आमदनी प्रति वर्ष—(२८४) रु० ।
- २ ऐसी स्थिति क्यों ? उत्पादन में कमी और धन का विपम बँटवारा ।
- ३ अतः अधिक उत्पादन की चेष्टा और क्रमशः समान वितरण का प्रबंध ।
- ४ अधिक उत्पादन के लिए पूंजी और यंत्रादि की आवश्यकता—दोनों की कमी ।
- ५ पर जन-बल की कमी नहीं और इसके द्वारा बड़े-बड़े काम किये जाने की संभावना । जन-बल की प्रेरणा देने की आवश्यकता ।
- ६ अनिवार्य (जरूरी) बचत की योजना—बचत के रुपये को विकास के कार्यों में लगाना ।
- ७ आर्थिक उत्थान और अन्य रचनात्मक कार्यों के लिए स्वाधीनता की प्राप्ति के लिये किये गये बलिदानों से उच्च कोटि के बलिदान की आवश्यकता ।
- ८ “मातृदेवो भव” “पितृदेवो भव” के साथ “ग्रामदेवो भव” का नारा ।

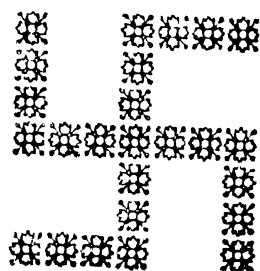
१२. स्वावलम्बी गाँव

- १ स्वावलम्बन का अर्थ—व्यक्ति का स्वावलम्बन, परिवार का स्वावलम्बन—गाँव का स्वावलम्बन ।
- २ प्राचीन काल के स्वावलम्बी और स्वशासित गाँव ।
- ३ गाँव के धन की बर्बादी के मार्गः—
 - क लोभी व्यापारियों द्वारा ;
 - ख मुकदमों में ;
 - ग नशीली वस्तुओं के सेवन में ;
 - घ विवाह और श्राद्ध में ;
 - ङ महाजनों द्वारा ।
- ४ गाँव के उद्योग-धंधों को फिर जीवित करने की आवश्यकता ।
इसके द्वारा बेकारी को दूर करना ।
- ५ मिल की बनी वस्तुओं का उपयोग और इसका स्वास्थ्य और समाज पर असर ।
- ६ स्वावलम्बी गाँव में सहयोग, प्रेम, मानवता, सहृदयता और नागरिकता की भावना का विकास । ।
- ७ गाँव को स्वावलम्बी बनाने का यह अर्थ नहीं कि बाहरी दुनिया से (दूसरे गावों अथवा शहरों से) संपर्क बिल्कुल न रहे ।
- ८ गाँव की महत्ता का विकास ही इसका लक्ष्य ।
- ९ स्वावलम्बी गाँव ही देश को स्वावलम्बी बनाने में सहायक ।

१३ गाँव का मुख्य धंधा कृषि

- १ वर्तमान दशा—प्राचीन ढंग से खेती—रूढ़ियों का चंगुल यहाँ भी—मानसून पर भरोसा—पर कभी बाढ़ से हानि, तो कभी वर्षा न होने से फसल की बरबादी।
- २ प्रति एकड़ पैदावार बहुत ही कम—दूसरे देशों की तुलना में एक तिहाई—कुछ फसलों में उससे भी कम।
- ३ कृषि में उन्नति के साधनः—
 - क गहरी जुताई ;
 - ख सिंचाई ;
 - ग उत्तम बीज ;
 - घ काफी मात्रा में खाद का दिया जाना ;
 - ङ नये ढंग से खेती ;
 - च कई फसलों का एक ही खेत में उपजाना—कभी परती न रहने देना ;
 - छ फसलों की आवृत्ति।
- ४ खेतों के छोटे-छोटे टुकड़े हानिकर—चकलेबन्दी की जरूरत।

- ५ सहकारी कृषि ।
- ६ फल और सब्जी की खेती ।
- ७ समाज की भलाई को ख्याल में रखकर ही बहुमूल्य चीजों की खेती ।
- ८ कृषि-विशेषज्ञों की सलाह की आवश्यकता ।
- ९ फसलों के उपजाने में समाज की आवश्यकता को ध्यान में रखने की जरूरत ।



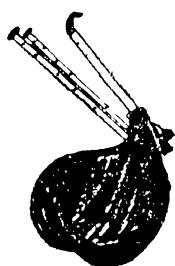
१४ सहकारी खेती

- १ छोटे-छोटे खेत—खेत भी एक किसान के एक जगह पर नहीं—
अच्छी तरह से खेती नहीं ।
- २ अतः चकलेबन्दी और सहकारी खेती की आवश्यकता ।
- ३ सहकारी खेती होने पर नये ढंग से खेती करना संभव ।
- ४ सहकारी खेती से श्रम और पूंजी दोनों की बचत और
पैदावार में वृद्धि ।
- ५ बचे हुए काम और पूंजी का दूसरे काम में उपयोग ।
- ६ जिस सर्म्मिलित परिवार में धन की कमी की शिकायत नहीं
उसमें भी अलग होते ही बुरी दशा—फिर शामिल हो जाने पर
सुखी जीवन ।
- ७ इसी प्रकार सहकारी कृषि द्वारा समूचे गाँव का लाभ ।
- ८ प्रायः जनमत पक्ष में नहीं—बाधाओं से उत्साह में कमी—पर
यह अनुचित बाधा डालनेवाले व्यक्तियों को प्रेमपूर्वक पक्ष
में लाना—विलम्ब से घबराहट नहीं ।
- ९ सहकारी खेती की सफलता के लिये आवश्यक सुझाव ।

१५ सिंचाई

- १ प्राकृतिक साधन—वर्षा के अभाव में कृत्रिम रीति से सिंचाई ।
- २ सिंचाई के मुख्य कृत्रिम साधन —
 - क कुआँ;
 - ख पोखरा;
 - ग नहर या पइन;
 - घ ट्यूबवेल;
 - ड नदी ।
- ३ किसानों की वर्तमान प्रवृत्ति—पइनों का भरना—पुगाने कुआँ को बेमरम्मत छोड़ना—सरकार का भरोसा रखना ।
- ४ जमीन्दारी के समय की सिंचाई-व्यवस्था—फर्द आबपाशी—इसमें हेरफेर की जरूरत—फालतू पानी को दूसरे गाँवों में जाने देने से लाभ ।
- ५ कुएँ कम खर्च में आसानी से तैयार ; अतः इनकी संख्या में वृद्धि की जरूरत—इतना खर्च करना गाँववालों का कर्तव्य ; आवश्यकतानुसार सरकारी सहायता ।

- ६ छोटी नदियों में बाँध—कई गाँवों के सहयोग की आवश्यकता—कुछ-कुछ वर्षा होती रहने पर बहुत ही लाभप्रद—इस संबंध में भी खर्च करने के लिए किसानों को प्रोत्साहन—यथासंभव सरकारी सहायता ।
- ७ नये पोखर और पड़न—जनता का श्रम—यथासंभव सरकारी सहायता ।
- ८ नहर और ट्यूब-वेल—बहुत अधिक खर्च—सरकार के सहयोग द्वारा प्रबंध ।
- ९ सिंचाई के साधनों में उन्नति से पैदावार में बहुत उन्नति ।



१६ खाद

- १ खाद क्या है ? इसकी आवश्यकता ।
- २ भिन्न-भिन्न प्रकार की खाद :—
 - १ क नाइट्रोजनवाली खाद ।
ख अमोनियम सल्फेट ।
ग पोटैस नाइट्रेट ।
 - २ फास्फोरसवाली खाद—किस्म और गुण-दोष :—
 - क सुपर फास्फेट ।
ख हड्डियों का चूरा ।
ग हड्डियों की राख ।
 - ३ पुटैस की खाद ।
 - ४ जीवांश :—
 - क ऊन की खाद ।
ख सींग और खुरों की खाद ।
ग रक्त की खाद ।
घ मछली की खाद ।
ङ खल्लियों की खाद ।

- ५ गोबर और कूड़े-करकट की खाद ।
- ६ भेड़-बकरी की भेंड़ारी की खाद ।
- ७ हरी फसलों की खाद ।
- ८ मनुष्यों के मलमूत्र की खाद ।
- ९ चूने की खाद ।
- ३ भिन्न-भिन्न प्रकार की खाद की फसल और जमीन के प्रकार के अनुसार प्रयोग ।
- ४ प्रायः एक ही प्रकार की खाद को हर फसल और जमीन में देने की प्रवृत्ति—यह ठीक नहीं ।



१७ कम्पोस्ट खाद बनाने का तरीका

- १ तीन अंश कूड़ा-करकट, राख आदि ; एक अंश गोबर ।
- २ कूड़े-करकट को पानी से तर करना—नमी बराबर कायम रखना ।
- ३ कम्पोस्ट का गढ़ा—स्थान का चुनाव—दो गढ़ों के बीच में छः फीट की दूरी—गढ़े की लम्बाई-चौड़ाई और गहराई ।
- ४ खाद को उलटने की आवश्यकता ।
- ५ प्रतिदिन का काम :—
 - पहला दिन—गढ़ा भरना ;
 - छठा दिन—पूरा करना ;
 - चौदहवाँ दिन—पहली बार पानी देना ;
 - पंद्रहवाँ दिन—उलटना और ३० दिन की पुरानी खाद देना ; नब्बे दिन में—खाद तैयार ।
- ६ कम्पोस्ट खाद से दो लाभ :—
 - क सफाई ;
 - ख खाद की प्राप्ति ।

१८ वन-महोत्सव

- १ पेड़ों से लाभ—फल और छाया की प्राप्ति; लकड़ी और ईंधन की प्राप्ति; अन्य लाभ—भोजन में फलों का महत्त्व; गोबर के जलाने से खाद की कमी; कोयला जलाने में देश के औद्योगीकरण की दृष्टि से हानि, अतः लकड़ी ही जलाने में देश का कल्याण ।
- २ पेड़ों के काटने की वर्तमान मनोवृत्ति—पेड़ लगाने का खयाल नहीं; इससे वन-सम्पत्ति में कमी ।
- ३ सरकार द्वारा पेड़ लगाने की कोशिश; इस संबंध में पिछला अनुभव—पेड़ लगाना, पर रक्षा का प्रबन्ध नहीं ।
- ४ पुराने हरे वृक्षों की रक्षा की आवश्यकता, नये वृक्षों को लगाने के पूर्व रक्षा का प्रबन्ध ।
- ५ वृक्षों के लगाने के स्थान—सड़क, नहर, पड़न और आहर के किनारे एवं अन्य शरती जगह ।
- ६ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि द्वारा दी गयी सुविधाएँ ।
- ७ फलों के बाग लगाने की जरूरत; आमदनी में कमी नहीं, बल्कि वृद्धि ।
- ८ अतः वर्षाऋतु में वन-महोत्सव को सक्रिय रूप से मनाने की जरूरत ।

१६ सहकारी-समिति

- १ सगठन में बल—अधिक संगठित समाज द्वारा कम संगठित समाज का शोषण ।
- २ सहकारी समिति द्वारा देहात के कम संगठित भाइयों को संगठित करने की आवश्यकता; समूह की ताकत ।
- ३ भिन्न-भिन्न प्रकार की सहकारी समितियाँ—कृषि-सम्बन्धी, वस्त्रोत्पादन-संबन्धी, क्रय-विक्रय संबन्धी, बहुधन्वी सहकारी समितियाँ, इत्यादि ।
- ४ सहकारी समिति द्वारा चीजों के उत्पादन, क्रय, विक्रय और वितरण में समय, शक्ति और धन, सबकी बचत ।
- ५ स्वावलम्बी गाँव के लिए यह बहुत ही जरूरी; इससे चीजों के मिलने की सुविधा; शहर के व्यापारियों द्वारा शोषण की भी गुंजाइश नहीं; समय पर चीजों की प्राप्ति; विशेषतया विशेष परिस्थितियों में (युद्धकाल में अथवा माँग अधिक और प्राप्ति कम होने पर) भी दिक्कत नहीं ।
- ६ गाँव की शक्ति बिखरी हुई; पूँजी का अभाव; पर सहकारी समिति द्वारा शक्ति और पूँजी के संग्रह द्वारा बड़े-बड़े कामों का किया जाना संभव ।
- ७ सहकारी समितियों को सरकार द्वारा कम सूद पर रुपये दिया जाना; अतः महाजनों के शोषण से मुक्ति, पर कम सूद पर लेने के कारण फिजूलखर्ची से बचने की जरूरत ।
- ८ गाँव की गरीबी को दूर करने का एकमात्र उपाय—सहयोग और स्वावलम्बन ।

२० आदर्श घर

- १ वर्तमान दशा—घरों में खिड़कियाँ नहीं; जमीन सर्द और गंदी; रसोई बनाने के समय समूचे घर में धुएँ का राज्य; मनुष्यों और पशुओं के रहने का एक ही स्थान।
- २ इससे होनेवाली हानियाँ।
- ३ सभी घर एक दूसरे से सटे हुए; कम चौड़ी गलियाँ।
- ४ नये घर बनाने समय नीचे लिखी बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता।

क स्थान का चुनाव—ऊँचा, सूखा और जंगलरहित।

ख दूसरे घर से कुछ अंतर पर घर बनाना।

ग काफी खिड़कियाँ देना।

घ रसोई घर के निर्माण में सावधानी रखना, जिसमें धुआँ समूचे घर में नहीं फैलने पावे; वैज्ञानिक चूल्हे का निर्माण।

ङ अनाज रखने का घर अलग रखना।

च पशुओं का घर अलग रखना

५ पुराने बने हुए घरों में भी आवश्यक सुधार।

६ घर के समीप फूल-पौधों को लगाना।

७ आँगन में तुलसी का पौधा लगाना।

८ प्रतिदिन घर की सफाई; आसपास की गलियों की भी सफाई।

९ दीवारों को लीपने की आवश्यकता।

१० भोल आदि को दूर रखने के लिये हमेशा सफाई पर ध्यान।

२१. स्वच्छता

- १ व्यक्तिगत और सामूहिक स्वच्छता ।
- २ व्यक्तिगत स्वच्छता—बदन, वस्त्र और दूसरी वस्तुओं को साफ रखना; कलम, पेन्सिल, किताब वगैरह सभी वस्तुओं की सफाई ।
- ३ घर की स्वच्छता—एक माह में दीवार को पुतवाना; फर्श की सफाई; प्रतिदिन आवश्यकतानुसार धुलवाना; गोबर और मिट्टी से लिपवाना ।
- ४ रसोईघर की स्वच्छता—वैज्ञानिक चूल्हा; धुआँ निकलने का मार्ग, गन्दे पाँव वहाँ किसी भी दशा में न जाना ।
- ५ बर्तनों की स्वच्छता ।
- ६ हवा की स्वच्छता ।
- ७ पाखानों, पेशाबघरों, नालियों और गलियों की निर्यामन सामूहिक सफाई ।
- ८ कुएँ की सफाई और साफ जल ।
- ९ गन्दे जल को साफ करने की रीतियाँ ।
- १० गोशाला की स्वच्छता ।

- ११ महिलाओं की कुछ गन्दी आदतें—नियमित स्नान नहीं; पानी लेकर शौच को न जाना; उनमें सफाई की भावना का विकास आवश्यक ।
- १२ शिशुओं और बच्चों की सफाई ।
- १३ व्रत और त्योहारों के अवसर पर की सफाई—उनका महत्व ।
- १४ बाहरी सफाई से मन को भी साफ रखने की भावना का विकास; शुद्ध शरीर से शुद्ध मन ।
- १५ स्वच्छता ज्ञान का लक्षण; तथा गंदगी अज्ञान का लक्षण ।
- १६ मन की स्वच्छता और इसका महत्व ।



२२. पेशाबखाना

- १ जहाँ-तहाँ पेशाब करने की भद्दी आदत—इससे हानियाँ ।
- २ पेशाब के लिये निश्चित और साफ स्थान ।
- ३ विभिन्न तरह के पेशाबखाने ।
- ४ गाँव के लिये लाभदायक पेशाबखाना बनाने का तरीका ।
- ५ पेशाबखानों का साफ रखने की आवश्यकता, पेशाब करने के बाद जल का व्यवहार ।
- ६ सामूहिक पेशाबखानों के उपयोग का कुछ व्यक्तियों द्वारा विरोध, कुछ छूत की बीमारियों के हाने का भय, पर जल के व्यवहार से और पेशाबखाने के निकट कीटाणु-नाशक दवाओं के व्यवहार से इसका भय बिल्कुल नहीं; बल्कि जिधर-तिधर पेशाब करने में ही अधिक भय ।
- ७ सामूहिक पेशाबखानों को बनाने में स्थानों के चुनाव की दिक्कत—गाँववालों का कर्तव्य ।
- ८ एक देहाती पेशाबखाने का जीवन—प्रायः ३ माह ।
- ९ पेशाब एक उत्तम खाद; अतः पेशाबखानों के द्वारा सफाई के साथ-साथ खाद की भी प्राप्ति ।

२३. पाखाना

- १ गावों में पाखाना फिरने की वर्त्तमान रीति; गाँव के चारों ओर के निवास के मार्गों की बगल का स्थान ही बहुत अधिक गन्दा; अन्धेरी रात में भी गंदगी की गन्ध आने पर गाँव के समीप पहुँचने का पता लगना ।
- २ इससे होनेवाली हानियाँ—आँत-सम्बन्धी बीमारियों का बीज—हुकवर्म ।
- ३ विभिन्न प्रकार के पाखाने और इनके गुण-दोष—
 क कूप-पाखाना—२०० गज के अन्दर के कुओं का पानी गन्दा; खाद का न मिलना; अधिक खर्च ।
 ख बोरहोल पाखाना—अधिक गहरा खनने पर इसके द्वारा भी कुओं के पानी की खराबी; खर्च बहुत कम ।
 ग कमाऊ पाखाना—गन्दगी का कारण; एक शोषित वर्ग को कायम रखने के लिए जिम्मेवार; खर्च अधिक ।
 घ सेफ्टी टैंक पाखाना—साफ; किन्तु खाद न मिलना; खर्च अधिक ।
 ङ खाई-पाखाना—साफ; खाद की प्राप्ति; कम खर्च; अधिक जगह की जरूरत ।
- ४ पाखानों के अभाव में खुरपी का अथवा जोते हुए खेत का व्यवहार ।
- ५ प्रत्येक गाँव में सामूहिक पाखानों के बनाने की आवश्यकता ।
- ६ स्वर्ण-खाद और इसके व्यवहार से लाभ; इस सम्बन्ध में कुछ गलत विचार और उनका निराकरण ।

२४. गाँव में नाली की समस्या

- १ वर्तमान दशा—जेठ में भी जूते पहन कर गलियों को पार करना कठिन; कुओं से बहते हुए पानी की अधिकता इसका कारण ।
- २ सोख-खाई द्वारा इसको हल करने की चेष्टा ।
- ३ पर सोख-खाइयों द्वारा अन्तिम हल संभव नहीं ।
- ४ पक्की नालियों के बनाने की आवश्यकता । सब के सहयोग की जरूरत ।
- ५ स्थिर और गन्दे पानी में मच्छड़ों का निवास; मच्छड़ मलेरिया के मुख्य कारण ।
- ६ अतः नियमित रूप से नालियों की प्रतिदिन सफाई, स्थिर पानी पर किरासन तेल डालना ।
- ७ नाली के पानी का खेतों में व्यवहार करने से लाभ ।
- ८ पर इस संबंध में ग्रामीण भाइयों द्वारा बाधाएँ; खेत के खराब होने का डर; कभी-कभी कुछ हानि भी; पर गाँव के विकास और स्वच्छता के लिए त्याग की भावना ।
- ९ नालियों के पानी को लेकर अन्य भगड़े; दूसरे की नाली को बन्द करने की कोशिश; इससे होनेवाली हानियाँ ।

२५. साफ पानी

- १ जीवन के लिये साफ पानी की जरूरत; हवा के बाद पानी ही जीवन के लिए सर्वोत्तम ।
- २ साधारणतया कुएँ के पानी का व्यवहार; कहीं-कहीं नदी और पोखरे का पानी भी व्यवहार में ।
- ३ कुएँ के आसपास का स्थान प्रायः गन्दा; कुओं में मुड़ेरे नहीं; बाहर के पानी का कुएँ में गिरना; गन्दे बरतन का कुएँ में डालना ।
- ४ जिस पोखरे में कपड़े साफ करना और जानवरों को धोना उसी का पानी पीने के काम में लाना अत्यन्त हानिकारक ।
- ५ नदियों के पानी की भी यही दशा; आसपास मल-मूत्र का त्याग करना और उसके पानी को व्यवहार में लाना ।
- ६ इससे हानियाँ—पानी से दुर्गन्ध आना;—उसमें कीड़ों का पड़ना; हैजे आदि बीमारियों का कारण होना ।
- ७ अतः कुओं, पोखरों और नदियों के पानी को साफ रखने की आवश्यकता ।

८ कुओं में मुड़ेरे देना; एक ही बरतन से पानी भरना; मनुष्य के कामों में आनेवाले पोखरों में कपड़ा न साफ करना और न जानवरों को धोना ।

९ कुओं में कीड़े पड़ने पर पोटाश आदि कीटाणुनाशक दवाओं का प्रयोग ।

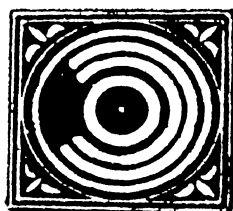
१० गन्दे पानी को साफ करने की विभिन्न रीतियाँ—

(क) औटना;

(ख) फिल्टर द्वारा;

(ग) निर्मली आदि के द्वारा ।

हैण्ड ट्यूब बेल बनाना और उसके पानी का व्यवहार ।



२६ साक्षरता-प्रसार

- १ शिक्षा और साक्षरता में अन्तर ।
- २ नित्य के काम में साक्षरता का महत्त्व ।
- ३ भारत में इसकी प्रगति बहुत ही धीमी—केवल १६६ प्रतिशत साक्षर ।
- ४ बिहार प्रान्त में और भी कम—केवल १२२ प्रतिशत साक्षर ।
- ५ साधारण प्रौढ़ इसे अनावश्यक समझता है; वह उच्च अफसर होने की आशा नहीं करता है; बच्चों को पढ़ाना नहीं चाहता है; जीवन में जरूरत पड़ने पर पछताता है ।
- ६ प्रजातंत्र देश में प्रजातंत्र का सफलता शिक्षा पर ही निर्भर; इसी से लोगों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास; अतः साक्षरता प्रसार आवश्यक ।
- ७ विद्या अपूर्व धन—न कोई छीन सकता, न कोई बाँट सकता; दूसरे को देने से घटता नहीं बल्कि बढ़ता है; अतः पढ़े-लिखे भाइयों को दूसरों को निःस्वार्थ भाव से पढ़ाने से लाभ ही ।
- ८ साक्षरता-प्रसार के लिये कुशल कार्यकर्त्ता की जरूरत । हर प्रौढ़ को पढ़ने—लिखने के संबन्ध में स्वावलम्बी बनाना जरूरी । रात्रि-पाठशाला में जाना ।
- ९ जो बालक दूसरे कामों में फँस रहने के कारण नहीं पढ़ सकते उनके लिए भी रात्रि—पाठशाला की आवश्यकता ।
- १० अनिवार्य शिक्षा की आवश्यकता ।
- ११ महिलाओं और बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध ।

२७ पुस्तकालय

- १ आवश्यकता—पढ़ने-लिखने के अभ्यास को बनाये रखना; ज्ञान में वृद्धि; साहित्यिक अभिरुचि; पहले के संचित ज्ञान को भावी पीढ़ी तक ले जाना; एक मनुष्य अधिक किताबों को खरीदने में मजबूर, अतः पुस्तकालय की आवश्यकता ।
- २ सस्थापना—गाँव के सभी भाइयों का सहयोग, एक आदमी द्वारा संचालित और स्थापित होने पर इसके जानदार बनने में संदेह ।
- ३ चंदे की समस्या—अन्न आदि का भी संग्रह, सदस्य—शुल्क ।
- ४ पुस्तकालय का स्वतन्त्र भवन—शिक्षा-प्रसार का केन्द्र ।
- ५ पुस्तकों का चुनाव—ग्रामीण दृष्टिकोण ।
- ६ पुस्तकालयाध्यक्ष—गंभीर, सहनशील, पुस्तक-प्रेमी, साक्षरता-प्रसार से प्रेम ।
- ७ पुस्तकालय की हिफाजत ।
- ८ आवश्यक सामग्री और बही वगैरह ।
- ९ पुस्तकों को लेने और लौटाने के विषय में सावधानी ।
- १० चलता-फिरता पुस्तकालय ।
- ११ वार्षिकोत्सव का महत्त्व ।
- १२ प्रत्येक पुस्तकालय के साथ समाचार-सूचनापट तथा रडियो की आवश्यकता ।

२८ स्त्री शिक्षा

- १ साधारणतया स्त्रियों द्वारा ही घर का सँभाला जाना; बच्चों और रंगियों की देखरेख का भार उन्हीं पर; स्त्रियों के शिक्षित होने पर भावी संतति को अशिक्षित रहने का भी भय नहीं; साधारणतः वे पढ़ने में भी चतुर; अतः उनकी शिक्षा का प्रबन्ध आवश्यक ।
- २ स्त्री—शिक्षा के संबंध में समाज की उदासीनता; स्त्रियों के प्रति उपेक्षा का भाव; बचपन से ही बालक और बालिकाओं के भोजन, पान, शिक्षा आदि में दुरंगी नीति; माताएँ स्वयं इस दुरंगी नीति की समर्थक—पर यह ठीक नहीं ।
- ३ कुछ गलत धारणाएँ—पढ़ने से विधवा होना; स्त्रियों का पढ़ना शास्त्र—सम्मत नहीं । भारतीय संस्कृति में स्त्रियों का पढ़ाना अनुचित नहीं; गार्गी आदि का उदाहरण ।
- ४ स्त्रियों की शिक्षा में परदे की प्रथा से भी बाधा—इसे दूर करने की जरूरत ।
- ५ स्त्री-कार्यकर्ताओं की कमी—मुट्ठी भर कन्या—पाठशालाओं के लिये भी सुयोग्य शिक्षिकाओं का अभाव ।
- ६ स्त्रियों की शिक्षा में गृह—विज्ञान, शिशु—सेवा प्रार्थमिक चिकित्सा आदि विषयों का मुख्य स्थान ।
- ७ कन्या—पाठशालाओं के अभाव में बालकों की पाठशाला में ही छोटी उम्र की बालिकाओं को पढ़ाने से अधिक प्रगति होने की आशा ।

२६. सांस्कृतिक कार्यक्रम

- १ मनोरंजन की आवश्यकता; मनोरंजन के विविध साधन; मनोरंजन का आदर्श; केवल मनोरंजन नहीं बल्कि नैतिक आध्यात्मिक उत्थान ।
- २ मनोरंजन की ओर मानवमात्र की स्वाभाविक रुचि; गाँव में मनोरंजन के साधनों का अभाव ।
- ३ फिर भी गाँववालों की अभिरुचि; अभिनयों और गीतों की ओर उनका स्वाभाविक आकर्षण; उन्हें इनमें भाग लेने के लिए उत्साहित करने की जरूरत ।
- ४ साधनों के अभाव में कला के पूर्ण विकास में बाधा ।
- ५ प्राप्त साधनों से ही लोक-रंगमंच बनाने की जरूरत ।
- ६ कुछ व्यक्तियों द्वारा इनका विरोध; सांस्कृतिक और धार्मिक रंग लाने पर उनका भी आकर्षण ।
- ७ सिनेमा और ग्रामवासियों का मनोरंजन—सिनेमा गाँवों के उपयुक्त नहीं, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से ।
- ८ सांस्कृतिक कार्यक्रम में रेडियो, ग्रामोफोन का स्थान ।
- ९ व्याक्तिगत और सामूहिक लाभ—
 - (क) कला का विकास;
 - (ख) सांस्कृतिक और नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में सहायता;
 - (ग) किसी काम को प्रारम्भ करने के पहले प्रेरणा देने का उत्तम साधन ।

३०. आदर्श दिनचर्या

- १ ब्राह्ममुहूर्त्त में यानी प्रातः ४ बजे उठना—इससे लाभ । मन की शुद्धि के लिए सबसे पहले ईश्वर का स्मरण करना ।
- २ गाँव से दूर जाकर गढ़ा खोदकर पाखाना फिरना ।
- ३ मुँह-हाथ धोकर अपने घर तथा आसपास के स्थानों को साफ करना; गाँव की सामूहिक सफाई में भाग लेना; व्यायाम करना ।
- ४ स्नान और जलपान करना—यथासंभव सूर्योदय होते-होते इन क्रियाओं को खतम कर लेना ।
- ५ जीविकोपार्जन के लिए काम करना—ऐसी जीविका न करना जो समाज के लिए अमंगलकारी हो ।
- ६ १०॥ और बारह के बीच भोजन करना—भोजन शुद्ध, साफ और ताजा हो ।
- ७ कुछ आराम कर फिर काम में लग जाना । निजी काम के न रहने पर समाज-सेवा-सम्बन्धी काम करना । हर दशा में समाज की उन्नति के लिए प्रति दिन एक घंटा समय देना ।

किसी भी दशा में बेकार समय न बिताना—अवकाश-काल में अध्ययन करना ।

८ संध्या समय शौचादि से फुर्सत पाकर संध्या करना; व्यायाम करना—भोजन करना ।

९ शिष्ट मनोरंजन तथा अध्ययन में समय लगाकर, नौ बजे तक सो जाना ।

१० सोने के पूर्व दिन भर के कार्यों पर विचार करना—कोई भूल हो गयी हो तो न करने की प्रतिज्ञा करना ।



३१. छुआछूत

- १ प्राचीन वर्णव्यवस्था—कर्म के अनुसार—वंश के अनुसार नहीं ।
- २ विभिन्न देशों में भी काम का बँटवारा—पर काम की रुढ़ि वंश के अनुसार नहीं ।
- ३ काम का बँटवारा वंशगत हो जाने के कारण छुआछूत की भावना का विकास ।
- ४ मानव-मात्र ईश्वर की संतान—अतः घृणा और छूत की भावना मनुष्यता के विरुद्ध ।
- ५ छुआछूत को दूर करने के साथ ही साथ कुछ कामों को वर्ग-विशेष द्वारा कराये जाने पर रोक लगाने की आवश्यकता ।
- ६ अभी भी ऐसे गाँव जहाँ हरिजनों के द्वारा कुएँ से पानी भरे जाने पर सबर्ण हिन्दुओं द्वारा पानी नहीं भरा जाना ।
- ७ हरिजनों में भी आपस में छुआछूत का भेद-भाव ।
- ८ विभिन्न संप्रदाय के माधुओं में भी आपस में छुआछूत ।
- ९ दूसरे धर्म को माननेवालों से छुआछूत ।
- १० भारतीय संविधान के अनुसार यह बिल्कुल गलत ।
- ११ शुद्धता, स्वच्छता, सदाचार ही मनुष्य के भले और बुरे होने की कसौटी—किसी जाति में पैदा होना नहीं ।

३२. मुकदमेबाजी

- १ अनावश्यक झगड़े—कुछ आदमियों को झगड़ा करने का रोग ।
- २ मुकदमेबाजी से शांति और आनन्दमय जीवन असंभव ।
- ३ इससे गाँव के धन और शक्ति का बहुत बड़ा दुरुपयोग; बंदर और बिल्ली की कहानी ।
- ४ पंचायत और ग्राम-कचहरी का महत्व ।
- ५ घर के न्याय के ठीक होने की अधिक संभावना. इसमें व्यय भी नहीं; शक्ति और समय भी बरबाद नहीं ।
- ६ गाँव में रचनात्मक कामों की ओर ध्यान मोड़ने पर भी झगड़ों का अन्त; ध्यान काम की ओर, झगड़ों की ओर नहीं ।
- ७ अतः मुकदमेबाजी से हट कर रचनात्मक कार्यों की ओर प्रवृत्ति लगाना ।
- ८ द्वेष से द्वेष का अन्त नहीं; मुकदमेबाजी से शांति नहीं; झगड़ा करनेवालों से बच कर रहना ।
- ९ बचे हुए समय, शक्ति और धन को गाँव के विकास में लगाना; मुकदमेबाजी में लगनेवाले धन, शक्ति और समय का इससे सदुपयोग ।

३३. धूम्रपान

- १ आदत का लगना—स्वास्थ्य, सुन्दरता और बल की हानि ।
- २ कुछ अन्य कुटेवों का कारण—चोरी, घूसखोरी आदि के मूल में ।
- ३ सामाजिक दृष्टि से गन्दी और भद्दी आदत ।
- ४ यक्ष्मा जैसे भयंकर रोगों को जन्म देनेवाला ।
- ५ तम्बाकू के उत्पादन और बीड़ी के कारखाने में लगी शक्ति और धन का दूसरे अच्छे कामों में व्यवहार ।
- ६ तम्बाकू के स्थान में भोज्य पदार्थों को उपजाने से गाँव और राष्ट्र के आर्थिक विकास की संभावना; दूसरे देशों से अन्न मँगाने की आवश्यकता नहीं ।
- ७ राष्ट्रीय लाभ की दृष्टि से तम्बाकू के उपजाने के पक्ष में उपास्थित किये गये तर्क; पर मानव-कल्याण की दृष्टि से गलत ।
- ८ धूम्रपान करनेवालों द्वारा स्वास्थ्य के नाम पर इनका समर्थन; परन्तु दलील बिल्कुल थोथी ।
- ९ कानून द्वारा रोक लगाने की आवश्यकता; तम्बाकू की उपज केवल दवा आदि के लिए ही ।

३४. बाल-विवाह

- १ विवाह एक पवित्र संस्कार; अतः विवाह के पूर्व इसके मर्म को वर-कन्या में समझने की शक्ति की आवश्यकता ।
- २ इस संस्कार के पूर्व उन्हें एक दूसरे के प्रति तथा समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य की जानकारी की जरूरत ।
- ३ प्राचीन काल में विद्यार्थी-जीवन तक (जीवन का एक चौथाई भाग) ब्रह्मचर्य का पालन ।
- ४ मध्ययुग में बाल-विवाह की कुप्रथा का आगमन; इस सम्बन्ध में बनाये गये लचर प्रमाण ।
- ५ हानियाँ—स्त्रियों को वैधव्य-दुःख, वर और कन्या द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करने के कारण जीवन की पूर्व तैयारी अपूर्ण; मानसिक, शारीरिक और नैतिक दुर्बलता; भावी सन्तान दुर्बल ।
- ६ अतः इसे अन्त करने की जरूरत; इस सम्बन्ध में बनाया गया कानून ।
- ७ पर कानून इसे रोकने में मजबूर; जनता के विवेक को जगाने की आवश्यकता; जन-आन्दोलन की जरूरत ।



३५. दहेज

- १ भिन्न-भिन्न समाज में दहेज की भिन्न-भिन्न रीतियाँ—कहीं वर के पिता द्वारा कन्या के पिता से काफी रकम का लिया जाना, तो कहीं कन्या के पिता द्वारा वर के पिता से काफी रकम का लिया जाना; विवाह में इसी बड़ी रकम को दहेज कहा जाना ।
- २ आरंभ में इस का आनन्दकारी रूप; प्रसन्नतापूर्वक ही देना और लेना ।
- ३ वर्त्तमान काल में इसका दुःखदायी स्वरूप; इससे बेकार की परेशानी ।
- ४ हानियाँ—कितनी स्त्रियों का अविवाहित रह जाना; इससे माता-पिता की चिन्ता; कहीं बारात लौट जाना आदि ।
- ५ माता-पिता की परेशानी के कारण बालक-बालिकाओं का आत्म-हत्या कर लेना; अनाचार का बढ़ना ।
- ६ दहेज-समाज का कलंक; इसे शीघ्र अन्त करना; इस संबंध में बनाया गया कानून ।
- ७ फिर भी क्रमशः दहेज में वृद्धि ही; जनता की अच्छी भावना; अच्छा विचार और हृदय-परिवर्त्तन ही इसे रोकने में संभव ।
- ८ नवयुवकों का कर्त्तव्य ।

३६ ताड़ी और ताड़-गुड़

- १ ताड़ी एक लाभकारी मीठी वस्तु का बिगड़ा रूप ।
- २ ताड़ी से हानियाँ—पीनेवाले के मुँह से दुर्गन्ध; बेहोशी; फेफड़े आदि में विकार आने से आयु की कमी; शारीरिक दुर्बलता ।
- ३ नशे में भगड़ा, गाली-गलौज और मारपीट आदि, मुकदमे-बाजी तक की नौबत ।
- ४ धन की बेकार बरवादी; काम करने की शक्ति में कमी; हर तरह से गरीबी का हमला ।
- ५ नैतिक पतन—चोरी वगैरह की लत पड़ जाना ।
- ६ अतः ताड़ के रस का बिगड़े हुए (ताड़ी के) रूप में व्यवहार अनुचित ।
- ७ शुद्ध और असली रूप में ताड़ के रस के व्यवहार से आयु, बल और स्वास्थ्य में वृद्धि; शराब का अर्थ ही “मीठा पानी”; पर बिगड़े रूप में व्यवहार के कारण घृणा ।
- ८ इसके बिगड़े रूप के व्यवहार के कारण कुछ लोगों को शुद्ध रूप का व्यवहार करने में भी आपत्ति; पर यह अनुचित ।

६ ताड़ के रस का ठीक व्यवहार होने पर ईख के रस का काम बहुत कुछ इसके द्वारा ही होना; अतः ईख में लगे खेत में दूसरी फसल के उपजाने की गुंजाइश; इससे देश में अन्न की कमी की पूर्ति ।

१० ताड़-गुड़ के रोजगार द्वारा बेकारों की रोजी का प्रबंध ।

११ सरकार द्वारा ताड़-गुड़ बनाने के लिए ट्रेनिंग की व्यवस्था; जनता का लाभ उठाना कर्त्तव्य ।



३७. भूदान

- १ आज की एक बहुत बड़ी समस्या भूमि के असमान बँटवारे की; कुछ लोगों के पास जरूरत से ज्यादा भूमि, कुछ के पास बिल्कुल नहीं; फलस्वरूप साधारण लोगों के हृदय में बहुत असंतोष; मनुष्य-मनुष्य के बीच गहरा फासला ।
- २ अपनी तेलंगाना की पैदल-यात्रा में विनोबाजी को प्रेरणा—इस समस्या का महत्वपूर्ण हल—‘भू-दान यज्ञ’; देश के कोने-कोने में घूम; विनोबाजी का पैदल दौरा; जगह-जगह घूमकर लोगों से जमीन लेना और उनलोगों में बाँट देना, जिनके पास जमीन नहीं;
- ३ हर प्रदेश के लिए भू-दान समिति—दौरे में प्राप्त भूमि का बँटवारा इसी के द्वारा; जिस गाँव में प्राप्त अक्सर उसी गाँव के भूमिहीनों को;—भूमि उन्हीं भूमिहीनों को जिनके पास जीवन-निर्वाह का और कोई साधन उपलब्ध नहीं और जो भूमि की काश्त कर सकते हैं; भूमि वितरण का प्रमाण विभिन्न प्रान्त की परिस्थिति के अनुसार ;
- ४ भूमिदान-यज्ञ प्रेम से भूमि का न्यायोचित या विवेकयुक्त समान बँटवारा करने का मार्ग ।

५. आन्दोलन का आधार-सिद्धान्त 'सर्वोदय', सब का हित-साधन ही जीवन का तत्त्वज्ञान ।
६. भूदान-यज्ञ की सिद्धि से देश में एक ऐसी जन-शक्ति पैदा, एक ऐसा नैतिक वातावरण तैयार जिससे नये भारत के निर्माण का काम आसान ।
७. भूदान-यज्ञ आन्दोलन का सम्बंध केवल भूमि के पुनर्वितरण तक ही सीमित नहीं; ग्राम संगठन, नवनिर्माण, ग्रामोद्योग आदि भी इसके अन्तर्गत ।



३६ सूक्तियाँ

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधभाई ॥
राज कि रहइ नीति बिनु जाने । अघ कि रहइ हरिचरित बखाने ॥
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना । जहाँ कुमति तहँ बिपति निधाना ॥
जेहि कर जेहि पर मत्य सनेहू । सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू ॥
सत्संगति मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा । पर निन्दा सम अघ न गरिसा ।
सखा धर्ममय अस रथ जाके । जीवन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥
तप आधार सब मृष्टि भवानी । करहु जाइ तप अस जिय जानी ॥
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुण्य रत गति मोइ पाकी ॥
कादर मन कर एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ।
कर्म प्रधान विश्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥
बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख मपनहुँ नाहीं ॥
राम भजन बिनु मिटइ कि कामा । थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥
बिनु विज्ञान कि समता आवइ । कोई अवकाश कि नभ बिनु पावइ ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई । बिनु मद्दि गंध कि पावइ कोई ॥
बिनु तप तेज कि कर विस्तारा । जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥

शील कि मिल बिनु बुध सेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप गोसांई ॥
 निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा । परस कि होइ विहीन समीरा ॥
 कवनिउ सिद्धि कि बिनु विश्वासा । बिनु हरि भजन न भवभय नासा ॥
 कामधेनु शत कोटि समाना । सकल कामदायक भगवाना ॥
 गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई । जो विरंचि शंकर सम होई ॥
 सोई पावन होइ सुभग शरीरा । जो तनु पाइ भजइ रघुवीरा ॥
 जेहि ते कछू नित स्वार्थ होई । तेहि पर ममता कर सब कोई ॥
 उदासीन नित रहिअ गुसांई । फल परिहरिय स्वान की नाई ॥
 परद्रोही कि होंहि निःशंका । कामी पुनि कि रहहि अकलंका ॥
 रामचरित जे सुनत अघाहीं । रस विशेष जाना तिन्ह नाहीं ॥
 जीवन्मुक्त महामुनि जेऊ । हरिगुण सुनहिं निरन्तर तेऊ ॥
 नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
 सत्यमूल सब सुकृत सुहाये । वेद पुरान विदित मनु गाये ॥
 धन्य जनम जगतीतल तासू । पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू ॥
 चारि पदारथ करतल ताके । प्रिय पितु मातु प्राण सम जाके ॥
 जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते । पिय बिनु तिय तरनिहु ते नाते ॥
 जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसिय नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
 जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
 पुत्रवती जुवती जग सोई । रघुवर भगत जासु सुत होई ॥
 मैं अरु मोर तोर तैं माया । जेहि वश कीन्हे जीव निकाया ॥
 धर्म ते विरति योग ते ज्ञाना । ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना ॥
 भगति तात अनुपम सुखमूला । मिलइ जो संत होइ अनुकूला ॥
 बिनु सत्संग विवेक न होई । रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ।
 सठ सुधरहिं सत्संगति पाई । पारस परसि कुधातु सुहाई ॥
 विधिवश सुजन कुसंगति परहीं । फणि मणिसम निज गुण अनुसरहीं ॥
 गुण अवगुण जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥

काल सुभाउ करम बरिआई । भलेउ प्रकृति वश होई भलाई ॥
 खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू । मिटइ न मलिन स्वभाव अभंगू ॥
 कियेहु कुवेष साधु सन्मानु । जिमि जग जामवंत हनुमानू ॥
 हानि कुसंग सुसंगति लाहू । लोकहु वेद विदित सब काहू ॥
 धूम कुसंगति कारिख होई । लिखिय पुरान मंजु मसि सोई ॥
 रूप विशेष नाम बिनु जाने । करतलगत न परहिं पहिचाने ॥
 अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ॥
 भाय कुभाय अनख आलसहू । नाम जपत मंगल दिशि दसहू ।
 वेद पुरान संत मत येहू । सकल सुकृत फल राम सनेहू ॥
 जग मंगल गुन ग्राम राम के । दानि मुकुति धन धरणि धाम के ॥
 आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । सेवा धर्म कठिन जग जाना ॥
 मातु पिता गुरु स्वामि निदेशू । सकल धरम धरनीधर शेषू ॥
 होहिं कुठांय सुबंधु सहाये । ओड़यहि हाथ असनि के धाये ॥
 नरतन सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत जेही ॥
 सां तनु धरि हरि भजहिं न जे नर । होहिं विषय रत भेद भेदतर ॥
 नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं । संत मिलन सम सुख कछु नाहीं ॥
 संत उदय संतत सुखकारी । विश्व सुखद जिमि इन्दु तमारी ॥
 राम भगति मणि उरवस जाके । दुख लवलेश न सपनेहु ताके ॥

दोहा

मुखिया मुख सों चाहिये, खान पान को एक ।

पालै पोसै सकल अंग; तुलसी सहित विवेक ॥

परिशिष्ट-ग

प्रमाणपत्रों तथा विवरणों के नमूने

इनके आधार पर प्रत्येक विभाग या संस्था कुछ आवश्यक
परिवर्तन करके अपने प्रमाण-पत्र
तथा विवरण तैयार करेंगी ।

- १ समाज-शिक्षा की प्रगति की तिमाही रिपोर्ट
- २ नव-साक्षरता-प्रमाणपत्र
- ३ उत्तर-साक्षरता-प्रमाणपत्र
- ४ प्रशिक्षण के लिए आवेदन-पत्र
- ५ समाजशिक्षा-प्रशिक्षण का प्रमाणपत्र
- ६ शिविर आदि में समाज-सेवा-प्रशिक्षण का प्रमाणपत्र

समाजशिक्षा की तिमाही रिपोर्ट

१ तिमाही, जिसकी रिपोर्ट है—

२ संस्था का नाम और पता, जिसके साथ केन्द्र संबद्ध है—

३ केन्द्रों की संख्या—

४ केन्द्रों के इंचार्ज अथवा व्यवस्थापक शिक्षकों अथवा कार्यकर्त्ताओं की संख्या—

शिक्षक—(अ) समाज-प्रशिक्षण-प्राप्त—

(आ) ,, ,, अप्राप्त—

(इ) वैतनिक—

(ई) अवैतनिक—

योग—

शिक्षकेतर—(अ) समाजसेवा-प्रशिक्षण-प्राप्त—

(आ) ,, ,, अप्राप्त

(इ) वैतनिक—

(ई) अवैतनिक—

योग—

५ स्वयंसेवकों की संख्या—(क) छात्र—

(ख) छात्रेतर—

योग—

*इसी आधार पर मासिक रिपोर्ट का फार्म भी तैयार किया जा सकता है ।

६. १८ वर्ष तथा उससे ऊपर के पढ़नेवाले वयस्कों की संख्या—

(क) पुरुष—

(ख) स्त्री—

योग—

७. १२ से १८ वर्ष की उम्र के अशिक्षित लड़के-लड़कियों की संख्या—(क) बालक—

(ख) बालिका

योग—

८. १२ वर्ष से कम उम्र के लड़के-लड़कियाँ, जो किसी भी दूसरे स्कूल में नहीं पढ़ने—(क) बालक—

(ख) बालिका—

योग—

९. नए प्रवेशप्राप्त—

१०. कितने वयस्कों ने केन्द्र छोड़ा ?

११ कितने शिक्षित बने—(क) वयस्क पुरुष—(ख) बच्चे-बालक-
स्त्री— बालिकाएँ—

योग—

योग—

कुल संख्या—

१२. प्रारम्भिक से ऊँची पढ़ाई करनेवालों की संख्या—

१३. कितने दिन कार्य हुए ?—

१४. मनोरंजन और सांस्कृतिक प्रदर्शनों का विवरण—

क) स्थानीय व्यक्तियों द्वारा—

(ख) सरकारी पार्टी के द्वारा—

(ग) कितनी सभाएँ करायी गयीं ?

(घ) क्या प्रति सप्ताह सांस्कृतिक सभा होती है ?—

१५. सफाई तथा झाड़ू-बुहार—

(क) कितने गाँव साफ हुए ?—

(ख) कितनी गलियाँ और नालियाँ साफ तथा मरम्मत की गयीं ?—

(ग) कितने खाई-पाखाने, पेशाबघर और थूक फेंकने के स्थान बने ?—

(घ) कम्पोस्ट खाद के कितने गड्ढे बने ?—

१६. स्वास्थ्य और चिकित्सा द्वारा सहायता—

(क) कितने रोगी आए ?—

(ख) कितने रोगी मुक्त हुए ?—

(ग) कितनी जगह दवाएँ बाँटी गयीं ?—

(घ) अन्य व्यवस्था—

१७. संस्कृति और मनोरंजन—

(क) कितने पुस्तकालय, क्लब और अध्ययनालय खोले गए ?

(ख) कितनी बार कीर्तन-कथाएँ करायी गयीं ?—

(ग) पुस्तकालय तथा अध्ययनालय की पुस्तकों की संख्या—

(घ) कितनी पुस्तकें पढ़ी गयीं—

(ङ) कितने पुस्तकालय में पढ़ने के लिए आए ?

१८. (क) कितनी पंचायतें बनायी गयीं—

(ख) कितनी सहयोग-समितियाँ बनीं ?—

(ग) पंचायत ने कितने मामले सुलझाए ?—

(घ) अन्य संगठनात्मक कार्य—

१९. खर्च-विवरण—

(क) शिक्षकों अथवा कार्य-कर्त्ताओं के पारिश्रमिक—

(ख) पुनर्निर्माण-योजनाओं के सहायतार्थ—

(ग) लालटेन, स्लेट आदि के खरीदने में—

(घ) प्राप्त निश्चित रकम का शेष—

२० केन्द्रों के निरीक्षण की संख्या—

(क) डिस्ट्रिक्ट इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स द्वारा—

(ख) डिपुटी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स द्वारा—

(ग) सब-इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स द्वारा—

(घ) अन्य निरीक्षकों द्वारा—

(ङ) अन्य अधिकारियों अथवा व्यक्तियों द्वारा—

२१. सब-इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स द्वारा कितने उपकेन्द्रों का निरीक्षण नहीं हुआ ?—

२२. क्या सामाजिक शिक्षा व्यापक आधार पर आयोजित की गयी और इसके सभी मोर्चों पर कार्य प्रारंभ किया गया ?

(विवरण दीजिये)—

२३. क्या सहायक समितियाँ संतोषजनक कार्य कर रही हैं ?

२४ रिपोर्ट के लिए अन्य विवरण—

रिपोर्ट भेजनेवाले व्यक्ति का पद के साथ हस्ताक्षर



संख्या

उत्तर साक्षरता-प्रमाण-पत्र

नाम

आयु

ग्राम

थाना

जिला

उपस्थिति-लेखा-

उपस्थिति संख्या (दिन)-

पूर्ण संख्या (दिन)-

परीक्षा-तिथि

ता०

परीक्षक

उपनिरीक्षक, शिक्षा विभाग

समाज-शिक्षाधिकारी

विभाग

उत्तर साक्षरता प्रमाण-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि

ग्राम

थाना

जिला

ने केन्द्र में लिखना-पढ़ना सीखा और

नवसाक्षरता की परीक्षा में

महोनें सन्

१६ में सफलता प्राप्त की। इनकी योग्यता हिन्दी भाषा में

प्राइमरी स्कूल के

वर्ग के समकक्ष है, और

गणित, इतिहास, भूगोल आदि के सामान्य ज्ञान में

के समकक्ष है।

ता०

स्थानीय

उपनिरीक्षक,

प्रधान,

मुख्य परीक्षक

उच्च विभागाधिकारी शिक्षा-विभाग शिक्षासंस्था, जहाँ

(परीक्षक मंडल)

केन्द्र अवस्थित है।

ता०

मुहर)

संख्या _____

नव-साक्षरता-प्रमाण-पत्र

नाम _____

आयु _____

ग्राम _____

थाना _____

जिला _____

उपस्थिति-लेखा- _____

उपस्थिति संख्या (दिन)- _____

पूर्ण संख्या (दिन)- _____

परीक्षा-तिथि _____

परीक्षक _____

उपनिरीक्षक, शिक्षा विभाग

समाज-शिक्षाधिकारी

ता० _____

विभाग

नव-साक्षरता प्रमाण-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि _____

ग्राम _____

थाना _____

जिला _____

ने _____ केन्द्र में लिखना-पढ़ना सीखा और

नवसाक्षरता की परीक्षा में _____ महीने सम्

१६ में सफलता प्राप्त की। इनकी योग्यता हिन्दी भाषा में

प्राइमरी स्कूल के _____ वर्ग के समकक्ष है, और

गणित, इतिहास. भूगोल आदि के सामान्य ज्ञान में

के समकक्ष है।

स्थानीय

उपनिरीक्षक,

प्रधान,

मुख्य परीक्षक

उच्च विभागाधिकारी शिक्षा-विभाग शिक्षासंस्था, जहाँ

(परीक्षक मंडल)

केन्द्र अवस्थित है।

ता० _____

(मुहर)

विभाग

[समाज-शिक्षा]

सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः

यह प्रमाणित किया जाता है कि
श्री ----- निवास स्थान -----
पोस्ट ----- जिला ----- ने
सामाजिक प्रशिक्षणशाला ----- में ता० -----
से ता० ----- तक समाजशिक्षा एवं समाजसेवा
का सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया और इनकी
योग्यता, प्रवृत्ति के आधार पर इन्हें ----- श्रेणी
में रखा गया। इनकी विशेष योग्यता का विषय ----- था।

विभागाधिकारी
ता० -----

आचार्य
ता० -----

प्रशिक्षक
ता० -----

प्रशिक्षण

आवेदन-पत्र

श्रीयुत् आचार्य,

सामाजिक प्रशिक्षणशाला

.....

महाशय !

मैं आपकी प्रशिक्षणशाला में.....की अवधि में सामाजिक प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहता हूँ। इस सम्बन्ध में अपने बारे में निम्नांकित विवरण मैं निवेदित करता हूँ—

१—नाम.....

२—पिता का नाम.....

३—घर का पता.....

४—वर्तमान पता.....

५—योग्यता.....

(क) शैक्षणिक—

(ख) ग्रामाञ्चल सम्बन्धी—

६—समाज-सेवा के क्षेत्र में किये गये कार्य एवं अनुभव—

७ उम्र—

मैंने प्रशिक्षण-सम्बन्धी नियमों को पढ़ लिया है और मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा व्यवहार तदनुकूल ही रहेगा। अपनी योग्यता संबंधी प्रमाण-पत्र प्रवेश के पूर्व मैं उपस्थित करूँगा।

प्रार्थी का हस्ताक्षर

सामाजिक प्रशिक्षणशाला.....के आचार्य को अग्रसारित। प्रशिक्षार्थी को मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ। ये प्रशिक्षण के योग्य हैं।

अधिकारी का हस्ताक्षर तथा उनका पद

संख्या _____

समाज-सेवा-प्रमाण-पत्र

नाम _____
ग्राम _____
डाकघर _____
धाना _____
जिला _____

प्रमाणपत्रदाता अधिकारी

विभाग

(समाज-शिक्षा)

समाज सेवा-प्रमाण-पत्र

श्री _____ ग्राम _____
डाकघर _____ थाना _____
जिला _____ को, जिन्होंने

द्वारा संचालित समाज-शिक्षा-कार्य को अग्रसर करने में सक्रिय सहयोग दिया है, उनकी इस कार्य-कुशलता तथा सेवाभाव के उपलक्ष में यह प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाता है और उनसे यह आशा की जाती है कि आगे भी उनसे समाज-शिक्षा तथा राष्ट्र-नवनिर्माण के कार्यों में मन, बचन और कर्म से सक्रिय सहयोग प्राप्त होगा।

विभागाधिकारी

संस्था के प्रधान,

ता० _____

ता० _____

संस्था _____

परिशिष्ट—घ

साहित्य-संकेत

अ. हिन्दी

आ. अंग्रेजी

[अ. हिन्दी]

१०. शिक्षणशास्त्र एवं मनोविज्ञान

- क्र० सं०
१ आधुनिक मनोविज्ञान
२ प्रौढ़ और सामाजिक शिक्षा के नये प्रयोग
३ भारतीय शिक्षा की प्रगति
४ मनोविरलेषण और मानसिक क्रियायें
५ मनोविज्ञान और शिक्षाशास्त्र
६ मातापिता की समस्या
७ व्यावहारिक मनोविज्ञान
८ वयस्क शिक्षा और शिक्षण
९ शान्तिपुर प्रौढ़शिक्षा की योजना
१० शिक्षण-प्रविधि
११ शिक्षा-मनोविज्ञान
१२ सरल मनोविज्ञान

- लेखक
लालजीराम शुक्ल
श्री उर्मिला जौहरी
शंभुनाथ भ्मा
पद्मनारायण अग्रवाल
भैरव प्रसाद
श्री मेकडोनेल्ड लेडाल्ड
डा० पद्मा अग्रवाल
मुनेश्वर प्रसाद, एम० ए०
अनन्त बापू जी माण्डे
विरवनाथ सहाय माथुर
श्रीमती शचीरानी माथुर
चन्द्रावती लखनपाल
- प्रकाशक
साहित्यसेवक-कार्यलय, जालपादेवी काशी
विद्या मन्दिर लिमिटेड, नई दिल्ली
रामनारायण लाल, इलाहाबाद
संसार प्रेस, बनारस
रामनारायण लाल, इलाहाबाद
राजकमल प्रकाशन, फैज बाजार, दिल्ली
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, बनारस
वैज्ञानिक प्रकाशन मंडल, भागलपुर
पी० सी० द्वादशश्रेणी एण्ड को०, अलीगढ़
राजकमल-प्रकाशन, नई दिल्ली
भारतवासी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद

१३	समाज-मनोविज्ञान के कुछ पहलू	प्रमोद कुमार	दयाल हाउस, शिवगंज, आरा
१४	सामान्य मनोविज्ञान	अर्जुन चौबे काश्यप	राजराजेश्वरी पुस्तकालय, गया
१५	हमारे जीवन का अर्थ भाग ३	श्री एल्फ्रेड एडलर	राजकमल प्रकाशन, फैजबाजार, दिल्ली
१६	" "	" "	" "
१७	" "	" "	" "

२ सामाजिक शिक्षा एवं ग्रामोपयोगी साहित्य

१	खेतीबारी	ओमप्रकाश	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
२	गाँवों की समस्याएँ—३ भाग	दयाशंकर दुबे	छात्रहितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग
३	गाँव की सुरक्षा	रामबुम्भावन सिंह	मगध राजधानी प्रकाशन, पटना
४	गाँव की सफाई	" "	" "
५	घाम-अर्थशास्त्र	दयाशंकर दुबे	नेशनल प्रेस, इलाहाबाद
६	घाम-समस्यायें	बाबा राधवदास	जनशिक्षण-संघ, प्रयाग
७	ग्राम-स्वराज्य	रामनारायण यादवेन्दु	नालन्दा पब्लिकेशन्स, बम्बई
८	ग्रामसुधार-योजना	कुमारप्पा	वयस्क शिक्षा बोर्ड, बिहार, पटना
९	चादर बगुले की पाँख	सत्यनारायण	मगध राजधानी प्रकाशन पटना
१०	नागरिक अधिकार और कार्य	—	जामिया मिलिया, दिल्ली
११	बिहार पंचायत राज्य	शिवपूजन सहाय	वयस्क शिक्षा बोर्ड, बिहार, पटना

१२ भारत का शासन-विधान

१३ सम्पत्त कहार

१४ सामाजिक शिक्षा

१५ हमारे गाँव की कहानी

शिवपूजन सहाय

रामदास गौड़

जामिया मिलिया, दिल्ली

”

अजन्ता प्रेस, पटना

सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली

३ समाज-शास्त्र

१ जीवन-देवता की वाणी

२ पूँजीवाद, समाजवाद, ग्रामोद्धार

३ भारत में सामाजिक कल्याण

और सुरक्षा

४ भारतीय सामाजिक समस्याएँ

५ भारत के समाज और इतिहास

पर स्फुट विचार

६ महात्मा गांधी और समाजवाद

७ यह छुआछूत

८ राम-राज्य

जगन्नाथ प्रसाद मिश्र

कुमारप्पा

रघुराज गुप्त

लक्ष्मीनारायण शास्त्री

श्री पकाश

पट्टाभि सीतारमैया

भद्रन्त आनन्द कौसल्यायन

राजबहादुर

९ राष्ट्रीयता और समाजवाद

नरेन्द्रदेव (आचार्य)

वाणी मन्दिर, छपरा

ज्ञानमंडल लि०, काशी

बंसल बन्धु, देहरादून

हिन्दी विद्यापीठ, देवघर

ज्ञानमंडल लि०, काशी

किताब महल, जीरो रोड, प्रयाग

सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

बंगीय हिन्दी परिषद्, नं० १५ वंकिम चटर्जी

स्ट्रीट, कलकत्ता-१२

ज्ञानमंडल, काशी

- १० समाज-कल्याण
- ११ समाजवाद और राष्ट्रीय क्रांति नरेन्द्रदेव
- १२ समय ग्राम-सेवा की ओर धीरेन भाई
- १३ समाज-सेवा विश्वम्भर सहाय प्रेमी
- १४ समाजवाद रघुराज गुप्त
- १५ समाजशास्त्र के सिद्धान्त सम्पूर्णानन्द
- १६ स्वतन्त्रता और संस्कृति (अनु०) राधाकृष्णन्

- मोहन प्रेस, पटना-३
- शिव प्रकाशन, हास्पिटल रोड, आगरा
- साधना सदन, इलाहाबाद-१
- प्रेमी प्रिंटिंग हाउस, मेरठ
- बंसल बंधु, देहरादून
- काशी विद्यापीठ, बनारस
- अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस, अमीनुर्रौला पार्क, लखनऊ

४ सर्वोदय साहित्य : गाँधी-साहित्य

- १ अछूतोछार
- २ आत्म-कथा
- ३ आत्म-कथा (संक्षिप्त)
- ४ गांधीवाद : समाजवाद
- ५ गांधीजी, जैसा मैंने देखा
- ६ गाँवों के सुधार की एक योजना
- ७ ग्रामसेवा
- ८ प्रार्थना-प्रवचन, खंड १ और २
- ९ बापू के कदमों में

- गांधीजी
- "
- "
- कालेलकर
- श्री २० २० दिवाकर
- कुमारप्पा
- गाँधीजी
- "
- डा० राजेन्द्र प्रसाद

- समता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
- "
- काशी विद्यापीठ, बनारस
- नवयुग साहित्य-सदन, इन्दौर
- राजहंस प्रकाशन, दिल्ली
- ग्रामोद्योग संघ, भागलपुर
- समता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
- "
- अजन्ता प्रेस, पटना

१०. महिलाओं से	गौधीजी	श्री गांधी ग्रंथागार, सी० ७।१४० सेनपुरा, बनारस
११ युग की महान् चुनौती	धीरेन्द्र मजुमदार	सर्वोदय साहित्य संघ, काशी
१२ रचनात्मक कार्यक्रम	गौधीजी	नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद
१३ सच्चो शिक्षा	"	"
१४ सेवागाँव का सन्त	डा० राजेन्द्र प्रसाद	गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
१५ समाजवाद, साम्यवाद और	भगवानदास केला	भारतीय ग्रंथमाला, दारांगंज, प्रयाग
सर्वोदयवाद	"	"
१६ सर्वोदय-राज्य क्यों और कैसे	हरिभाऊ उपाध्याय	युगान्तर प्रकाशन, जयपुर
१७ सर्वोदय की दिशा में		

५ नागरिकता तथा राजनीति

१ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति	रामनारायण यादवेंन्दु	आर्यावर्त प्रकाशन मंदिर, मजहलहलक पथ, पटना-१
२ आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त	"	राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान, अशोक राजपथ, पटना
३ कांग्रेस का संक्षिप्त-इतिहास	किशोरीदास बाजपेयी	जनवाणी प्रकाशन, बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता
४ खंडित भारत	डा० राजेन्द्र प्रसाद	ज्ञानमंडल, काशी
५ गांधी और स्टालिन	लुई फिशर	राजकमल प्रकाशन, नं० १, फैजबाजार, दिल्ली
६ नवीन भारतीय विधान	रामनारायण यादवेंन्दु	साहित्य रत्न भंडार, आगरा
७ नागरिक और नागरिकता	शुभदा तेलंग	लोकसेवक प्रकाशन, आगरा

- ८ नागरिक शास्त्र
- ९ नागरिक शास्त्र
- १० नागरिक शिक्षा
- ११ नागरिकता और सामाजिकता
- १२ नागरिक शास्त्र
- १३ पार्लियेन्टरी सरकार
- १४ भारत नये संविधान तक
- १५ भारतवर्ष के स्वातन्त्र्य संग्राम का इतिहास
- १६ भारत का संविधान

१७ भारतीय राजनीति और शासन-पद्धति

- १८ भारतीय शासन-परिचय
- १९ भारतीय राष्ट्रीयता का विकास
- २० राजनीति-विज्ञान
- २१ राजनीति-प्रवेशिका
- २२ राष्ट्रमंडल-शासन
- २३ राष्ट्रमंडल-शासन

बेनी प्रसाद (डा०)

भगवानदास केला

- प्रो० केदारनाथ प्रसाद
- द्वारिका सिंह एम० ए०
- प्रो० विश्वनाथ राय
- मदनमोहन गुप्त

सुखसंपत्तिराय भंडारी
प्रो० श्रीकान्तभा, एम० ए०

कन्हैया लाल

परमेश्वरीलाल गुप्त
रामनाथ सुमन
जगन्नाथ प्रसाद मिश्र
बेनी प्रसाद (डा०)
दयाशंकर दुबे (प्रो०)
भगवानदास केला

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, ज्ञानवापी, काशी
भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग

विश्वहितैषी प्रकाशन, खजांची रोड, पटना-४
भारती भवन, बाँकीपुर, पटना
लोक-सेवक प्रकाशन, बुलानाला, बनारस
मकतबा जामियाँ, जामियानगर, दिल्ली

डिक्शनरी पब्लिशिंग हाउस, ब्रह्मपुरी, अजमेर
श्रीकान्त भा, एम० ए०, समस्तीपुर कालेज,
समस्तीपुर, (दरभंगा)

भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग
साधना सदन, लूकरगंज, इलाहाबाद-१
अजन्ता प्रेस लि०, नयाटोला, पटना-४
पद्मकान्त मालवीय, ६८ लकरगंज, प्रयाग
भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग

२४ राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास

२५ रूस का पंचायती राज्य

२६ विश्वसंघ की ओर

२७ सत्याग्रह और विश्वशांति

२८ स्वतंत्र भारत का शासनविधान

२९ स्वतंत्र भारत का संविधान

३० संक्षिप्त नागरिक शास्त्र और

स्वतंत्र भारत का संविधान

३१ संघर्ष की ओर

३२ हमारी राष्ट्रीय समस्याएँ

३३ हमारी समस्याएँ और उनका हल

मन्मथनाथ गुप्त

प्राणनाथ विद्यालंकार

भगवानदास केला

रंगनाथ दिवाकर

भगवानदास केला

राजाराम शास्त्री

श्री मिह्रासन पाण्डेय

जयप्रकाश नारायण

भगवानदास केला

श्रीजवाहरलाल नेहरू

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, हास्पिटल रोड, आगरा

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, ज्ञानवापी, काशी

भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग

प्रगति प्रकाशन, १४ फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली

भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग

विद्या मन्दिर, ८४ सी. लोअर चित्तपुर रोड, कलकत्ता-६

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं०, हास्पिटल रोड आगरा

भारतीय ग्रन्थमाला कार्यालय, दारागंज, प्रयाग

सम्पत्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

६ अर्थशास्त्र

१ अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त

२ आर्थिक सफलता

३ ग्राम-अर्थशास्त्र

४ ग्राम-अर्थशास्त्र

५ नागरिकता और राज्य

६ भारत का आर्थिक भूगोल

भगवानदास केला

विश्वानन्द

दयाशंकर दुबे (प्रो०)

भगवानदास केला

केदारनाथ प्रसाद (प्रो०)

श्री मन्नारायण अग्रवाल

भारतीय ग्रन्थमाला कार्यालय, दारागंज, प्रयाग

शान्ति सन्देश कार्यालय, खगड़िया, मुङ्गेर

नेशनल प्रेस, प्रयाग

भारतीय ग्रन्थमाला कार्यालय, दारागंज, प्रयाग

पुस्तक भंडार, पटना-४

किताब महल, प्रयाग

- १३ बिजली-दूषण
- १४ मधुमक्खी-पालन
- १५ रंग की पुस्तक
- १६ रेडियो गाइड
- १७ रोशनई बनाने की पुस्तक
- १८ व्यापार संगठन एवं व्यवस्था
- १९ शिक्षा में वखोयोग

२० साबुन बनाने की पुस्तक

प्रो० लक्ष्मीचन्द
श्री दयाराम जुगड़ाना
प्रो० लक्ष्मीचन्द

—

प्रो० लक्ष्मीचन्द
प्रो० श्री० पी० एल० गौललकर
श्री द्वारिका प्रसाद महेस्वरी.

एम० ए०

प्रो० लक्ष्मीचन्द

विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद
भारती भंडार, बनारस
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, पटना
भारती भंडार, बनारस
रामप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा
शक्ति कार्यालय, इलाहाबाद
भारती भंडार, बनारस

८ हास्य-व्यंग्य

- १ कहकहा
- २ खटोला
- ३ खरगोश के सींग
- ४ गौधीजी का भूत
- ५ चिड़ियाघर
- ६ ठलुआ कलब
- ७ दूल्हे का दाम

सरयू पंडा गौड़
आनन्दकुमार
प्रभाकर माचवे
बेदब बनारसी
हरिशंकर शर्मा
गुलाबराय
सरयू पंडा गौड़

अजन्ता प्रेस लि०, पटना-४
विशाल भारत बुक डिपो, कलकत्ता
नीलाभ प्रभाशन ग्रुह, प्रयाग
लोक सेवक प्रकाशन, चौक, बनारस
पुस्तक भंडार, पटना-४
राजा राजकुमार प्रेस, लखनऊ
कलानिकेतन, पटना-४

न नोक-भोंक

६ पकौड़ी साह ज़िन्दाबाद

१० मार-मार कर हकीम

११ लम्बी दाढ़ी

१२ हास्य और विनोद

जी० पी० श्रीवास्व

विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त

जी० पी० श्रीवास्तव

”

प्रेमनारायण टंडन

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, पटना

राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान, पटना-६

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, पटना

”

विद्या-मन्दिर, रानीकटरा, लखनऊ

६ जीवनी आत्मकथा आदि

१ गौतम बुद्ध

२ जवाहरलाल नेहरू

३ नये भारत के नये नेता

४ बुद्ध और महावीर

५ महात्मा गाँधी

६ महाराणा प्रताप

७ स्वामी रामतीर्थ

८ संसार के महान् साहित्यिक

श्री राधाकृष्णन्

श्री० वाई० जी० कृष्णमूर्ति

राहुल सांकृत्यायन

किशोरी लाल

श्री रोमारोला

श्री विनोद

श्री बहादुर मल्ल, एम० ए०

श्री राजबहादुर सिंह

सुषमा साहित्य मन्दिर, जबलपुर

डा० यदुवीर सिंह, लहेरिया सराय

राहुल पुस्तक प्रतिष्ठान, पटना ६

भारतधर्म महामंडल, काशी

सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद

हंसराज प्रकाशन, दिल्ली

गुलाबबंद एण्ड सन्स, जी० पी० रोड; दिल्ली

सुषमा साहित्य मन्दिर, जबलपुर

१ अजातशत्रु

जयशंकर प्रसाद

१० नाटक

लीडर प्रेस, प्रयाग

- २ अन्तहीन अन्त
- ३ अम्बपाली
- ४ आनरेरी मजिस्ट्रेट (प्रहसन)
- ५ ओ मेरे सपने
- ६ अंगूर की बेटी
- ७ कोणार्क
- ८ छत्रसाल
- ९ छलना
- १० छाया
- ११ ज्योत्सना
- १२ भौंसी की रानी
- १३ ध्रुवस्वामिनी
- १४ नाटकावली
- १५ नील देवी
- १६ पारिजात मंजरी
- १७ पैसा परमेश्वर
- १८ प्रतिनिधि एकांकी
- १९ पृथ्वीराज की आँखें
- २० भोर का पता

- उदयशंकर
- बेनीपुरी
- सुदर्शन
- जगदीशचन्द्र माथुर
- गोविन्दवल्लभ पन्त
- जगदीशचन्द्र माथुर
- चतुरसेन शास्त्री
- भगवती प्रसाद वाजपेयी
- हरिकृष्ण प्रेमी
- सुमित्रानन्द पन्त
- वृन्दावनलाल वर्मा
- जयशंकर प्रसाद
- द्विजेन्द्रलाल राय
- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
- देवेन्द्रनाथ शर्मा
- रामनरेश त्रिपाठी
- उपेन्द्रनाथ अशक
- रामकुमार वर्मा
- जगदीशचन्द्र माथुर

- मोतीलाल बनारसीदास, गायघाट, बनारस
- अजन्ता प्रेस, पटना
- सरस्वती प्रेस, बनारस
- नीलाभ प्रकाशन गृह, खुसरोबागरोड, इलाहाबाद
- गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
- भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
- अंतरचन्द कपूर एण्ड सन्स, देहली
- राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
- आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
- भारती भण्डार, प्रयाग
- मयूर प्रकाशन, भौंसी
- लीडर प्रेस, प्रयाग
- हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई
- हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, बाँकीपुर, पटना
- अजन्ता प्रेस, पटना
- हिन्दी मन्दिर प्रकाशन, हसनपुर, चाइटोला, पटना
- नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग
- भारती भंडार, प्रयाग
- पुस्तक भंडार, पटना

२१ मानव

२२ मालविकाग्निमित्र

२३ मुद्राराक्षस

२४ मूर्खमंडली (पूहसन)

२५ मृच्छकटिकम्

२६ मंगल सूत्र

२७ राजमुकुट

२८ राज्यश्री

२९ रेशमी टाई

३० रत्नावन्धन

३१ सत्य हरिश्चन्द्र

३२ सिन्दूर की होली

३३ स्वप्नवासवदत्ता

विन्ध्यवासिनी देवी

मू० ले० कालिदास, अनु० गोविन्द

शास्त्री

मू० लेखक विशाखदत्त,

अनु० भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

रूपनारायण पाण्डेय

मू० ले० शूद्रक, अनु०

प्रभुदयाल अग्निहोत्री

वृन्दावन लाल वर्मा

गोविन्दवल्लभ पन्त

जयशंकर प्रसाद

रामकुमार वर्मा

हरिकृष्ण प्रेमी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

लक्ष्मीनारायण मिश्र

मू० ले० भास, अनु० मैथिलीशरण

गुप्त

विन्ध्य कला मन्दिर, काजीपुर, पटना

इन्टर नेशनल पब्लिशिंग कम्पनी, बनारस

हिन्दी पुस्तक एजेंसी, २०३ हरिसन रोड,

कलकत्ता

गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ

मानस मन्दिर, साहित्य प्रेस, जबलपुर

मयूर प्रकाशन, भौसी

गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ

लीडर प्रेस, प्रयाग

भारती भंडार, प्रयाग

हिन्दी भवन, इलाहाबाद

महेश प्रकाशन, भागलपुर-७

भारती भंडार, प्रयाग

साहित्य सदन, चिरगाँव, भौसी

२४ शकुन्तला।

प्रजापदाल, अमु०

राजा लक्ष्मण सिंह

साहित्य रत्न भंडार, आगरा

सेठ गोविन्ददास

गर्ग ब्रदर्स, इलाहाबाद

३५ शशिगुप्त

११ पत्र-पत्रिकाएँ

१ आधुनिक शिक्षा

बो० एम्० माथुर

राजकमल प्रकाशन, फैज बाजार नई दिल्ली, त्रै मासिक

२ ग्रामसेवा

परमेश्वर सिंह

व्यवस्थापक, ग्रामसेवक, पटना-३ मासिक

३ ग्रामनिर्माण

रामचरित्र सिंह

आदिम जाति सेवा मंडल, निवारणपुर, राँची ,

४ जनवाणी

आचार्य नरेन्द्रदेव

काशी विद्यापीठ, बनारस ;

५ जनजीवन

ब्रजकिशोर नारायण

समाज शिक्षा बोर्ड, बिहार पटना-४ ;

६ जीवन-साहित्य

हरिभाऊ उपाध्याय

सस्ता साहित्य मंडल; कनाट सरकार, नई दिल्ली ;

७ नया समाज

मोहन सिंह सेंगर

३३ नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता ;

८ मंगलप्रभात

काका कालेलकर

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा मासिक

९ बिहार-शिक्षक

शिवस्वरूप वर्मा

महेन्द्र, पटना त्रै मासिक

१० शिक्षा

शिक्षाविभाग, उत्तरप्रदेश,

प्रयाग

११ समाज-शिक्षण

वनस्थली-विद्यापीठ, जयपुर

१२ सर्वोदय

विनोबा भावे

सर्वोदय कार्यालय, वर्धा,

[શ્રા. અંગ્રેજી]

I. BACKGROUND STUDIES

Baker and Brownell	...	Human Community. Harper and Brothers.
Firth, Raymond	...	Elements of Social Organisation. Watt and Co, London.
Ginsberg Morris	...	Psychology of Society. Methuen and Co., London.
Klineberg, Otto	...	Social Psychology, N., Holt, 1940
Kroeber, A. L	...	Configuration of Culture and Growth. University of California Press, U. S. A.
Kumarappa, J. C.	...	Capitalism, Socialism and Villagism, Shakti Karyalaya, Madras.
Linton, Ralph	...	The Cultural Background of Personality. London
Livingstone, Sir Richard Winn.	...	Kegan Paul, Trench, Trubner, 1947.
Maciver	..	On Education, N. Y. Macmillan, 1944.
Maciver and Page	...	Social Causation. Ginn and Co., London.
Mannheim, Karl	..	Society. Macmillan and Co., London.
	..	An Introduction to Sociology. Macmillan and Co , London.

- Mukherjee, R. K. ... Social Structure of Villages. Macmillan and Co., Calcutta.
 Nelson ... Rural Sociology. American Book Company, New York
 U. S. A
 Ottaway, A. K. C ... Education and Society, London, Rutledge and Kegan
 Paul, 1953.
 Peterson ... Educational Psychology. Macmillan and Co., London
 Saiyidain, K. G. ... Message of the New Education. New Education
 Fellowship, 1937.
 Saiyidain, K. G. ... Education, Culture and the Social Order. Asia Publishing
 House, Calcutta.
 Singh, B. ... Population and Food Planning in India Hind Kitabs
 Ltd, Bombay.
 Sorensen, H. ... Psychology in Education. New york.
 Wadia R. A. ... Our Economic Problem. New Book Company, Bombay.
 Young, Kimball ... Social Psychology, N. Y., Croff.s, 1944.

II GENERAL

- Allaway, Albert John ... Adult Education in a changing Society, University
 College, Leicester,

- Bear, Robert, M ... Social Functions of Education. Macmillan Co., New, York 1947.
- Bittner, W. S ... Adult Education. N. Y., Sheed and Ward, Toronto, Longmans, 1941.
- Brew, J. Macalister ... Informal Education. London Faber, and Faber 1946.
- British Institute of Adult Education after the War, Oxford University Press, Education. London, 1945.
- Cartwright, Morse Adams, Adult Education : United States (In Ency. Brit., 1951, V. 1, p. 185-87).
- Cartwright, Morse Adams, Education, Adult. (In Ency. Amer., 1951).
- Cawson, Frank Hotchkiss; The Education of the Adult, London British Council, 1951.
- Debatin, Frank Michael, Administration of Adult Education, N.Y. Cincinatti, American Book Company, 1938.
- Fisher Mrs. Dorothea Frances (Canfield). Why stop learning; N. Y, Harcourt, 1927.
- Fund for Adult Education; Annual Report. N. Y., 1951
- Green, Ernest George; Education for a new Society, London; Routledge, 1942.
- Hart, Joseph Kinmont; Adult Education. N. Y. Crowell.
- Hatch, D. S. ... Toward Freedom from Want. Oxford University Press

- Hewitt, Dorothy, and Mather, Kirtley Fletcher; Adult Education, A Dynamic for Democracy. N. Y., London Appleton-Century, 1937.
- Hindustani Talimi Sangh
Indian Adult Education
Institute of Adult Education ;
 Picture and Programme of Adult Education.
 Reports of National Seminars.
 Suggested Studies in Adult Edn. N. Y., Teachers Col.,
 Columbia Univ., 1942.
- International Conference of Adult Education, Elsinore, Denmark, 1949. Summary
 Report. Columbia Univ. Press, '49.
- Kempfer, Homer, and Wright, Grace S.; Selected Approaches to Adult Education.
 Washington, D. C., Govt. Printing off. 1950.
- Keppel, Frederick Paul; Education for Adults and other Essays N. Y., Columbia Univ.
 P., 1926.
- Kotinsky, Ruth. ... Adult Education and the Social Science, N. Y., and
 London, D. Appleton Century, 1933.
- Lee, Christopher ... Adult Education. (In Chambers' Encyclopaedia.)
 N. Y., New Republic, inc., 1926.
- Lindeman, Eduard Christian Adult Education. (In ESS, 1930)

- Ministry of Education.
Govt. of India. Teachers' Handbook of Social Education.
- Osteyee, Edith Pillar ... Teaching Adults. Philadelphia, American Baptist Publication Society, 1948.
- Owens, Albert Alexander and Sharlip, William Elementary Education for Adults. Philadelphia, Winston Co., 1945.
- Peers, Robert, *ed.* ... Adult Education in Practice, London, Macmillan, 34'.
- Peffter, Nathaniel ... New Schools for older students. N. Y., Macmillan, 26'.
- Ranganathan, Shiyali Ram- Social Education literature for authors, artists, publishers, teachers, librarians and Govts. Delhi Adult Education Association.
- Reeves, Floyd Wesley; Fansler, Thomas; and Houle, C. O. Adult Education N. Y., McGraw-Hill, 38'.
- Saiyidain, K. G. ... Education for International Understanding, Bombay, Hind Kitabs 48'.
- Thorndike, Edward Lee ... Adult Interests, N. Y., Macmillan, 35'.
- Thorndike, Edward Lee ... Adult Learning London, Macmillan 28'.

Yeaxlee, Basil Alfred.

... Life-long Education. London, Cassell, 29'.

III HISTORICAL AND DESCRIPTIVE.

American Association for
Adult Education.

Studies in Adult Edn. Macmillan, 1926-33.

American Association for
Adult Education.

Studies in the Social Significance of adult education
in the U. S., vols. 1-27. 1937-40 Macmillan 1926-33
Adult Education, Dryden Press, New York 1953,

Dryden professional Books in
Education.

Great Britain, Education,
Board of.

Adult Education Committee. 1921. No. 3. The Deve-
lopment of adult education in rural areas

Kidd, J. R., *ed.*

... Adult Education in Canada. Toronto. Canadian
Association for adult education, '50.

Loomis, Charles, F.

... Rural Social Systems and Adult Education.
Michigan State College, Press, 1953.

Martin, G. Currie.

... Adult School Movement, Its origin and Develop-
ment, London. National Adult School Union, 1924.

Philippines

... Handbook of adult education in the Philippines,
Republic of Philippines, 1947.

Rowden, Dorothy, *ed.*

Handbook of Adult Education in the U.S. N.Y., Amer. Assoc of Adult Education, '36.

IV TECHNIQUES AND MEDIA

Bowman, LeRoy Edward ..

How to lead discussion, a guide for the use of group leaders N.Y., The woman's Press.

Bureau of Current Affairs ..

Discussion method: the purpose, etc. London, Dobson, Sept. '52.

Dale, Edgar. ..

Audio Visual Methods in Teaching. Dryden, '46; Harrap. '47.

Film Centre Ltd. ..

Research & Publication Deptt, London, Film Centre Educational pamphlets.

Great Britain, Education, Board of Adult Education Committee The Drama in adult education, a report. London, H.M.S.O. '27.

Great Britain, Education Ministry of National Advisory Council on the Training and Supply of Teachers. The recruitment and training of youth leaders and community centre wardens. report, London, H.M.S.O. July '51.

Knowles, Malcolm, S

Informal adult education : a guide for administrators, leaders and teachers. Assn. Press, '50.

Lauwerys, J.A.

The Content of Education.

English Universities Press, '45

National Education Association of U.S. Division of Adult Education. Washington, D.C,

National Education Assn, '51.

National Home Study Council, *Washington D. C.* Home study blue book (1948).

Sworder, Stanley E.

Handbook for teachers of adults. Sacramento, '51

V. INSTITUTIONAL PROGRAMMES.

American Library Assn. Libraries and adult education; report of study made by the

American Library Association, Chicago, A.L.A, '26.

Carnovsky. Leon

The Public Library in adult and fundamental education.

Flexner, Jennie Mass, and Edge, Sigrid A—A Reader's Advisory Service. N.X., Amer.

Asso. for adult educ, '34

VI SCHOOLS, CENTRES, INSTITUTES WORKSHOPS.

Begrup, Holger; Lund, Hans, and Manniche, Peter—

Folk High School of Denmark and the development of a farming community, Oxford University Press, '36

- Boje, Andreas; Borup, Ernst J., and Rutzebeck, Holger, *eds.*.—
Education in Denmark; the intellectual basis of a
democratic commonwealth. London and N. Y.
Oxford Univ. Press.
- Campbell, Mrs. Olive Arnold (Dame) :—The Danish Folk School; its influence in the life
of Denmark and the North, N. Y., Macmillan, 1928.
- Foght, Harold. W. ... Rural Denmark and its schools, Macmillan N.Y.
- Forster, F. Margaret. ... School for life : a study of the people's colleges in
Sweden. London, Faber & Faber '44
- Great Britain, Education Ministry.—Community Centres, London, H.M.S.O., 1945.
- Great Britain, Education Ministry.—Further Education. The scope and the content of
the opportunities under the Education Act, 1944.
London, H.M.S.O. 1947.
- Miller, John Christmas and Watson; Katherine.—Education in Democracy. The Folk
High Schools of Denmark. London, Faber & Faber,
1944.
- Sadler, Sir Michael ... Continuation schools in England and elsewhere.
Manchester Univ. Press, Manchester.

VII. SPECIAL ASPECTS

(a) *Army. Family, Agriculture.*

- Bruner, Edmund de Schweinitz, and Yang, E. H. P. Rural America and the extension service; a history and critique of the co-operative agricultural and home economics extension service. N. Y., Teachers College, Columbia Univ., 1949.
- Coady, Moses Michael. ... Masters of own destiny : the story of Antigonish movement of adult education through economic co-operation. N.Y. London, Harper, 1939.
- Food and Agriculture Organisation. Preliminary Report on School Co-operatives : an experiment in co-operative education in Brazil. Washington, D. C. F. A. O. 1949.
- Lyle, Mary Stewartt. ... Adult Education for democracy in family life. Iowa State College Press, 1944.
- Pollard, L. Belle. ... Adult education for homemaking, 2nd Ed. Wiley. '47. Chapman, 1948.
- Riner Elizabeth. ... Frontiers in homemaking education. Programs for Adults Washington D.C., U. S. office of Education. . .

Turner, C. E.

.. Community health educator's compendium of knowledge. St. Louis, Mo, C. V. Mosby, 1951.

(b) *College University Extension*

.. Universities in Adult Education, Paris, Unesco 1952.

(c) *Fundamental Education*

.. Adult Education : Current trends and practices. Paris, Unesco, 1950

.. The Healthy Village, an experiment in visual education in West China. Paris, Unesco, 1951.

.. Progress of Literature in various countries, a preliminary statistical study of available census data since 1900. Paris, Unesco., 1953.

.. Visual aids in fundamental education, some personal experiences. Paris, Unesco, 1952.

VIII INDIA

All India Adult Education Conference

7th Hyderabad (Dn.) 1950. How to organise adult education; presidential address by S. R. Kidwai Hyderabad, A. I. A. E. C. 1951.

- Bulsara, Jal Feeroose.
- Champness, Ernest, *and*
Richardson, H. B.
Daudpota, Umar Muhammad.
- India, Education Ministry of,
Bureau of Education.
- Indian Adult Edn. Assn.
Indian Adult Edn. Assn
- Summer, W. L.
Indian Adult Edu. Assn.
- Jamia Millia Islamia
- Madhya Pradesh, Director
of Public Instruction,
- .. Mass and adult education in India.
Indian Adult Education handbook. London, the
National adult school union of Great Britain and Delhi.
A survey of mass education in India, Sharafuddin
and Sons, 1937.
- Teachers' Handbook of Social Education. Ministry
of Education, Delhi.
- .. Literature of Neo-literates-Report of 3rd Seminar.
- .. National seminar on the organisation of Community
Centres, Indore, Oct. 1951. Report. Delhi, I.A.E.A.
- .. Visual Methodos in Education. Basil Blackwell, Oxford.
National Seminar on the organisation and techni-
ques for the liquidation of illiteracy. Jabalpur, M.P.
Delhi I.A.E.A.
- .. Memorandum on Institurte of adult and social edu-
cation, Delhi, Jamia Millia.
- Social Education in Madhya Pradesh from 1948 to
1950 Nagpur Govt. Press. 1951.

- Mukerji, S. N. ... Education in India—To-day and To-morrow
 Baroda, Acharya Book Depot, 1950.
- Mysore State Adult Education Council—Adult Education in Mysore.
 Mysore, The Council, 1949.
- Mysore State Adult Education Council.
 The Hulikere pilot project, Mysore, 1950.
- Mysore State Adult Education Council.
 Report of the Students Social Service Camps (1951).
- Osgood, William Cyril. ... Adult education program for Orissa, India Oregon
 State College, 1950.
- Ramnathan, Shiyali Ramamrit. Rural adult education prepared on the occasion of
 the Unesco Seminar, Mysore, Nov.-Dec., 1949. Indian
 Adult Education Assn., Delhi.
- Robinson, L. ... The Mysore Seminar.
- Rural Adult Education ... Masulipatam, South India, Educational India Office
 1949.
- Saiyidain, K. G. Problems of of educational reconstruction, Asia Publi-
 shing House, Bombay, 1950.
- Saiyidain, K. G. and others ... Education System, Oxford Univ. Press.

IV. PERIODICALS

(a) *Great Britain.*

Adult Education	... Quarterly, National Institute of Adult Education, 35 Queen Anne Street, London.	
Further Education	... Quarterly. 1947—Turnstile Press, 10, Great Turnstile, London.	
Mass Education Bulletin	... Quarterly. Vol. I.....No. 1, Dec. 1949 to date Mass Education Clearning House, Univ. of London.	(
One and All	... Monthly. National Adult School Union, 35 Queen S, London.	20 40 40)
Scottish Adult Education	... Quarterly. 1951 to date, Scottish Institute of Adult Education, 3 University Gardens, London, W. 2.	
Tutors' Bulletin. Quarterly. 1922 to date.	Assn. of tutors in adult education in Great Britain.	
Visual Education. Monthly. V. 1, no. 1. Jan. 1950—to date.	National Committee for Visual Aids in Education	
	79 Wimpole Street London, W. 1.	

(b) *India*

Adult Education Review. Monthly. V. 1, No. 1, Nov. 1949. to date.

South Indian Adult Edu. Assn., Madras 1
Education Quarterly (Mar., June, Sept., Dec.) V. 1, 1949 to date.

Ministry of Education, New Delhi.

Indian Journal of Adult Education. Quarterly, 30 Faiz Bazar, Delhi.

Social Education News. Irregular ; V. 1, July, 1950. 30 Faiz Bazar Delhi,
Bulletin

(c) *International*

The International Quarterly of Adult Education V. 1, No. 1, June 1938 to date
The World Assn. for Adult Education, 18 Gordon
Square, London

(d) *Philippines*

Adult Education in Action, Monthly (English), Bureau of Public School Division of
Adult Education, Philippines.

The Philippine Community School Bulletin, Monthly, Bureau of Public Schools,
Manila

(e) *Unesco*

Fundamental and Adult Education, a quarterly bulletin. Unesco, 19 Avenue Kleber, Paris—16

(f) *United States*

Adult Education.

Amer. Assn. of Adult Edu. Ohio, U. S. A.

Journal of Educational Psychology, Warwick and York, Inc, 10E, Centre. Street, Baltimore 2.

X. INSTITUTIONS

(a) *Burma*

University for Adult Education, Rangoon, Pazundaung municipal school building, Thompson Street, P. O. Rangoon, Annual Reports.

(b) *Canada*

Canadian Assn. for Adult Education : 143 Bloor St. West, Toronto 5.

(c) *Great Britain*

New Education Fellowship : 1 Park Crescent, London, W. I. The New Era in Home and School (monthly)

(d) *India*

All India Adult Education Association, Delhi.
Indian Institute of Education. 11, Horniman Circle, Fort Bombay.
Jamia Millia, Delhi.
Departments of State Governments.

XI. DIRECTORIES

Ely, M. L. *ed* ... Handbook of adult education in the U. S., Institute of
Adult Education, 1950.
Fulmer M. ... Adult Education : suggested reading, 1944.



परिशिष्ट—ड

अनुक्रमणिका

विषय तथा प्रतिपाद्य बिन्दु

अनुक्रमणिका

(विषयों तथा प्रतिपाद्य बिन्दुओं की)

परिच्छेद	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
१	भारत में सामाजिक शिक्षा की प्रगति	१—८
	— प्रौढ़ शिक्षा की प्राचीन परंपरा; आश्रम-प्रणाली में प्रव्रज्या; कथाकीर्त्तन, रामलीला, नाटक आदि; ब्राह्मणों का त्यागमय जीवन; विदेशी राज्य का दुष्प्रभाव; नवीन चेतना और नए प्रयोग; प्रौढ़शिक्षा का प्रथम युग; द्वितीय युग; तृतीय युग; चतुर्थ युग; पंचम युग; आधुनिक स्थिति ।	
२	स्वतंत्रता और समाज शिक्षा	९—१२
	— महात्मा गांधी और राजनीतिक स्वतंत्रता; सामाजिक चेतना एवं स्वतंत्रता; रामराज्य; तुलसी चित्रित रामराज्य ।	
३	भारतीय संविधान	१३—१५
४	व्यक्ति एवं समाज	१६—१८
	— समाज का निर्माण; समाज की सत्ता; राजनीतिक व्यवस्था में समाज का स्थान; सामाजिक शिक्षा के लक्ष्य; व्यक्ति और समाज का सापेक्ष्य; समाजशिक्षा का व्यापक अर्थ ।	
५	समाज शास्त्र और सामाजिक शिक्षा	२०—२२
६	शिक्षाप्रक्रिया और समाजशिक्षा	२३—२६
	— प्राचीन शिक्षापद्धति में गुरु का स्थान; परिवर्तित धारणा का महत्व, नवीन शिक्षापद्धति में व्यक्ति तथा समाज का समन्वित विकास; व्यक्तिवाद तथा समाजवाद की अन्योन्याश्रयता; उपसंहार ।	

परिच्छेद

शीर्षक

पृष्ठ संख्या

७ समाजशिक्षा और समाजसेवा का रचनात्मक

कार्यक्रम २७—३८

—जीवन की समष्टि और उसकी समस्याओं की व्यापकता; समाजसेवक का लक्ष्य; सप्त-सूत्री योजना:—शिक्षा एवं साक्षरता, व्यक्तिगत एवं सामाजिक स्वच्छता, स्वास्थ्य तथा ओषधिवितरण, सामाजिक कुरीतियों का निवारण, आर्थिक उन्नयन, संस्कृति तथा मनोरंजन, प्रकाशन तथा प्रचार; समाजशिक्षा-कार्यकर्त्ता का समन्वयात्मक कार्य; बेकारी और उसका निराकरण; भिखमंगों की व्यवस्था; साधु-फकीरों की समस्या ।

८ वयस्क-मनोविज्ञान

३९—४३

—वयस्क की मुख्य मनोवृत्तियाँ; मनोवृत्तियों के आधारभूत तत्व; बालक और वयस्क की मनोवृत्ति में अन्तर; कार्यकर्त्ता का कर्त्तव्य; साक्षरतावर्ग को रुचिकर बनाना आवश्यक; आलस्य और कुटेव का निवारण; बड़प्पन का परिहार ।

९ समाजशिक्षा में माक्षरता का स्थान

४४—४७

—समाजशिक्षा का प्रारंभिक रूप; पाश्चात्य देशों का दृष्टिकोण; एशियाई देशों की विशिष्ट समस्या; वयस्कों में स्वतःप्रवृत्ति आवश्यक. माक्षरता—सामाजिकता का अनिवार्य अंग, किन्तु एकमात्र अंग नहीं

१० वयस्क-साक्षरतावर्ग और उसकी सामग्री

४८—५३

—सामग्रियाँ—(अ) पाठ्य सामग्री; (आ) श्रव्य-दृश्य सामग्री; (इ) विविध सामग्रियाँ; साक्षरतावर्ग का कार्यक्रम ।

- परिच्छेद शीर्षक पृष्ठ संख्या
- ११ नवसाक्षरों का साहित्य ५४—५७
 —नव-साक्षरों के साहित्य-निर्माण के लिए
 सेमिनार; नवसाक्षरों के तीन स्तर; शैलियाँ;
 साहित्योपयोगी विषय; कार्यकर्ता के लिए
 पठनीय साहित्य; निर्देश-साहित्य ।
- १२ वयस्क-शिक्षापद्धति की विशेषतायें ५८—६१
 —शिक्षा के लक्ष्य; वयस्क शिक्षा की प्रमुख
 प्रणालियाँ:—(क) शिक्षक-प्रधान प्रणाली.
 (ख) शिक्षाप्रधान प्रणाली, (ग) सम्मिलित
 शिक्षण-प्रणाली ।
- १३ साक्षरता-प्रदान की प्रणाली ६२—६६
 —विचार की इकाई वाक्य, न कि वर्ण;
 'समूह-प्रत्यक्ष' का सिद्धान्त; साहचर्य-सिद्धान्त;
 लोबाख की प्रणाली; स्मरणशक्ति का उप-
 योग; निष्कर्ष; मूलभूत समस्या ।
- १४ साक्षरतावर्ग का प्रारंभिक पाठ्यविषय ६७—८१
 —समाजशिक्षायोजना का मुख्य लक्ष्य; पाठ्य-
 क्रम के प्रमुख विषय:—१ मातृभाषा, २
 प्रारंभिक गणित, ३ सामान्य विज्ञान, ४
 प्रारंभिक नागरिकता और अर्थशास्त्र, ५
 इतिहास तथा संक्षिप्त कहानियाँ, ६ प्रारंभिक
 भूगोल, ७ कृषि, पशुपालन तथा उप-
 योग, ८ नैतिक और आध्यात्मिक कथाएँ,
 ९ प्रारंभिक चिकित्सा, १० हस्तोद्योग ।
- १५ (१) समाजशिक्षा तथा समाजसेवा का प्रशिक्षण ८२-८७
 —प्रशिक्षण क्यों? विशेषज्ञता की आवश्यक-
 कता; समाजसेवा एक कला है; व्थाव-
 हारिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता; कार्य-
 कर्ताओं के प्रकार; व्यवस्थापक और कार्य-

परिच्छेद

शीर्षक

पृष्ठ संख्या

कर्ता; प्रशिक्षण की अवधि; अल्पकालीन
प्रशिक्षण की उपादेयता ।

१५ (२) एक मास वा पन्द्रह दिनों का प्रशिक्षण-

पाठ्यक्रम ८८—९०

—सैद्धान्तिक कार्यक्रम; व्यावहारिक कार्यक्रम ।

१५ (३) त्रै मासिक प्रमाणपत्र का पाठ्यक्रम ९१—९७

—सैद्धान्तिक: - समाज-शास्त्र; समाजशिक्षा
के सिद्धान्त ; समाजशिक्षा का इति-
हास; शिक्षण-मनोविज्ञान, समाजशिक्षा की
प्रणालियाँ; समाजशिक्षा का संगठन, स्वास्थ्य-
शिक्षा; कृषि और गृहोद्योग; ग्रामीण अर्थ-
शास्त्र और ग्रामपरिगणन; श्रव्य-दृश्य शिक्षा;
लोकसाहित्य और लोककला; ग्रामपंचायत,
सहयोग संस्थाएँ, सामुदायिक विकास योजना;
पंचवर्षीय योजना; सामान्य जानकारी ।

१५ (४) एकवार्षिक उपाधि का पाठ्यक्रम ९८—११४

—सैद्धान्तिक:— त्रैमासिक प्रमाणपत्र के
पाठ्यक्रम के अनुरूप

—व्यावहारिक— —आवश्यक परिवर्तन-
परिवर्द्धन के साथ ।

१६ शिक्षण संस्थाओं द्वारा समाजसेवा कार्य ११५—१२२

—शिक्षा-संस्थाओं के माध्यम से; गाँवों और
मुहल्ले में सेवाकार्य; कुछ निदर्शन; आकास्मिक
परिस्थितियाँ; दैनन्दिन तथा नियमित
सेवाकार्य; शिक्षा-सप्ताह; विशिष्ट प्रश्न ।

१७ प्रसार और प्रदर्शन

१२३—१२६

—प्रसार की व्याख्या; केन्द्रीय संगठन और
समितियाँ; सम्पर्क और सहकारिता; प्रसार-
कार्य के सहायक साधन. प्रदर्शन ।

परिच्छेद

शीर्षक

पृष्ठ संख्या

१८ समाज-शिक्षा-शिविर

१२७—१४०

—शिक्षण-शिविर की उपयोगिता; शिविर-जीवन के उद्देश्य; समाज-शिक्षा की व्यापक सप्त-सूत्री-योजना की रूपरेखा :- १ स्वच्छता, सफाई, ओषधिवितरण, २. शिक्षा, ३. आर्थिक उत्थान, ४. संगठनात्मक कार्यक्रम, ६. सामाजिक कुरीतियों का सुधार, ७. प्रचार; शिविर-प्रवेशार्थियों के लिए आवश्यक सूचनाएँ; शिविर-जीवन का प्रथम सप्ताह; प्रथम सप्ताह के कार्य और विषय; पारिवारिक विवरण-पत्रक; ग्रामविवरण-पत्रक; ग्रामीण समस्याओं का अध्ययन; अन्तिम सप्ताह का कार्यक्रम।

१९ किशोरकुल तथा तरुणसंघ

१४१—१४५

—छात्रों का वर्ग विभाजन; अवकाश के सदुपयोग का अभाव; मभा-मर्मितियों का संगठन; संगठन की आधारभूत प्रगतिया; स्थायी संगठन: स्वावलम्बन और स्वशासन; नेतृत्व का प्रशिक्षण; सम्मिलित संगठन।

२० सायंकालीन विद्यालय-कार्य

१४६—१४८

—सायंकालीन विद्यालय की आवश्यकता; स्वतंत्र सायंकालीन विद्यालय; बहुकल्प उद्योग विद्यालय; पाठ्यक्रमों की भिन्नता; सायंकालीन विद्यालयोंकी उपयोगिता।

२१ पुस्तकालय, वाचनालय संग्रहालय

१५०—१५२

—पुस्तकालय और समाजशिक्षा केन्द्र में अन्योन्याश्रय; चल पुस्तकालय, संग्रहालय।

२२ समाज-भवन

१५३—१५४

—समाजभवन का महत्व; समाजभवन के अंग।

परिच्छेद

शीर्षक

पृष्ठ संख्या

२३ मनोरंजन तथा लोक-रंगमंच

१५५—१६०

—सौन्दर्यतत्त्व और आनन्दानुभूति; आनन्द के शुष्क स्रोत; मनोरंजन का महत्त्व; मनोरंजन के माध्यम; लोक-रंगमंच; बाजों का चुनाव; मोदमंडली; सांस्कृतिक कार्यक्रम, १, २, ३; स्थानीय प्रसाधनों की उपयोगिता।

२४ सेमिनार: क्या और क्यों

१६१—१६३

—सेमिनार अथवा समस्यागोष्ठी, सम्मेलन तथा सेमिनार; सेमिनार की विशेषता; सेमिनार के स्तर; सेमिनार का निर्देशन; अवधि।

२५ सामुदायिक विकास-क्षेत्र में समाज शिक्षा १६४—१७१

—विकासयोजना में समाजशिक्षा का महत्त्व; समन्वय-कार्य; समस्याओं के प्रकार; समस्यागत अध्ययन; कार्यविधि का संक्षिप्त उल्लेख; अपनापन; समस्याओं का चुनाव; व्यापक कार्यक्रम के अंग; महिलाओं के लिए विशेष कार्यक्रम।

२६ पूर्णकालिक वैतनिक कार्य-कर्त्ता

१७२—१७८

—वैतनिक कार्यकर्त्ता; कार्यकर्त्ता और संगठन-कर्त्ता; कर्त्तव्य तथा दिन-चर्या; उपसंहार।

२७ लोक-विद्यालय

१७९—१८३

—बचपन के संस्कार; समस्या के विषय: वयस्क लोक-विद्यालय की रूपरेखा; अर्जन की क्षतिपूर्ति; लोक-विद्यालय; छात्रों की दिनचर्या।

२८ जनता-महाविद्यालय की रूपरेखा

१८४—१९०

—भिन्न-भिन्न विभाग, प्रशिक्षण-विभाग; अनुसंधान तथा अनुशीलन विभाग, प्रसार

परिच्छेद

शीर्षक

पृष्ठ संख्या

विभाग, श्रव्यदृश्य विभाग, कला-उद्योग-विभाग,
शश्रूषा-विभाग, महिला-विभाग, कृषि-पशु-
पालन विभाग, पुस्तकालय, प्रचार-प्रकाशन-
विभाग, छात्रावास, अभ्यासशालाएँ और प्रदर्शन-
केन्द्र, प्रदर्शनी तथा संग्रहालय, सांस्कृतिक
प्रदर्शन विभाग ।

२६ सांस्कृतिक विश्वविद्यालय

१६१—१६२

—एक कल्पना ।

३० विदेशों में समाजशिक्षा की रूपरेखा १६३—२०५

—(अ) रूस, (आ) अमेरिका, (इ) इंग
लैंड, (ई) डेनमार्क,

३१ सामाजिक परिगणन अथवा सर्वेक्षण २०६—२०८

—परिगणन की आवश्यकता; तालिकाएँ या
चार्ट ।

३२ परिशिष्टः—

(क) सामाजिक परिगणन की तालिकाएँ— २०६—२१८

(ख) वार्त्तालाप-बिन्दु— २१६—३१३

(ग) प्रमाणपत्रों और विवरणपत्रों के नमूने—

३१४—३२६

(घ) साहित्य-संकेत—

३२७—३५८

(ङ) अनुक्रमणिका (विषयों तथा उपविषयों

की)—३५६—३६७

